छुट्टी का दिन

सत्येन कुमार



राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य : रु. 55.00

प्रथम संस्करण : 1986

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002

मुद्रक : रुचिका प्रिण्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

आवरण : सत्येन कुमार

CHHUTTI KA DIN
Novel by Satyen Kumar

आभार

'कनुप्रिया' की
'आम्र बौर का गीत' कविता
के पुनर्प्रकाशन की अनुमति के लिए मैं
डॉ. धर्मवीर भारती
एवं
भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली
का अत्यन्त आभारी हूँ।

—सत्येन कुमार

चुके थे। उनके एक उपन्यास से मैं बेहद प्रभावित हुआ था और मन-ही-मन मैं उनको एक आदर्श व्यक्ति और लेखक मान चुका था। मेरी इस 'हीरो वर्शिप' के पीछे, जाहिर है, मेरी साहित्यिक समझ कम और ऊपरी बातें ज्यादा रही होंगी। सुधीर मेहता का व्यक्तित्व था भी कुछ ऐसा कि स्वयं हिन्दी लेखकों की बिरादरी ने उन्हें शुरू से ही एक 'बाहरी आदमी' घोषित कर दिया था। यथासम्भव कोशिश लोगों की यह रहती थी कि अव्वल तो उनके बारे में बातचीत ही न हो और यदि मजबूरन करनी भी पड़े तो उसकी शुरुआत बजाय शब्दों के एक बेचारगी के अन्दाजवाली उस पोली, जहरीली मुस्कान के सहारे की जाये जिसका मतलब होता है—अब क्या कहें उनके बारे में···। धीरे-धीरे मुझे यह समझ में आया कि इस स्थिति के पीछे हालाँकि मुख्य रूप से सुधीर मेहता का अपना एकाकी स्वभाव ही रहा होगा लेकिन साथ ही यह पूरी स्थिति उनके अनजाने या अनचाहे ही बनी हो—ऐसा भी नहीं था। यह ठीक है कि सुधीर मेहता कभी भी आम लेखक बिरादरी के सदस्य नहीं हो सकते थे क्योंकि उनकी जीवन-शैली और पारिवारिक व व्यक्तिगत पृष्ठभूमि काफी अलग तरह की थी। लेकिन यह भी शायद उतना ही ठीक है कि किन्हीं भी कारणों से सुधीर मेहता अपनी तरफ से ऐसी कोई कोशिश भी नहीं करते थे जो उन्हें उस सामान्य लेखक-बिरादरी से जोड़ दे। यूँ सुधीर मेहता कम्युनिस्ट पार्टी के कार्डहोल्डर सदस्य थे और सामान्य लेखक बिरादरी में उन दिनों लाल रंग अच्छी सेहत और प्रतिभा का पर्याय बनता आ रहा था।

बात मैं अदिति से पहली मुलाकात की कर रहा था—उस शाम मैं सुधीर मेहता से दूसरी बार मिल रहा था। हम दोनों 'ला बोहीम' के एक कोने में आमने-सामने बैठे बातचीत कर रहे थे। बात दरअसल सुधीर ही कर रहे थे। मैं फीके अँधेरे में बैठा सुधीर का चेहरा देख रहा था जो बात करते समय अमूमन कहीं खोया रहता था। उस वक्त भी वे स्टीफन क्रेन के उपन्यास 'बिवेयर ऑव पिटी' के बारे में अपने आप में पूरी तरह डूबे-से कुछ कह रहे थे कि टेबुल के ऊपर लटकता हुआ लम्बा-सा लैम्प शेड भक् से जल उठा। एक भीनी-सी महक ने हम दोनों को घेर लिया था। सिर्फ खुशबू ही नहीं थी वह महक। उसमें एक गन्ध भी मिली थी। एक बहुत खूबसूरत औरत की गन्ध। इसके पहले कि हम दोनों उस अँधेरे से बाहर आ पाते जिसकी धड़कनें बन्द हो चुकी थीं, टेबुल के पास खड़ी औरत ने सधी हुई अंग्रेजी में कहा—ये चाबी है। मैं बीजी के यहाँ जा रही हूँ। शायद वहीं रुक जाऊँ।

सुधीर की आँखें ऊपर जरूर उठ गयी थीं लेकिन बिना कहीं पहुँचे बीच में ही वे मेरे ऊपर टिक गयीं।

—अच्छाआआ···ठीक है, सुधीर ने कुछ सोचते हुए कहा—इनसे मिलो··· ये आदित्य हैं, लिखते हैं ये भी···एण्ड ··, उन्होंने अदिति की तरफ देखा—ये अदिति हैं···!

मैं हड़बड़ाकर खड़ा हो गया—नमस्ते ! जिस घबराहट और हड़बड़ी में मेरे

मुँह से वह शब्द निकला था उसे देखकर सुधीर हँसने लगे थे और अदिति मुस्करा पड़ी थी।

बहुत दिनों बाद अदिति ने मुझे एक बार बताया था कि वह, मुस्कराहट उनके बिल्कुल अनचाहे उनके होठों पर आ गयी थी क्योंकि अपनी घबराहट में मैंने बिल्कुल किसी स्कूल मे पढ़नेवाले लड़के की तरह हाथ जोड़कर उन्हे नमस्ते की थी।

—हैलो आदित्य···, अदिति ने धीरे-से अपनी मुस्कान को समेटकर मुझसे कहा था—नाइस सीइंग यू···! और उसके साथ ही वह मुड़ गयी थी—ओके···गुड-नाइट दैन ··

वह गन्ध पीछे ही छूट गयी थी। और मेरे भीतर तो वह जैसे हमेशा के लिए किसी झाड़ी में उलझ-सी गयी थी। अभी तक वह झाड़ी खामोश, बोझिल रातो को महकती है—रात रानी की तरह।

सुधीर चुपचाप बैठे रहे थे। उसके बाद उन्होंने अपनी बात का सिरा फिर से पकड़ लिया था। यदि अदिति के व्यवहार से उन्हें बुरा लगा था तो मुझ पर उन्होने यह जाहिर नही किया था। जहाँ तक मेरा सवाल था मैं उस सारी रात अदिति के चेहरे को याद करने की कोशिश करता रहा था, क्योंकि दरअसल मैं उन्हे नजर-भर देख भी नही पाया था।

एक और साहित्यकार सुधीर को देखकर हम लोगों के टेबुल पर आ गये थे और मुझे जैसे उसी मौके की तलाश थी, वहाँ से उठने के लिए। सुधीर खाना भी वही खानेवाले थे—इसलिए भी मैं उठना ही चाह रहा था।

रेस्ट्राँ से बाहर आकर मैं कनॉट सर्कस के बाहरी गलियारो मे चलने लगा जो अँधेरे में डूबे हुए थे। घर जाने का मन बिल्कुल नही हो रहा था। वह रात मुझे आज भी, लगभग बीस साल बाद, खूब अच्छी तरह याद है। हल्की सर्दियों की उस रात मैं देर तक न जाने कहाँ-कहाँ टहलता रहा था। सारे समय वह गन्ध मेरे आसपास थी। यह सच है कि रह-रहकर मुझे लगता था कि मैं अदिति के बारे मे सोच रहा हूँ। लेकिन हकीकत कुछ और थी। मैं बहुत-सी बातों के बारे मे सोच रहा था लेकिन अदिति के बारे मे नही बल्कि अदिति के कारण।

सच यह है कि अदिति मेरी दुनिया के बाहर खड़ी एक ऐसी स्त्री थी जिन्होने पलक झपकते ही, अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी के स्तर पर मेरी सारी कोशिशों को किसी मकड़ी के जाले की तरह साफ कर दिया था। इनमे कुछ ऐसी भी कोशिशें थी जो मेरे भीतर किसी बरगद की तरह बचपन से ही अपनी जड़ें काफी गहरे तक फैला चुकी थी। लेकिन उस रात उस गन्ध ने सर्द हवा को जैसे एक बर्फीली आँधी मे तबदील कर दिया था जो फिर रात-भर बरगद की उन शाखों को रह-रहकर झकझोरती रही थी···

घर लौटने मे उन दिनो मुझे अक्सर काफी देर हो जाया करती थी। घर के लोग इसे उम्र का तकाजा मानकर स्वीकार-सा कर चुके थे। उस रात जब मैं घर

भर नकारता रहा हूँ—मजबूर माँ की तरह। मौत से क्या हम धीरे-धीरे इसीलिए नहीं इतना डरने लगते क्योंकि हम अपने आप से दूर होते चले जाते हैं—उस 'मैं' से जो सर्वशक्तिमान है, अजेय है और नश्वर है···

घर की सीढ़ियाँ उतरकर जब तक मैं नीचे चौराहे तक आया तो अपने भीतर जैसे कहीं आश्वस्त हो गया था कि अँधेरे, अभाव और गहरी हताशा के जालों से घिरी मेरी जिन्दगी में अदिति जैसी औरत से कोई खतरा नहीं हो सकता। मैं शायद उनकी सुन्दरता से बौखला-सा गया था।

कॉलिज जाने के लिए बस अजमेरी गेट से मिलती थी। बस स्टैण्ड तक पहुँचने के दौरान मुझे इस बात का भी पूरा अहसास हो चला था कि कल का पूरा दिन मैंने बड़े गैर-जिम्मेदार और लापरवाह ढंग से गँवा दिया था। इतवार की छुट्टी का मतलब मेरे लिए बहुत कुछ होता था। सिर्फ एक यही दिन मुझे मिलता था उन सब कामों के लिए जो बहुत जरूरी थे—उन सब चीजों को हासिल करने के लिए जो मुझे मेरे माहौल से फरार होने में मदद कर सकती थी। कहा जाता है कि बच्चों पर इस बात का बहुत गहरा असर पड़ता है कि उनके माता-पिता या आस-पास के बड़े लोग उन्हें किस प्रकार के सुझाव शुरू से ही देते रहते हैं। अवश्य ही यह सच होगा। लेकिन यह भी उससे कमजोर सच नहीं है कि बच्चे कई बार इन सुझावों के दबाव को बर्दाश्त नहीं कर पाते और अक्सर एक ऐसा फैसला कर बैठते हैं जिसका पहला और काफी गहरा परिणाम एक विद्रोही व्यक्तित्व होता है। यह अलग बात है कि विद्रोही व्यक्तित्व का अन्त अक्सर एक ऐसे आत्मविद्रोह से होता है जो बचपन से ही उस व्यक्ति के भीतर किसी टाइम-बम की तरह रख दिया जाता है। मुझे अच्छी तरह याद है कि बचपन में 'अपने माहौल से फरार होने' का वह फैसला मैंने किस दिन किया था। क्यों किया था यह मुझे आज तक नहीं मालूम। वह दिन कुछ अजीब ही था। मैं चौथी क्लास में पढ़ता था, पुरानी दिल्ली के एक ऐसे स्कूल में जिसे शहर का व्यापारी वर्ग और अमीर बनिये लोग चलाते थे। ज्यादातर बच्चे स्कूल ताँगे, रिक्शा और मोटर गाड़ी से आते थे। एक लड़का था पदमचन्द जो हमेशा दो घोड़ों की बग्घी में स्कूल आता था। वह मेरे ही सैक्शन में पढ़ता था और पूरी क्लास में शायद ही उसकी किसी से पटती थी। कितने ही लड़के उसकी झूठी शिकायतों के कारण आये दिन बिना बात पिटते थे। स्कूल के पी. टी. टीचर खासतौर पर उसका बहुत ध्यान रखते थे और वे ही पी. टी. और खेल-कूद के दौरान उसके कारण-अकारण दूसरे लड़कों को निर्दयता से पीटा करते थे। उस हफ्ते के दौरान पदमचन्द के कारण पी. टी. टीचर ने मुझे लगातार पाँच दिन बुरी तरह से मारा था। उस रोज शनिवार था। स्कूल आधे दिन का था—यानी सिर्फ चार पीरियड। पाँच दिन तक लगातार रोजाना बीस-बीस संटियाँ खाकर मेरे हाथों की उँगलियाँ इस काबिल भी नहीं बची थी कि कलम पकड़ सकें। उस दिन चारों पीरियड मैं क्लास में ऐसे बैठा रहा जैसे कि स्कूल में मेरा वह पहला दिन हो। रह-रहकर मेरी उँगलियाँ टीस उठती और मेरी आँखें सबसे आगे, कोने

में दीवार से टिककर बैठे हुए पदमचन्द पर जम जाती। आखिरकार पीरियड खत्म होने का घण्टा बजा लेकिन मैं वैसे ही बैठा रहा क्योंकि जमीन पर बिछी टाट-पट्टी से उठने के लिए दोनों हाथ जमीन पर टेककर सहारा लेना जरूरी था और मुझ मे क्लास के लड़कों के सामने वह मुश्किल कोशिश करने की हिम्मत नही थी। रवि ने मुझे उठाया था। तब तक क्लास के सब लड़के कमरे से बाहर जा चुके थे। रवि हमेशा मेरे बराबर बैठता था और न जाने क्या बात थी उसमे कि मुझे हमेशा उसे देखकर बाबा की याद आ जाती थी। रवि बहुत कम बोलता था। पूरी क्लास मे वह सिर्फ मुझसे बातचीत करता था। उस रोज मुझे उठाने के बाद उसने मेरे कान में कहा—आज मारेंगे पदम को···तू बस्ते की पेटी निकाल ले! फिर जैसे उसे याद आया—अच्छा ठहर जा, तेरी उँगलियो मे दर्द हो रहा है न बहुत। तू यही रह, मैं अभी आता हूँ···, कहकर वह जाने के लिए मुड़ा।

—नही रवि ··, अपनी आवाज मुझे बहुत ही अजीब लगी थी—थरथराती हुई-सी। मैंने बस्ते की पेटी बकल मे से निकालते हुए कहा—मैं भी चलूँगा। देख···मारूँगा मैं उसे। तू बस वहाँ खड़े रहना। ठीक है?

रवि एक क्षण के लिए मेरे हाथों की तरफ देखता रहा जो अब सारे दर्द के बावजूद फुर्ती से चल रहे थे। फिर वह बोला—तुझे मारना है तो फिर जल्दी चल ना···वो अगर स्कूल के बाहर निकल गया तो उसका बग्गीवाला भी तो होयेगा!

उसकी बात सुनते ही मैं बस्ता जमीन पर पटक उसकी पेटी लेकर भाग निकला था। स्कूल गेट से पहले एक गलियारा पड़ता था जिसमे पेशाबघर था। पदमचन्द उसी गलियारे मे दाखिल हो रहा था। मैं पूरी ताकत से भागकर गलियारे के दूसरे सिरे पर पहुँच गया। पदमचन्द तब तक पेशाबघर मे ही खड़ा था। मैंने टीसती उँगलियों से बस्ते की पेटी को कसकर पकड़ लिया और उसके पीछे पहुँचकर पूरी ताकत से किरमिच की पेटी से उसके सिर पर वार किया। पेटी के सिरे पर पीतल का कोना था। पदमचन्द की गर्दन से खून की धार बहने लगी। उसी घबराहट में वह डरकर चीखते हुए मेरी तरफ मुड़ा। दूसरा वार मैंने उसके चेहरे पर किया। उसके लड़कियो जैसे गाल से खून बहने लगा। मैंने फिर हाथ उठाया लेकिन उसी बीच रवि ने मुझे धकेलकर गलियारे से बाहर कर दिया और पूरी ताकत से लेकिन पूरी तरह अपनी आवाज को दबाकर वह चीखा—भाग जा अब···बस्ता मेरे पास है···

मैं भागते हुए स्कूल के गेट से बाहर निकला लेकिन चर्खेवालान के चौराहे पर आकर खड़ा हो गया। रवि पीछे ही छूट गया था। लेकिन कुछ ही क्षणों मे वह भी भागता हुआ वहाँ आ पहुँचा और बोला—चल, अब जल्दी···

कुछ दूर हम दोनो तेज कदमों से चलते रहे फिर मैंने धीरे-से कहा—रवि··· मैं तेरे घर चलूँ अभी?

मैं सचमुच घर जाने की मनःस्थिति मे नही था क्योंकि पेटी चलाने के कारण मेरी उँगलियाँ अब और भी ज्यादा टीसने लगी थीं।

सिरे पर कम्मो दीदी मुस्कराती हुई मुझे देख रही थी। ऊपर पहुँचते ही उन्होंने वह लिफाफा मुझसे छीन लिया और बड़ी उतावली से उसे फाड़कर उन्होंने वह पतली-सी किताब निकालकर देखी। उनका साँवला-सा रंग किताब के पन्ने पलटते हुए जैसे कुछ हल्का-सा पड़ गया। फिर किताब अपने कुरते के अन्दर खोंसते हुए उन्होंने मुझे अपने से चिपटाकर कहा—थैंक्यू···गुड्डू··· सच्ची तू बहुत अच्छा है। और फिर वो मुझे अपने कमरे के अन्दर ले गयी और ढेर सारी टॉफियाँ मेरे सामने एक मेज पर रखकर बोली—देख, तू पहले टॉफी खा ले। इतने मैं ये किताब पढ़ लूँ जरा। फिर उसके बाद खेलेंगे ताश।

मैं उनकी छोटी-सी मेज-कुर्सी पर बैठकर अपनी टीसती उँगलियों से टॉफी की पन्नी खोलने की कोशिश करने लगा और कम्मो दीदी कमरे के एक कोने में बिछे पलँग पर अपनी टाँगों के बीच एक बड़ा-सा तकिया भींचकर पेट के बल लेटकर वह किताब पढ़ने लगी।

करीब आधा घण्टा उसी तरह से बीता था। मैं उस दौरान कुल तीन टॉफियाँ खा पाया था। कम्मो दीदी किताब खत्म करने के बाद उसी तरह एक और तकिया अपने सीने के नीचे भींचकर कुछ देर तक पड़ी रही थी। उसके बाद जब वे उठकर मेरे पास आयीं तो उनकी आवाज बहुत थकी हुई थी—गुड्डू, थोड़ी देर मेरा सिर दबा दे जरा। बहुत दर्द हो रहा है, उन्होंने कहा। उँगलियों के टीसने के अहसास ने मेरे शरीर को एड़ियों तक सुन्न कर दिया। मैंने आज तक कम्मो दीदी को किसी भी काम के लिए मना नहीं किया था और सिर दबाने के लिए तो उन्होंने आज पहली बार मुझसे कहा था। लेकिन मेरी हिम्मत आखिरकार जवाब दे गयी। मैंने सिर झुकाकर अपने हाथों की तरफ देखते हुए कहा—कम्मो दीदी···मेरी उँगलियों में चोट लग गयी है। बहुत दर्द हो रहा है···सच्ची!

कम्मो दीदी ने मुझे कन्धों से पकड़कर अपने से चिपटा लिया और मेरे बाल सहलाते हुए बोली—कैसे लग गयी चोट मेरे गुड्डू को···खैर कोई बात नहीं। मैं गोली खा लूँगी, तू जा···और देख किसी से कहना मत कि मैंने तुझे वो चिट्ठी लेकर भेजा था···ठीक है न? ले ये टॉफियाँ लेता जा···

मैं लगभग भागते हुए कम्मो दीदी के पास से नीचे चौराहे तक आया था। सामनेवाली दुकान पर बैठा आदमी अब कुछ लोगों से हँस-हँसकर बात कर रहा था। मैं चौराहे के दूसरी तरफ मुड़ गया। अब मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा था कि क्या करूँ। सबसे बड़ी मुश्किल यह थी कि मेरे पास पैसे नहीं थे। सिर्फ दो चवन्नियाँ मेरी जेब में थीं। वे भी इसलिए पड़ी थीं कि पिछले हफ्ते-भर मैंने रोजाना घर से मिलनेवाली दुअन्नी खर्च नहीं की थी। अगर इस वक्त मेरे पास पैसे होते तो फिर इस बात की कोई मुश्किल नहीं थी कि क्या किया जाये। फिर तो मैं कुछ भी कर सकता था। चौराहे के दूसरे सिरे पर जब मैं पहुँचा तो लालकुएँ की तरफ से ट्राम आ गयी जो लगभग खाली थी। मैं बिना कुछ सोचे ट्राम में चढ़ गया और इकन्नी देकर मैंने जामा मस्जिद तक का टिकट ले लिया। ट्राम में बैठकर बाजार देखना

मुझे बहुत अच्छा लगता था।

जामा मस्जिद पर शाम की रौनक शुरू हो चुकी थी। मशक के पानीवाले लोग अपने चांदी के कटोरे बजाते हुए घूम रहे थे। सड़क छिड़काव होने के कारण क्योंकि गीली थी और उसमे से गर्मी का भभका निकल रहा था, इसलिए मैं मस्जिद की सीढियों पर थोड़ा ऊपर जाकर बैठ गया। यह अजीब बात थी कि अमूमन मुझे जामा मस्जिद के इलाके—खासतौर पर मुर्गी बाजार और मछली मार्केट से गुजरते हुए एक अजीब-सा डर लगता था लेकिन आज मुझे वैसी कोई बात महसूस नही हो रही थी। काफी देर तक मैं चुपचाप बैठा नीचे की हलचल देखता रहा। फिर मेरा ध्यान अंग्रेज लोगो के एक झुण्ड पर चला गया जो सीढियाँ चढ़कर ऊपर आ रहा था। चार आदमियों के साथ पांच औरतें थी—मेम। एक हिन्दुस्तानी आदमी भी उनके साथ बातें करता हुआ आ रहा था। वे मुझसे कुछ ही दूर रह गये थे कि उनमे से एक मेम ने चिल्लाकर सब लोगो को अपने सामने से हटा दिया और अपने कैमरे से मेरी फोटो खीचने लगी। मैं अपनी उँगलियों के कारण अपने दोनो हाथ अपने घुटनो पर फैलाये बैठा था। इसके पहले कि मैं कुछ सोच पाता या हिलता-डुलता वह मेम हँसती हुई और जोर-जोर से कुछ कहती हुई मेरी तरफ दौड़ी। बाकी लोग भी यह देखकर हँसने लगे। उस मेम ने भागते हुए सीढ़ियाँ पार की और आकर मुझे अपनी बाँहो मे भरकर चूम लिया। वह लगातार अंग्रेजी मे कुछ बोलती जा रही थी जो मेरी समझ मे बाहर था। उसने कई बार मुस्कराते हुए मुझे अपनी बाँहो में समेट-कर कुछ कहा जिसमे से मुझे सिर्फ 'हैलो' समझ मे आया। फिर उस हिन्दुस्तानी आदमी ने मुझसे कहा—क्या नाम है बे तेरा···बोलता क्यों नही ? मैंने जिस तरह से उस आदमी की तरफ देखा उसमे जरूर कोई बात होगी क्योंकि फिर उस मेम ने हाथ हिलाते हुए उस आदमी को चुप कर दिया और मेरे बालों को बिखेरकर मुझे फिर चूम लिया। उसके बाद वह खड़ी हो गयी और अपने कन्धे पर पड़े चमड़े के झोले में से एक बड़ा-सा रंगबिरगा डिब्बा निकालकर मुझे देते हुए फिर कुछ बोली। उसके बाद उसने अपना बटुआ खोलकर बहुत बडे और बिल्कुल नये नोटों की गड्डी मे से एक नोट निकाला और मेरी जेब मे डालकर अपने हाथों से मेरे गालो को थपथपाया और फिर मेरा माथा चूमकर हँसती हुई और हाथ हिलाती हुई ऊपर की तरफ बढ़ गयी। मैं मुड़कर उस मेम को तब तक देखता रहा जब तक वह मेरी नजरो से ओझल नही हो गयी। जामा मस्जिद के दरवाजे के बीचोंबीच पहुँचकर वह एक बार फिर मुड़ी और मेरी तरफ देखकर उसने अपना हाथ हिलाया। इस बार मेरा हाथ भी अपने आप ही उठ गया और उसके साथ ही हाथ हिलाती हुई उस मेम की आकृति धुधली गयी। मैंने अपनी कमीज की बाँह से अपनी आँखों को पोछा और फिर उठकर धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरने लगा।

जामा मस्जिद से घर तक मैं फिर पैदल आया। कुछ दूर आकर एक प्याऊ के पीछे जाकर मैंने अपनी जेब से उस नोट को निकाला और उसे खोलकर देखा। वह सौ रुपये का नोट था—बिल्कुल वैसा ही जैसा बाबा हर महीने तन्ख्वाहवाले दिन

लाकर अम्माँ को दिया करते थे। फर्क सिर्फ इतना था कि बाबा जो नोट लाते थे वह मुड़ा-तुड़ा और गन्दा-सा होता था जबकि यह बिल्कुल नया और करारा नोट था। मैंने बड़े ध्यान से उसे मोड़कर अपनी नेकर की जेब में रख लिया और फिर प्याऊ पर जाकर पानी पिया। मेरा गला बिल्कुल सूख गया था। रास्ते में एक और जगह रुककर मैंने फिर वह डिब्बा खोलकर देखा। रंगबिरंगे डिब्बे में काफी बड़ी-बड़ी चॉकलेट की पट्टियाँ रक्खी हुई थी। मैंने इतनी सारी चॉकलेट एक साथ कभी नहीं देखी थी। एक पट्टी निकालकर मैंने डिब्बा बन्द कर दिया और रास्ते-भर उस बहुत ही बढ़िया चॉकलेट का मजा लेते हुए मैंने फिर उस मेम की दी हुई इन दोनों चीजों के बचाव की तरकीब सोचनी शुरू की। सौ के नोट को छिपाना तो आसान था, हालांकि मैं जानता था कि उसे तुड़ाना इतना आसान नहीं होगा। अम्माँ ने एक-आध बार मुझे बाबा की तनख्वाहवाले सौ के नोट को तुड़ाने के लिए घर के नीचेवाली बड़ी-सी दुकान पर भेजा था। दुकान के मालिक फिर बाद में अम्माँ से पूछ लेते थे कि वह नोट उन्होंने ही भिजवाया था या नहीं। बहरहाल वह बाद की मुश्किल थी। अभी तो चॉकलेट के डिब्बे का सवाल था। काफी देर तक मैं उसे छिपाने की जगहों के बारे में सोचता रहा लेकिन आखिरकार मैंने यही तय किया कि वह डिब्बा मैं घर ही ले जाऊँगा और अम्माँ को मेमवाली बात भी बता दूँगा—सिर्फ सौ के नोट को छोड़कर।

घर पहुँचते-पहुँचते अँधेरा-सा हो चला था। घर का दरवाजा खुला था और बाबा आँगन में ही चारपाई पर लेटे हुए थे। मैं चौंक गया क्योंकि बाबा आमतौर पर ड्यूटी से आठ-नौ बजे तक लौटते थे।

—आज जल्दी कैसे आ गये बाबा? मैंने उनके पास पहुँचकर पूछा।

—ऐसे ही बेटा ''तुम कहाँ घूम रहे थे? उन्होंने धीरे-से पूछा।

—मैं एक दोस्त के घर गया था। मेरे मुँह से निकल गया।

—अच्छा'''? और बाबा फिर चुप हो गये।

मैं अन्दर कमरे में आया। अम्माँ अन्दरवाली कोठरी में थी जहाँ आटा, दाल, चावल आदि के पीपे रक्खे रहते थे। मैंने कोने में जाकर चुपचाप चॉकलेट का डिब्बा अपने बस्ते में रख दिया और मुड़ा ही था कि अम्माँ कोठरी से परात में आटा लेकर निकली।

—आ गया रे तू''', उनकी आवाज भी मुझे बुझी हुई-सी लगी। कमरे के दूसरे कोने में अँगीठी के पास बैठकर अम्माँ आटा गूँदने लगी। कुछ देर खड़ा मैं अम्माँ को देखता रहा फिर पास जाकर मैंने धीरे-से पूछा—क्या बात है अम्माँ?

—कुछ नहीं बेटा' 'तेरे बाबा की नौकरी छूट गयी'''

मैं वहीं अम्माँ के पास बैठ गया। अम्माँ चुपचाप अपना काम करती रही। मुझे मालूम था कि अम्माँ मुझे कुछ और नहीं बतायेंगी। थोड़ी देर बाद मैं उठकर छत तक पहुँचनेवाली सीढ़ियों में ऊपर जाकर बैठ गया। जीने की ऊपरी सीढ़ी बिल्कुल चौकोर थी और सर्दियों में मैं छत की तरफ खुलनेवाले दरवाजे को बन्द

करके इस जगह का इस्तेमाल अपनी पढ़ाई-लिखाई करने के लिए करता था। मैं चुपचाप जाकर दीवार से टिककर वहाँ बैठ गया। कुछ देर तक तो मैं सुन्न-सा बैठा रहा फिर धीरे-धीरे दिन-भर की तमाम बातें मेरे दिमाग मे घूमने लगी। पदमचन्द की पिटाई, अनाथालय जहाँ रवि रहता था, कम्मो दीदी, सामने की दुकानवाला वह आदमी, टॉफियाँ, कम्मो दीदी का बिस्तर पर पेट के बल लेटा हुआ शरीर, वह पतली-सी किताब, जामा मस्जिद की सीढ़ियाँ, अंग्रेजों का वह झुण्ड, वह सुन्दर मेम, उनके साथवाला वह हिन्दुस्तानी आदमी, चॉकलेट का डिब्बा, सौ रुपये का बिल्कुल नया नोट और बाबा की तनख्वाहवाला वह गन्दा-सा, मुड़ा-तुड़ा सौ का नोट···

सब-की-सब बातें उस रात मेरे दिमाग मे घूमती रही। रात के पहले हिस्से में जब कमरे में अँधेरा हो गया और अम्माँ-बाबा को लगा कि मैं सो गया हूँ तो उन लोगों की बातचीत से मुझे बाबा की नौकरी छूटने के कारण का भी पता चला।

सेठजी के लड़के ने जो कॉलिज मे पढता था बाबा से बहुत बदतमीजी से बात की थी। बाबा ने उससे सिर्फ इतना कहा था कि आदमी की पहचान उसकी बोल-चाल और व्यवहार से होती है। और फिर उम्र का भी तकाजा यही था कि वे तमीज से पेश आयें। बात का बतगड बनकर सेठजी के पास पहुँचा था। सेठजी ने बाबा को नौकरी से बर्खास्त कर दिया था।

अम्माँ बार-बार दूसरी नौकरी की फिक्र करते हुए कहती—पता नही क्या मर्जी है भगवान की···

बाबा ने बीच में बस एक बार कहा—अरे मिल जायेगी नौकरी तो···लेकिन ये लड़का पता नही कैसी किस्मत लेकर आया है···। और उस रात फिर पहली बार बाबा ने मेरी पीठ को सहलाया। मै हमेशा बाबा के पास सोता था। शुरू से ही मेरी यह आदत-सी बन गयी थी कि सोने से पहले मैं बाबा से चिपटकर अपनी पीठ सहलवाने के लिए कहता था—बाबा मेरी कमर खुजा दो! बाबा फिर आहिस्ता-आहिस्ता मेरी पीठ को सहलाते थे और उसी दौरान मुझे नींद आ जाती थी।

बाबा की उस बात को सुनते ही मेरी आँखों के सामने उस अंग्रेज मेम का चेहरा उभर आया जिसने मुझे जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर कितनी ही बार चूमा था। पता नही क्या-क्या कहा था उसने मुझसे! लेकिन वह सब अंग्रेजी में था। मैं जिस स्कूल मे पढता था वहाँ के तो टीचर भी वैसी अंग्रेजी नहीं बोल पाते थे। और वैसे भी उस स्कूल मे अंग्रेजी पढ़ना मुश्किल ही दीखता था। बनिये-सेठों के लड़कों का काम तो बिना अंग्रेजी के भी चल सकता था क्योंकि उनके पास सबकुछ तो पहले से ही था और उसके बाद ढेर सारा पैसा भी था।

अगली सुबह जब मैं उठा तो मुझे सबसे पहले पिछली रात किये गये अपने तीनों फैसले याद आये। मैंने तय किया था कि मैं उस मेम जैसी अंग्रेजी हर हाल मे सीख-कर रहूँगा। मैंने यह भी तय किया था कि मैं इस उम्र मे भी पैसा कमाने की कोशिश करूँगा। और यह तो उस सुबह मैंने उस एक कमरे के घर की दीवारों पर लिखा देखा

था कि इस मोहल्ले और इसकी जिन्दगी से मुझे फरार होना ही पड़ेगा क्योंकि मैं वहाँ सचमुच नहीं रह सकता था।

अपनी उम्र के आठवें साल में फिर मैंने उस सुबह, जो इतवार की सुबह थी, अपने फैसलों को अच्छी तरह से सोचा और समझा। मुझ पर एक अजीब बेचैनी सवार थी रवि से मिलने की क्योंकि मुझे लग रहा था कि मेरे इन इरादों में रवि भी पूरी तरह साथ देगा क्योंकि उसके पास तो एक कमरे का घर भी नहीं था और न ही बाबा थे, न अम्माँ। और न ही शायद किसी खूबसूरत अंग्रेज मेम ने उसे कभी चूमा था। लेकिन इतवार के दिन रवि से दोपहर बाद ही मिलना हो सकता था—क्योंकि इतवार की सुबह तो रवि को भी अनाथालय के बैण्ड के साथ आटा, कपड़ा और पैसा माँगने जाना होता होगा। हालाँकि दोपहर बाद जब मैं अनाथालय जाकर रवि से मिला तो उसने हँसते हुए मुझे बताया कि उसे भीख माँगना अच्छा नहीं लगता और साल-भर पहले ही उसने 'दादाजी' से साफ-साफ कह दिया था कि वह उस बैण्ड के साथ नहीं जायेगा। दादाजी ने उसे उस बार डरा-धमकाकर भेज दिया था लेकिन अनाथालय से बाहर निकलते ही रवि एकदम भाग खड़ा हुआ था और उसी दौरान एक रिक्शे से टकरा गया था। दादाजी ने फिर उसे बैण्ड के साथ कभी नहीं जाने दिया था। उस चोट का निशान रवि के माथे पर अभी तक था।

हम दोनों फिर अनाथालय की छत पर उसी कोने में जा बैठे थे और मैंने रवि को अपने फैसले के बारे में मोटे तौर पर बताया था। काफी देर की बातचीत के बाद रवि ने फिर पूरा टाइम-टेबुल बनाया था। अंग्रेजी सीखने की शुरुआत हम लोगों ने होमवर्क की एक और कॉपी खरीदकर उसमें अभ्यास करने से तय की। पैसा कमाने के तो रवि को इतने तरीके मालूम थे कि मैं उसकी तरफ देखता ही रह गया। और मेरे आखिरी फैसले के बारे में रवि ने सिर्फ इतना कहा कि पहले ये दो काम कर लें, उसके बाद सोचेंगे। उसी दौरान मुझे मालूम हुआ कि रवि ने न सिर्फ पैसा कमाना कई महीनों से शुरू ही कर दिया था बल्कि उसके पास अभी तक सत्रह रुपये जमा भी हो गये थे जो उसने अनाथालय के गोदामवाली दीवार में एक ईंट के नीचे छिपा रखे थे। रवि कुछ महीनों से स्कूल के बाद चार से आठ बजे तक एक मोटर साइकिल वाले की दुकान में काम करता था जहाँ से उसे 10 रुपये महीना मिलते थे। मुझे पैसा कमाने के लिए रवि ने एक बहुत ही बढ़िया तरकीब बतायी थी। उसने बताया कि अगर मैं रद्दी कागजों से लिफाफे बनाना शुरू कर दूँ तो उनको खारी बावली के बाजार में पंसारियों की दुकान पर आसानी से बेचा जा सकता है। लिफाफे बनाने में किसी को पता भी नहीं चलेगा कि मैं कहीं काम कर रहा हूँ। मुझे आज भी याद है कि उस बात के बाद रवि ने हँसते हुए मुझसे कहा था—असल में तू अपने अम्माँ-बाबा के पास रहता है न इसलिए तुझे कई चीजों में बहुत मुश्किल पड़ेगी। मेरा क्या है··· मैं तो यहाँ अनाथालय में रहता हूँ···

उन दो ही दिनों में रवि से मेरा रिश्ता बिल्कुल ही बदल गया था। उम्र में हालाँकि शायद वह मुझसे एक-दो साल ही बड़ा था लेकिन उस दिन मुझे लगा जैसे

वह मुझसे बहुत बड़ा है। उस बातचीत के बाद मैंने फिर अपने बस्ते में से चॉकलेट का वह डिब्बा निकाला और रवि को चॉकलेट की पट्टी देते हुए मैंने उसे मेमवाली बात बतायी। पूरी बात सुनने के बाद रवि पहिले तो खूब हँसता रहा फिर उसी तरह बिल्कुल सीधे ढंग से उसने कहा—

—असल में तू बहुत सुन्दर है न···इसलिए सब लोग तुझको बहुत प्यार करते हैं। सच्ची बताऊँ, मैंने भी तुझसे इसीलिए दोस्ती की है। बहुत अच्छा लगता है तू। स्कूल में मुझे कोई इतना अच्छा नहीं लगता।

मैंने अपनी तारीफ सुनकर शरमाते हुए उससे कहा—तू भी तो सुन्दर है···मुझे तो तू बहुत ही सुन्दर लगता है। तेरा रंग तो मुझसे भी गोरा है···

—हाँ, लेकिन मैं तो अनाथालय में रहता हूँ न। तू बुद्धू है यार बिल्कुल, रवि ने मेरी बेवकूफी से ऊबते हुए कहा और फिर चॉकलेट की एक और पट्टी माँगते हुए बोला—एक और खाऊँगा मैं···बहुत ही बढ़िया चॉकलेट दी है उस मेम ने। अच्छा ये बता वो मेम तो बहुत ही सुन्दर होगी न?

—विद्यारानी की कसम रवि···इतनी सुन्दर थी वो कि बिल्कुल परी जैसी लगती थी। मालूम है, उसके बाल बिल्कुल सुनहरी थे···सच्ची!

—अच्छा···? रवि की आँखें आश्चर्य से खुल गयी थीं। कुछ रुककर उसने पूछा—जब उसने तेरी पप्पी ली तो तुझे कैसा लगा?

—बहुत अच्छा लगा था···, मैं कुछ और भी कहना चाहता था लेकिन मुझे नहीं मालूम कि वह क्या था।

कुछ देर बाद वह शरारत से मुस्कराता हुआ बोला—लेकिन तू सच्ची बहुत ही बुद्धू है। ये भी नहीं पूछा तूने कि वह कहाँ रहती है और उसने तेरा फोटू भी खींच लिया। तुझे थोड़ी मिलेगा अब वो। खूब बढ़िया फोटू खींचा होगा उसने तेरा।

—मुझे याद ही नहीं रहा यार···, मैंने भी अब अफसोस करते हुए कहा।

—अच्छा चल अब···कैरम खेलते हैं नीचे···, उसने कहा और हम दोनों नीचेवाले हॉल में आ गये जहाँ उस वक्त कोई नहीं था। रवि ने मेज की दराज में से गोटियाँ निकालीं और हम लोग कैरम खेलने लगे। दूसरी ही स्ट्राइक में रवि ने क्वीन पाकेट में डाल ली और जोर से हँसते हुए उछलकर बोला—देखा···ऐसे करना चाहिए हर काम।···सबसे पहले क्वीन जेब में···

बचपन में इतवार के उस दिन मुझे पहली बार समझ में आया कि छुट्टी का दिन क्या होता है और उससे क्या-क्या कुछ किया जा सकता है। दूसरे, अब सालों बाद भी मुझे वह दिन शायद इसलिए भी बहुत अच्छी तरह याद है कि अभी तक की जिन्दगी में मैंने उस इतवार जैसी छुट्टी बहुत कम मनायी हैं। क्या कुछ नहीं था उस छुट्टी के दिन में! पक्के इरादों से भरी सुबह, जिन्दगी-भर की उड़ान के लिए दोपहर तक बनाये गये मन्सूबे, दोपहर से शाम तक फिर एक दोस्त का साथ, एक खूबसूरत अजनबी द्वारा दी गयी बढ़िया चॉकलेट, अनाथालय जैसी जगह में भी अकेले हॉल में कैरम का वह खेल, और फिर शाम से रात सोने तक आगे की

जिन्दगी को लेकर रगों में दौड़ती हुई वह सनसनी···

इस तरह की कई छुट्टियाँ मैंने अलबत्ता रवि के साथ बड़े होकर भी मनायी हैं। लेकिन उनमें भी वह शोख हरारत इस रंग में शायद ही कभी नजर आयी।

बहरहाल इतवार के दिन का मतलब फिर मेरे लिए जरूर बहुत बदल गया था। रद्दी कागज के लिफाफे बनाने से हुई शुरुआत उम्र के साथ-साथ बहुत-सी चीजों तक पहुँच गयी थी। रवि हर साल कोई नयी चीज सुझाता था। धीरे-धीरे मेरा अपना दिमाग भी उस तरफ चलने लगा और नतीजा यह हुआ कि जब मैं दसवीं क्लास तक पहुँचा तो हर हफ्ते मैं और रवि मिलकर लगभग पचास-साठ रुपये कमा लेते थे। ग्यारहवीं क्लास तक यानी स्कूल की पढ़ाई खत्म करने तक हम लोगों ने अपनी एक स्कीम से इतना पैसा कमाया कि अनायास ही हम दोनों को फिजूलखर्ची की आदत पड़ गयी। वह स्कीम बहुत सीधी-सादी थी और पैसे के अलावा भी उसने हम दोनों को बहुत कुछ दिया था। हम दोनों शनिवार के दिन स्कूल की आधे दिन की छुट्टी का फायदा उठाकर नयी दिल्ली के कुछ खास इलाकों में अखबार और मैगजीन्स की रद्दी खरीदने जाते थे। ज्यादा जोर हम लोगों का चाणक्यपुरी और डिप्लोमैटिक एन्क्लेव के क्षेत्र में रहता था जो नया-नया बना था और जहाँ अधिकतर रहनेवाले लोग विदेशी थे। उनके यहाँ से हम लोगों को विदेशी पत्र-पत्रिकाओं की रद्दी बड़ी आसानी से मिल जाती थी। ब्रिटिश, अमरीकन और जर्मन लोगों के घरों पर हमारी विशेष नजर रहती थी क्योंकि वहाँ से अक्सर बहुत-सी ऐसी पत्रिकाएँ मिलती थीं जिनमें नंगी औरतों की रंग-बिरंगी तस्वीरें छपी होती थीं और जिनके जामा मस्जिद के इतवारवाले कबाड़ी बाजार में हमें तिगने-चौगुने पैसे मिलते थे। शनिवार के दिन अपनी जमा-पूँजी से खरीदी हुई वह रद्दी फिर हम रवि के कमरे में बैठकर छाँटते थे और काम की पत्रिकाओं को अगले रोज कबाड़ी बाजार में बेच देते थे। कुछ महीनों में ही कबाड़ी बाजार में हम लोगों की खासी पूछ हो गयी थी क्योंकि हम लोगों के पास एक-से-एक नयी और जोरदार मैगजीन्स लोगों को मिलती थी। कुछ ही दिनों में हम लोगों के ग्राहक बँध-से गये थे और उनमें कुछ तो बहुत ही दिलचस्प लोग थे। एडवर्ड पार्क के सामनेवाले जनाने अस्पताल की एक लेडी डॉक्टर भी उनमें से एक थी जिन्हें फिर रवि मैगजीन्स देने उनके घर जाने लगा था। एक मछली बेचनेवाला 'प्लेबॉय' पत्रिका के अंक हम लोगों से रिजर्व करा लेता था। एक बार मैंने उससे पूछा—तुम्हें अंग्रेजी आती है? उसने बहुत ही मजेदार जवाब दिया था। मेरी तरफ आँख मारते हुए वह मुस्कराकर बोला था—प्यारे, अंग्रेजी में करो या हिन्दी में···जबान का मजा तो अधूरा ही होता है···। मछलीवाले का नाम अशरफ था। धीरे-धीरे हम लोगों की उससे दोस्ती-सी हो गयी थी। शुरू-शुरू में हम दोनों उसे छेड़ने के लिए हर बार उससे हिन्दी-अंग्रेजीवाली बात करते थे और जवाब में वह अपनी उस खास अदा से हमेशा वही जवाब देता था। कुछ दिनों बाद फिर रवि ने उससे पूछना शुरू किया—तो प्यारे अशरफ मियाँ, पूरा मजा कैसे आता है?

अशरफ का जवाब और भी मजेदार था—पूरा मजा तो खैर अल्ला मियाँ ही चखाते है आखिर मे···लेकिन प्यारे, जो सवाल तुम पूछ रहे हो उसके लिए तुम्हारी उम्र अभी जरा कच्ची है···क्या समझे ?

एक और बड़े खास ग्राहक थे हमारे—पहाड़गंज मे उनका एक सिनेमा था। वे तो धीरे-धीरे हम लोगो के थोक ग्राहक हो गये थे और साथ ही उन्होने हमारी स्कीम का बिजनेस पक्ष भी हमें सुझाया। बकौल उनके—तुम दोनों तो यार··· करोड़पति बन सकते हो इस धन्धे में। इस मुलक मे तो आदमी साला अपनी बीवी तक को नंगी नही देख पाता। और फिर गोरी चमडी का भूत तो आदमी को चमार बना देता है। तुम तो बस लाये जाओ माल, बिकवाना मेरी ड्यूटी है···

लेकिन उन दिनों तक हम लोगों का इरादा करोड़पति बनने का था ही नही। और इतवार के दिन वैसे भी कई और जरूरी काम होते थे। प्लाजा और रिवोली सिनेमा मे बारह से तीन बजे वाले शो मे अंग्रेजी की पुरानी फिल्मे घटी दरों पर आती थी—उन्हें हम दोनों पाबन्दगी के साथ देखते थे। अंग्रेजी बोलने मे सबसे ज्यादा मदद उन्ही फिल्मों से हमे मिलती थी। शाम को चार से पाँच बजे तक कबाडी बाजार मे कमाई और उसके बाद सीधे—स्टेशन के सामनेवाली दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी जहाँ इतवार की शाम स्कूल के बच्चो के लिए कई विशेष कार्यक्रम होते थे मसलन डिबेट, कई तरह की प्रतियोगिताएँ। रवि को हालाँकि उन कार्यक्रमों मे ज्यादा दिलचस्पी नही थी लेकिन फिर भी वह मेरे साथ रहने की खातिर वहाँ चला जाता था। ग्यारहवीं क्लास मे आते ही रवि ने मैक्समुलर भवन मे होने-वाली जर्मन क्लासेज में दाखिला ले लिया था। उसे विदेशी भाषाओं को सीखने का शुरू से बड़ा शौक था। ऐसा शायद इसलिए भी था कि उसने तय कर रक्खा था कि वह ज्यादा पढ़ाई नही कर पायेगा और वैसे भी उसे डॉक्टर, इन्जिनियर या अफसर वगैरा बनने में कोई दिलचस्पी नही थी। पढ़ने में वैसे वह बहुत तेज था और इसीलिए मैं अक्सर उससे कहता था कि उसे बी. एस-सी. करने के बाद आई. ए. एस. मे बैठना चाहिए क्योकि वह जरूर उसमे आ जायेगा और असली बात यह थी कि वह एक बहुत अच्छा अफसर बन सकता था। मेरी बात का हर बार वह एक ही जवाब देता था—तुझे यार अक्ल कब आयेगी ? इतनी मुश्किल से तो मैंने उस यतीमखाने से जान छुड़ायी है। और तू कह रहा है कि फिर उसी तरह के यतीमखाने मे जिन्दगी-भर के लिये चला जाऊँ! असल मे तूने सरकारी दफ्तर देखे नही हैं न इसलिए तुझ पर ये अफसरी का भूत सवार रहता है। जिनको तू अफसर कहता है वो सब साले अपने-अपने यतीमखानों के मुनीमजी हैं···समझा ?

बहरहाल मेरे बहुत कहने-सुनने पर रवि ने हायर सैकण्ड्री पास करने के बाद मेरे साथ ही हिन्दू कॉलिज मे बी. एस-सी. के पहले वर्ष मे दाखिला ले लिया था। हालाँकि बाद में मुझे लगा कि उसके दाखिला लेने की असली वजह कुछ और थी। कॉलिज का छात्र होने के नाते वह कॉलिज के हॉस्टल मे रह सकता था। आठवीं क्लास से ग्यारहवीं तक के दौरान उसे कई अलग-अलग जगहो मे बड़ी परेशानियाँ

के बीच रहना पड़ा था। उसके हाथ पहली बार यह मौका आया था कि वह स्वतन्त्र रूप से एक आदमी की तरह साफ-सुथरे ढंग से रह सके। और सचमुच हॉस्टल के कमरे में पहुँचते ही रवि एक बिल्कुल ही दूसरा आदमी बन गया था। उसे कमरा मिलने के बाद जब मैं दूसरे दिन उससे मिलने गया तो वह उस कमरे में इतने सुव्यवस्थित ढंग से और इतने आत्मविश्वास के साथ मौजूद था जैसे बचपन से ही वह उतने साफ-सुथरे माहौल में रहता आ रहा हो। हॉस्टल में रवि का वह कमरा धीरे-धीरे फिर जैसे मेरा कमरा भी होता गया था। इतवार की छुट्टी हम अभी तक अक्सर साथ-साथ ही मनाते थे—अगर कि उसे छुट्टी मनाना कहा जाये तो।

सुधीर मेहता बल्कि सच कहा जाये तो अदिति से हुई उस मुलाकात ने बहुत दिनों बाद मुझे एक इतवार के दिन अपनी दिनचर्या से काट दिया था। बस के इन्तजार में खड़े-खड़े बीते वर्षों की इन सब यादों ने फिर अदिति की परछाईं और उस गन्ध को जैसे बिल्कुल ही पीछे धकेल दिया और फिर रवि की सालगिरह के ख्याल ने तो एक दूसरी ही खुशबू मेरे चारों तरफ फैला दी थी। रवि से मेरी दोस्ती अब बारह साल पुरानी हो चुकी थी—और वह भी उम्र के उस हिस्से के बारह साल जिसके दौरान बच्चों के लिए दुनिया और उसमें रहनेवाले लोग महज खेल-खिलौनों की हैसियत रखते हैं। बहार के मौसम की तरह होती है वह उम्र—पुराने से पुराना दरख्त भी अपने को नयी कोंपलों से सजा लेता है, फूल इतने होते हैं कि यह अहसास ही नहीं होता कि वे हमारे पैरों तले भी पड़े हैं और कुचले जा रहे हैं—एक मद-होश लापरवाही में। जिन्दगी नये-नये खेल करतबों से भरा एक मेला होती है जहाँ न तो इसका कोई होश ही रहता है और न जरूरत कि कोई साथ है या नहीं। लेकिन हम दोनों इस मेले के बाहर-ही-बाहर घूमते रहे थे—चोरी-छिपे उसमें घुसने की कोशिश में, जो कभी-कभी कामयाब भी हो जाती थी। और चोरी-छिपे किये गये कामों में हमेशा एक डर होता है। उसी डर ने हम दोनों के लिए साथ रहने और दोस्त बनने की बहुत बड़ी जरूरत पैदा कर दी थी। हर साल मैं रवि की सालगिरह बड़े जोर-शोर से मनाता था। उसकी सालगिरह का मामला भी बहुत मजेदार है। मेरी सालगिरह घर पर अम्माँ बहुत ही नामालूम और सीधे-सादे ढंग से मनाती थीं। उस दिन सवेरे-सवेरे मुझे नहा-धोकर तैयार होना पड़ता था। अम्माँ मुझसे एक थाली में चावल, घी, सुपारी, रोली और फूल रखवाकर, एक लोटे दूध के साथ, पड़ोस के एक ब्राह्मण-परिवार को भिजवा देती थीं। उस दिन पिछले साल-भर मेरे द्वारा पहने गये कपड़ों में से एक जोड़ी कपड़े वह चौराहे पर किसी भिखमंगे को दे देती थीं और बदले में मुझे एक जोड़ी नये कपड़े मिलते थे और उस दिन खाने को पूरी-कचौड़ी भी। लेकिन उस सबसे मैं कभी बहुत प्रभावित नहीं हुआ था। सालगिरह मनाने का मतलब मुझे पहली बार उस दिन समझ में आया था जब मेरी क्लास में पढ़नेवाले मेरे एक और दोस्त दीपक ने अपनी बर्थ-डे पर मुझे अपने घर बुलाया था। हम लोग तब सातवीं क्लास में थे। दीपक की रवि

से भी दोस्ती थी और इसलिए रवि भी उस दिन वहाँ मौजूद था। दीपक के पिता बहुत अमीर आदमी थे और उसके हवेलीनुमा घर को देखकर मैं तो भौचक्का-सा रह गया था। दीपक ने उस दिन लगभग पूरी क्लास के लड़कों को बुलाया था और जब उसने उन सबके बीच खड़े होकर वह खूब बड़ा केक काटा जिस पर छोटी-छोटी रंगबिरंगी मोमबत्तियाँ जल रही थी तो मैं सचमुच देखता रह गया था। केक काटने के बाद दीपक के मम्मी-डैडी ने उसे माथे पर बारी-बारी से चूमा था और फिर उसके डैडी ने उसके गले में एक सोने की चेन पहनायी थी। बहुत ही भव्य बर्थ-डे पार्टी थी वह लेकिन रवि को शायद वह सब बहुत अच्छा नहीं लगा था। बहरहाल उसके कुछ दिन बाद एक रोज मैंने रवि से बातों-ही-बातों में पूछा—रवि तेरी बर्थ-डे कब होती है?

—मैं तो दादाजी को भी नहीं मालूम यार' ', रवि ने मुस्कराते हुए कहा था।

—क्यों?

—ऐसे ही''', और मैं चुप हो गया क्योंकि मुझे अपनी गलती का अहसास अब जाकर हुआ।

लेकिन अगले ही क्षण रवि ने मुझे मेरी शर्मिन्दगी से फौरन उबार लिया—असल में, अगले साल बताऊँगा कि मेरी बर्थ-डे कब होती है! उसने हँसते हुए कहा था।

—क्यों? क्या फिर से पैदा होगा तू? मैंने भी उसकी हँसी में शामिल होते हुए पूछा था।

—हाँ यार'''ये ही सोच रहा हूँ। कम-से-कम फिर बर्थ-डे तो मनाया करेंगे शान से! उसने जवाब दिया था।

आठवीं क्लास में आते ही रवि अनाथालय से भाग गया था। भागने से पहले उसने दादाजी को एक चिट्ठी में अपने इरादों के बारे में सबकुछ लिख दिया था और उनसे यह भी विनती की थी कि वे उसे वापिस यतीमखाने में लाये जाने की कोशिश न करें। अगर वह किसी मुसीबत में फँस गया तो वह अपने आप ही वहाँ वापिस पहुँच जायेगा। दादाजी ने हमेशा की तरह उसकी बात पर विश्वास किया था और कुछ दिनों बाद फिर रवि ने एक दिन स्कूल से लौटते हुए मुझसे मुस्कराकर कहा था—अब मेरी बर्थ-डे अपनी डायरी में नोट कर ले!

—क्या मतलब? मैं एकाएक कुछ समझ नहीं पाया।

उसने फिर यतीमखाने से भागने की खबर मुझे दी थी और यह भी बताया कि आजकल वह मोटर साइकिल की दुकानवाले उस्ताद के घर ही रह रहा था।

—तो फिर मनायी जाये बर्थ-डे? मैंने बात को खुशी के रंग में रंगने की कोशिश में कहा।

—अबे इस बार तो निकल गयी। अब अगले साल मनायेंगे, उसने हँसते हुए कहा और फिर ड्रामाई अन्दाज में बोला—तैयारियाँ शुरू कर दो सेनापति'''!

अगले साल फिर पाँच सितम्बर के दिन हमने पहली बार वह सालगिरह मनायी थी। जिन्दगी के बेहद भरपूर और खूबसूरत दिनों में वह दिन हमेशा सबसे पहले याद आयेगा। इत्तफाक से वह भी एक इतवार का ही दिन था। हम दोनों ने यह तय किया था कि आधा दिन रवि की मर्जी से मनाया जायेगा और आधा दिन मेरी मर्जी से। दिन के पहले आधे हिस्से के लिए एक अठन्नी उछालकर टॉस किया गया जिसमें रवि ही जीता। सवेरे पाँच बजे उठकर हम लोग पैदल चलकर यमुना के घाट पर पहुँचे। रवि ने वहाँ पहुँचते ही कपड़े उतारे और बिल्कुल बन्दर की तरह उछलता हुआ यमुना में कूद गया। करीब घण्टे-भर तक वह बिल्कुल बेखबर होकर तैरता रहा। उसे तैरना बहुत अच्छा आता था और न जाने कैसे-कैसे करतब वह मुझे दिखाता रहा। मुझे तैरना बिल्कुल नहीं आता था इसलिए मैं किनारे की सीढ़ियों पर पानी में पाँव डाले बैठा रहा। कुछ देर बाद पानी में से ही उसकी नजर एक मालिशवाले पर पड़ गयी और चिल्लाते हुए उसने उसे बुलाया और बोला—पहले भैया की मालिश करो, उसके बाद मैं आता हूँ। मैं बार-बार मना करता रहा लेकिन हारकर मुझे उसकी बात माननी ही पड़ी। बहरहाल वहाँ से हम लोग आठ बजे रवाना हुए क्योंकि धूप बहुत तेज हो चली थी। यमुना बाजार में आकर रवि एक कचौड़ीवाले के यहाँ खड़ा हो गया और हम दोनों ने नाश्ता किया। रवि को चाट-पकौड़ी की बहुत ही बुरी लत थी। यमुना बाजार से निकलकर हम लोगों ने बस पकड़ी और सीधे रिवोली सिनेमा पहुँचे जहाँ सुबह के शो में 'हन्चबैक ऑव नॉट्रे डम' लगी हुई थी। बारह बजे के आसपास जब हम लोग फिल्म देखकर बाहर निकले तो काफी दूर तक चुपचाप चलते रहे। कुबड़े कासीमोडो की कहानी ने हम दोनों को जैसे किसी अँधेरी सुरंग में फेंक दिया था जिसमें कैद हम एक-दूसरे को भी नहीं देख पा रहे थे।

मिण्टो ब्रिज के ऊपर कनॉट सर्कस के बाहरी सर्किल में हम दोनों एक ढाबे में दोपहर के खाने के लिए पहुँचे। रवि ने दो तन्दूरी मुर्गों के साथ कुछ और खाना भी मँगवाया। छककर खाने के बाद वह मुस्कराता हुआ बोला—अब मेरा टाइम तो खत्म हो गया। एक बजा है। अब तू जरा अपना टाइम टेबुल बता...वैसे एक बात मैं तुझे अभी बता दूँ। अभी तो थोड़ी देर मैं सोऊँगा। पार्क में चलते हैं। असल में अमीर आदमियों की ये ही तो निशानी होती है—खाना खाने के बाद आराम..., हम लोग हँसते हुए ढाबे से बाहर निकल आये और फिर कनॉट प्लेस के बीचवाले पार्क में एक पेड़ के नीचे जाकर लेट गये।

कुछ देर बाद अपनी आँखों के ऊपर बाँह डाले रवि एक दूसरी ही आवाज में बोला—एक बात बताऊँ तुझे...जब तक मैं यतीमखाने में रहता था न, तो मुझे बहुत डर लगता था। अब नहीं लगता बिल्कुल। है न अजीब बात?

—सीधी बात कभी तेरे दिमाग में आती है? मैंने हँसते हुए कहा।

—खैर छोड़..., उसने फौरन बात बदल दी—अब ये बता प्रोग्राम क्या है...

—तू बता न···जिसकी बर्थ-डे होती है उसी के मन की चीज होनी चाहिए उस दिन।

—तुझमे न बहुत-सी बातें बिल्कुल लडकियों जैसी हैं···, उसने हँसते हुए कहा और फिर मेरी तरफ करवट लेकर कोहनी के बल लेटकर मेरी तरफ देखते हुए बोला—देख···मुझे मालूम है कि तूने कुछ उल्टा-सीधा सोचा होगा। पता नही तुझको इम्तहान मे इतने नम्बर कैसे मिल जाते हैं। बहुत-सी चीजें तो हमारे यतीमखाने मे एक चौकीदार था उसको भी जल्दी समझ मे आ जाती थी—हालांकि वो इतना उल्लू का पट्ठा था कि कई बार यतीमखाने के दरवाजे पर बाहर से ताला डालने के बाद पूछता था कि अब मैं अन्दर कैसे जाऊँ।

—अच्छा, अच्छा···रहने दे! बड़ा आया अक्लमन्द, मैंने तुनकते हुए कहा।

—नही गुड्डू, उसकी आवाज मे एक अजीब-सी सख्ती आ गयी थी—अब हम लोग उतने छोटे नही रहे। देख, एक बात तू अच्छी तरह समझ ले। न मैं दीपक मेहरा हूँ और न तू। और अगर हममें से एक भी उस जैसा होता तो हम लोगों की दोस्ती ही नही होती। और तू जानता है कि मुझे सच्ची वो सब बिल्कुल अच्छा नही लगता। कुछ देर के लिए वो चुप हो गया और फिर जब वह बोला तो वह सख्ती उसकी आवाज से गायब हो गयी थी—तू मेरे साथ रहता है न···तो बाइ गॉड, मुझे तो हर दिन अपना बर्थ-डे लगता है! और यार असली बात मालूम है, क्या है?

—क्या? मैंने बहुत धीरे-से पूछा था।

—गुड्डू···असली बात तो अभी शुरू ही नही हुई। बाई गॉड, अभी तो बहुत कुछ करना है यार···

बहरहाल रवि की सब बातों के बावजूद उस शाम हम लोगों ने रीगल के पासवाले स्टैण्डर्ड रेस्ट्रां में एस्प्रेसो कॉफी पी थी और ज्यूक बॉक्स में चवन्नियाँ डाल-डालकर खूब गाने सुने थे।

उस बात को तीन साल हो चुके थे। इस दौरान हम दोनों उम्र की उस कँटीली झाड़ी तक पहुँच गये थे जिसे अंग्रेजी मे 'टीन्स' कहा जाता है और हमारी जबान में मसें भीगने की उम्र। तेरह से उन्नीस साल तक की उम्र सचमुच बेरी या करौंदे की झाड़ी ही होती है। सब कॉटे अपनी जगह लेकिन फल कुछ ऐसा लगता है कि हमउम्र तो छोड़िए अच्छी-खासी उम्रवाले लोग तक ललचा जाते है और नतीजा कुल मिलाकर एक ही निकलता है। फल सब तोड़ ले जाते हैं, बचते हैं तो सिर्फ काँटे। राहत के नाम पर फकत अगला मौसम होता है और नये लुटेरे।

कहना मैं यही चाहता हूँ कि अदिति से मिलने के बाद उस अगली सुबह जब मैं रवि से मिलने उसके हॉस्टल जा रहा था तो अचानक इस अहसास ने मुझे चौंका-सा दिया कि इस बीच हम दोनो एक बिल्कुल हो गये, शायद किसी हद तक अनचाही और हर तरह से बिल्कुल अनावश्यक स्थिति मे पहुँच चुके थे। अब

तक कई मायनों में हम दोनों किसी बड़े जंगल में साथ-साथ भटकते जंगली जानवरों की तरह थे जिनमें शायद केवल प्रवृत्तिवश एक-दूसरे के प्रति एक लगाव पैदा हो गया था। लेकिन पिछले इन दो-तीन सालों में हम लोग जैसे उस जंगल से बाहर आ गये थे—पिंजड़ों में न सही लेकिन एक हाँका-सा था जिसने हम दोनों से ही जैसे वो इत्मीनान छीन लिया था जिसके तहत हम लोग कई बार भूखे भी रह जाते थे, कई बार प्यासे भी और कितनी ही बार अनजान—उस दुनिया में जिसमें लोग पिंजड़े लिये घूमते हैं या जाल फैलाये और या फिर हाँका करवाने की तलाश में।

मैं जब रवि के हॉस्टल पहुँचा तो उसके कमरे में ताला पड़ा हुआ था। चाबी हमेशा की तरह ऊपरवाले रोशनदान में थी। दरवाजा खोलकर जब मैं कमरे में दाखिल हुआ तो मेज पर मेरे नाम की एक चिट्ठी थी जो उसने शनिवार की रात को लिखी थी—

प्यारे गुड्डू,

एक जर्मन ग्रुप के साथ मैं आज रात जयपुर जा रहा हूँ। मंगलवार को लौटूंगा। यह पहली वर्थ-डे होगी जब हम दोनों साथ नहीं होंगे। बड़े होने की शायद सबसे बड़ी निशानी यही होती है कि आदमी अलग-थलग पड़ने लगता है। आज शाम को मैंने तेरी कहानी पढ़ी थी। है तो अच्छी लेकिन मुझे ये समझ में नहीं आता कि तू लिखने के लिए इतनी नेगेटिव चीजें क्यों ढूंढ़ता है। जो चीजें आदमी को कमजोर बनाती हैं उनका इलाज लिखना कैसे हो सकता है? उनसे तो आदमी को लड़ना चाहिए बल्कि मेरा तो ख्याल ये है कि उनसे बाहर-ही-बाहर लड़कर, और उनका खात्मा करके उन्हें कूड़े के ढेर में फेंक देना चाहिए। खैर, राइटर तो तू है—तू जाने, मुझे तो बस ये वादा चाहिए कि इस लिखने-विखने के चक्कर में तू अन्दर से पोला नहीं पड़ेगा। प्यार।

तेरा, रवि।

चिट्ठी पढ़कर मैं रवि के बिस्तर पर लेट गया। रुक-रुककर कई बार मैंने वह चिट्ठी पढ़ी। बड़े-बड़े अक्षरोंवाली उसकी बहुत सधी हुई लिखावट में यह पहली चिट्ठी थी जो उसने मुझे लिखी थी। इसके पहले ऐसा कोई मौका ही नहीं आया था। बहुत देर तक मैं उसकी लिखी बातों पर सोचता रहा। जिस कहानी का जिक्र उसने किया था वह मेरी पहली प्रकाशित रचना थी जो इसी महीने एक जानी-मानी पत्रिका में छपी थी। पत्रिका का एक अंक मैंने अपने हाथ से लिखकर रवि को लगभग तीन हफ्ते पहले दिया था। कई दिन मुझे बेसब्री से इन्तजार भी रहा था कहानी के बारे में उसकी राय जानने का। लेकिन उस दौरान उसने उसे पढ़ा ही नहीं था। कहानी छपने के लगभग हफ्ते-भर बाद मुझे सुधीर मेहता का पत्र अलबत्ता जरूर मिला था जिसमें उन्होंने कहानी की तारीफ करते हुए मुझसे

मिलने की दिलचस्पी भी जाहिर की थी। दरअसल सुधीर मेहता खुद भी उन दिनों 'शिलालेख' नामक एक बड़ी पत्रिका के सम्पादक थे। उसी खत में उन्होंने अपनी पत्रिका के लिए भी मुझसे कहानी भेजने के लिए लिखा था। किसी भी नये लेखक पर उस खत का जैसा असर होता ठीक वैसा ही मेरे ऊपर हुआ। न जाने कितनी बार मैंने सुधीर मेहता की उस चार लाइन कि चिट्ठी को पढ़ा था—

प्रिय मित्र,

'आरोह' के नये अंक में आपकी कहानी पढ़ने को मिली। बहुत ही अच्छी लगी। आपकी ऐसी ही एक कहानी 'शिलालेख' में प्रकाशित कर मुझे प्रसन्नता होगी। आप तो दिल्ली में ही रहते हैं—कभी मिलिए।

सस्नेह,

सुधीर मेहता।

अपनी पूरी औपचारिकता के बावजूद उस खत में कुछ ऐसा था जिसने मेरी धड़कनों को तेज कर दिया था। एक अजीब रोमांस-सा मेरी रगों में भारी होकर बहने लगा था। यूँ वह एक मामूली-सा व्यावसायिक पत्र था लेकिन मेरे लिए उसने जैसे एक पिटारी-सी खोल दी थी जिसमें से मैं न जाने कितनी ही चीजें उलट-पलटकर देखता रहा था। लेखक बनने का खयाल मुझे पहली बार आठवीं क्लास में आया था—होम वर्क में एक निबन्ध लिखते हुए। हिन्दी पढ़ानेवाले पण्डितजी ने मेरा वह निबन्ध पूरी क्लास को पढ़कर सुनाया था और उसके बाद मेरी पीठ ठोकते हुए मुझसे कहा था—तुम्हें अब रोजाना कुछ-न-कुछ लिखना चाहिए। लिखने की प्रतिभा हर किसी में नहीं होती। तुम ठीक से अभ्यास करो तो अच्छे लेखक बन सकते हो!

ग्यारहवीं क्लास में मेरी एक लड़की से दोस्ती हुई थी जो हमारे स्कूल के पास वाले लड़कियों के स्कूल में पढ़ती थी और उसे उपन्यास पढ़ने का इतना ज्यादा शौक था कि मुझे पहली बार समझ में आया कि एक लेखक सिर्फ अपनी रचनाओं के जरिये कितने ही अनजान लोगों से बहुत गहरे स्तर पर जुड़ जाता है। कितना खूबसूरत होता है वह रिश्ता जिसमें न तो व्यक्तिगत सम्बन्धोंवाली कोई कठिनाई ही होती है और न ही वह स्वार्थी अपेक्षाएँ जो हर रिश्ते को अपंग बना देती हैं। शायद ही दुनिया में कोई और ऐसा रिश्ता होता हो जो एक पाठक और लेखक के बीच बननेवाले रिश्ते की तरह जिन्दगी-भर आनन्द-ही-आनन्द देता है।

न जाने कितनी ही बातें थी जो उस दिन सुधीर मेहता की उस चिट्ठी ने वापिस बुलाकर मेरे सामने खड़ी कर दी थी। और एक बहुत ही साफ-साफ 'जीत जाने-वाले' नशे की-सी कैफियत मुझ पर छा गयी थी।

ईमानदारी की बात यह है कि मुझे अभी तक यह विश्वास नहीं हो पाया है कि मैं खुद भी एक लेखक हूँ। जहाँ तक मुझे मालूम है इसके दो मुख्य कारण हैं—एक तो अभी तक मैं उस मकनातीसी प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाया हूँ जो एक

लेखक की उपस्थिति मेरे चारों तरफ पैदा कर देती है। ऐसा शायद काफी हद तक इसलिए भी है कि बचपन से ही मैं लेखकों को बिल्कुल उसी तरह से देखता था जैसे आजकल के लड़के फिल्मी सितारों को। दूसरे, मुझे कुछ-कुछ अन्दाजा अब शायद हो चला है कि एक लेखक लगभग हर तरह से एक बहुत ही मुश्किल सम्भावना होता है। जाहिर है कि अच्छा लेखक वही हो सकता है जो पहले अपनी खुद की जिन्दगी अपने पूरे खून, हाड और मास मे जिये और उसके बाद फिर जीने के दौरान बुरी तरह से बिखर गयी उन खून की बूंदो, हड्डियो के टुकड़ो और मास की बोटियो को ढूंढकर, किसी भी सूरत उन्हे जोड़कर फिर से वही इन्सान बन जाये जो वह टूटने और बिखरने से पहले था। यह सिर्फ मुश्किल ही नही बल्कि दुर्लभ है—उसी तरह जैसे अच्छे लेखक। हजारो साल पुरानी इस दुनिया मे वे नाम अब भी बहुत नही हैं जिन्हे हम सचमुच अच्छा लेखक मानते हैं। शायद इसीलिए ऐसा है कि मैं अभी तक 'लेखक' शब्द सुनते ही एक अजीब ढग से बौखला-सा जाता हूँ। ठीक उसी तरह जैसे पिछली रात मैं अदिति को देखकर बौखला-सा गया था। बहरहाल, सुधीर मेहता की चिट्ठी मिलने के तीसरे दिन मैं उनसे पहली बार मिला था, राजेन्द्र नगर मे। उनका मकान ढूंढने मे मुझे खासा वक्त लगा था और जब मुझे मकान मिल गया तो मैं यह जानकर काफी निराश हुआ कि उस मामूली से दुमजिले मकान मे सुधीर मेहता सिर्फ एक किरायेदार की हैसियत से रहते थे—वह भी दूसरी मजिल पर। सुधीर के उन्मुक्त व्यवहार और गर्मजोशी ने अलबत्ता उस निराशा को पूरी तरह से ढँक लिया था। अदिति उस रोज घर मे नही थी। सुधीर ने बहुत ही मोहब्बत और खुलूस के साथ मुझे अपने आप से मिलाया था। वह खुद किचन मे जाकर कॉफी बनाकर लाये थे। उस बीच मैं उस कमरे को देखता रहा था जिसमे मैं बैठा था और जो सम्भवत: सुधीर का ही कमरा था। चारो तरफ दीवार की अल्मारियाँ किताबों से भरी हुई थी। और वह भी उस तरह नही जैसे कि अफसरो या रईसों के यहाँ वे सजी रहती हैं। एक खास तरह की बेतरतीबी उस कमरे की जैसे धड़कन ही थी। सुधीर ने कॉफी बनाने के बाद फिर मुझसे बहुत-से व्यक्तिगत प्रश्न पूछे थे। मैंने सक्षेप मे उन्हे जरूरी बातें बता दी थी। उसके बाद सुधीर ने मेरी उस कहानी के बारे मे कई बाते बतायी जिनके कारण वह उन्हे अच्छी लगी थी। उस शाम उनकी कही एक बात मैं जिन्दगी-भर नही भूलूंगा।

—देखो···राइटर एक मायने मे बहुत ही विचित्र प्राणी होता है। एक ही समय मे उसके भीतर इतनी शक्ति होती है कि वह दुनिया को बदल सकता है लेकिन ठीक उन्ही क्षणों मे वह अक्सर इतना कमजोर भी होता है कि खुद ही खत्म हो सकता है···, और वे चुप हो गये थे। कुछ क्षणों बाद उन्होंने धीरे-से जोड़ा था —अक्सर होता भी यही है·· कि वह खुद ही खत्म हो जाता है···लेकिन इसके लिए ··, उन्होने पता नही किससे यह सवाल पूछा था —इसके लिए जिम्मेदार कौन होता है?

सुधीर का वह सवाल इतने सालों बाद आज भी कभी-कभी उसी तरह मेरे भीतर गूँजता है जैसे उस शाम उस खाली, बेतरतीब कमरे मे गूँजता रहा था।

रवि की इस अचानक गैर-मौजूदगी ने मुझे एक ऐसे खालीपन में धकेल दिया था जिसके लिए मैं बिल्कुल भी तैयार नहीं था। आज कॉलिज की भी छुट्टी थी और यूँ भी किसी और दोस्त से मिलने या उसके साथ कुछ वक्त बिताने का मेरा बिल्कुल भी मन नही था। सहसा मुझे लगा कि कही कुछ गलत है। पहले तो कभी मेरे साथ ऐसा नही हुआ। एकदम से यह इतनी फुरसत मेरे पास कहाँ से आ गयी कि मैं इन सब बेकार ख्यालों को किसी वीरान इमारत की मनहूसियत मे चमगादड़ों की तरह उड़ते देख रहा हूँ। कल रात भी मैंने यही किया था—कितनी देर तक मैं सड़कों पर आवारा फिरता रहा था। और आज फिर मैं यहाँ इस खाली कमरे मे लेटा न जाने क्या बेसिर-पैर की बातें सोच रहा हूँ।

रवि की नजरें बहुत तेज हैं। वह बिल्कुल ठीक कहता है कि मेरे अन्दर कही कुछ ऐसा जरूर है जो नगेटिव है, बीमार है या कमजोर पड़ने लगा है और मैं अपनी लापरवाही मे उसे पनपने दे रहा था। कल इतवार था—पैसा कमाने का दिन, जिसे मैंने पूरी तरह गँवा दिया था। सुधीर मेहता से तो मुझे शाम को ही मिलना था। दिन-भर मैं कुछ-न-कुछ जरूर कर सकता था। परसों यानी शनिवार को मैं टूरिस्ट ऑफिस भी नही गया था। यदि गया होता तो इतवार के लिए कोई लोकल ग्रुप जरूर मिल जाता। रवि मुझसे कई बार कह चुका है कि टूरिस्ट गाइडवाले काम मे पैसा तो अच्छा है ही, नये-नये लोगों से मिलना होता है, तमीज-तहज़ीब, कायदे-कानून सीखने को मिलते हैं। मुझे खुद भी काफी पसन्द है यह काम, लेकिन पता नही क्यो मैं उसमे पूरी दिलचस्पी नही लेता। यह ठीक है कि रवि को जर्मन भाषा के कारण भी बहुत फायदा होता है लेकिन साल-भर के दौरान ही टूरिस्ट ऑफिस मे उसकी इतनी पूछ हो जाना सिर्फ उसी कारण नही है। उसके पीछे रवि की मेहनत भी है और गहरी दिलचस्पी भी। एक मैं ही हूँ जो रुक गया हूँ। रवि उसी रफ्तार से भाग रहा है—साँस बाँधे···

मैं उठकर कमरे मे ताला डाल हॉस्टल से बाहर आ गया। दिन के बारह बजे थे। मैंने लालकिलेवाली बस पकड़ी और कुछ देर बाद लालकिले के भीतर मैं विदेशी सैलानियों के एक झुण्ड के पीछे-पीछे, उनके साथवाले गाइड की बातें सुनता हुआ चल रहा था। रवि ने ही मुझे यह तरकीब बतायी थी पेशेवर गाइडों के लटके-झटके सीखने की और उस जानकारी को बेहतर ढंग से तैयार करने की जो ज्यादातर गाइड जाने-अनजाने बहुत बेकार ढंग से टूरिस्ट लोगों को ऐतिहासिक इमारतों और इतिहास के बारे मे देते थे।

सैलानियों के लिए लालकिले की सैर घण्टे-भर का काम होता है। किसी बड़ी कम्पनी की तरह सरकार का पर्यटन विभाग उन्हें उसी तरह का रंगबिरंगी छपाई वाला पर्चा दे देता है जैसा कि किसी अच्छे रेडियो या सिलाई मशीन के साथ आता है। उसमे छपी जानकारी अक्सर स्कूली किताबों के पाठ से उधार ली गयी होती

उस्ताद अब बूढ़े हो गये थे। यूँ तरक्की उन्होंने बहुत की थी। आठवीं क्लास के दौरान जब रवि अनाथालय से भागकर उनके यहाँ पहुँचा था तो उस्ताद बड़-शाहबुल्ला के पास एक गली में एक छोटे-से मकान में रहते थे और उसी के बाहरी हिस्से में एक टीन की चादर तानकर उन्होंने अपनी दुकान खोल रखी थी। रवि ने काम तो वहाँ बचपन में ही किया था लेकिन अनाथालय से भागने के बाद वह उसी टीन की चादर के नीचे महीनों सोया भी था। उस्ताद को धीरे-धीरे रवि से बहुत मोहब्बत हो गयी थी। लाड में वे उसे 'मन्की प्लास' कहा करते थे क्योंकि रवि हर काम के लिए उसी नाम का औजार उठाकर जुट जाता था। उस्ताद उसे बहुत समझाते थे—बरखुरदार···ये जो इतने सारे औजार इस बक्से में पड़े हुए हैं ये नाश्ते के लिए नहीं मँगवाये गये। हर काम के लिए अलग औजार होता है। जैसे तलवार की जगह तलवार और सुई की जगह सुई। उसी तरह से पेचकश की जगह पेचकश और प्लास की जगह प्लास। लेकिन तुम्हें पता नहीं इस मन्की प्लास से ऐसी क्या दुश्मनी हो गयी है कि हरदम उसके पीछे पड़े रहते हो···और फिर वो अपने कल्ले में दबे पान को चबाते हुए हँसने लगते थे—अभी तो मोटर साइकिल की ही बात है · कल को जब दुनिया की मरम्मत करने निकलोगे तब भी ये ही उसूल काम आयेगा बेटा मन्की प्लास !

अनाथालय के 'दादाजी' के बाद उस्ताद रहीम खाँ दूसरे आदमी थे जिनकी रवि बहुत इज्जत करता था। उस्ताद अपने हुनर में तो माहिर थे ही साथ ही बहुत नेक और पाबन्द किस्म के मुसलमान थे। कुछ ही सालों में उनकी मेहनत ने रंग दिखाया और बड़-शाहबुल्ला की उस गली से उनकी दुकान दरियागंज के बाजार में थाने के ठीक सामने 'रहीम वर्कशॉप' के नाम से मशहूर हो गयी थी। रवि हर हफ्ते शुक्रवार के दिन उनके पास जरूर जाता था और शौकिया कुछ देर के लिए उनके काम में हाथ भी बँटाता था। कभी-कभी मैं भी उसके साथ चला जाता था क्योंकि उस्ताद में काफी कुछ ऐसा था जो बाबा से मिलता था सिवाय इसके कि उस्ताद बातें बहुत करते थे और क्या लच्छेदार होती थीं उनकी बातें !

उस रोज भी हम दोनों उस्ताद के वर्कशॉप पर बैठे हुए थे। शाम के करीब छः बजे थे। दुकान पर ज्यादा भीड़ नहीं थी और उस्ताद हमेशा की तरह हमारी खातिरदारी में आम काट रहे थे। रवि दुकान पर खड़ी एक भारी भरकम मोटर साइकिल पर झुका हुआ था कि इतने में लगभग हमारी ही उम्र के दो लड़के दुकान पर आये और उनमें से एक ने काफी भद्दे ढंग से उस्ताद से पूछा—क्यों बड़े मियाँ, हो गयी गाड़ी या कुछ लम्बा इरादा है?

उस्ताद ने मुस्कराते हुए अपने खास अन्दाज में जवाब दिया—

—इरादे तो सब नेक ही हैं साहब बहादुर, अपने हाथ में तो बस खिदमत है। गाड़ी आपकी तैयार है लेकिन मेरा मश्विरा यह है कि अब आप खुलवा ही लीजिए इसे एक बार। रिंग्स की उम्र पूरी हो चली है अब।

—तुम लोग मार चूना लगाने से बाज नहीं आते, उसी लड़के ने उसी तरह से

कहा और पैण्ट की पिछली जेब से बटुआ निकालते हुए बोला—खैर अभी क्या दे दूँ ?

—कार्बुरेटर की पिन बदली है, हैड लाइट का शीशा और गेयर वायर। पाँच रुपये लेबर के। पैंतीस रुपये हो गये। उस्ताद ने धीरे-से कहा और आम की फाँकों-वाली प्लेट मुझे देते हुए बोले—लो बेटा, खाओ।

—होने-वोने की बात छोड़ो बड़े मियाँ, ये बताओ कि दूँ कितने ? और वह बटुए मे से पाँच-पाँच के तीन नोट निकालकर उस्ताद की तरफ फेंकता हुआ बोला —खैर ये रख लो !

उस्ताद ने जमीन पर बिखरे उन नोटो को एक-एक करके उठाया और उन्हे वापिस उसी को देते हुए बोले—मैंने अर्ज किया कि पैंतीस रुपये होते हैं। और वो भी सामान और मेहनताने के, उनकी आवाज बिखरने-सी लगी थी जिसे फिर उन्होंने एकाएक साधकर बहुत ठण्डे ढंग से कहा, खैरात के नही !

—लगता है किसी रईस की औलाद हो लेकिन नालायक निकल गये, वह लड़का उसी मोटर साइकिल की तरफ बढता हुआ बोला—जहाँ रवि अब सीधा खड़ा होकर उफनती हुई आँखों से उसे देख रहा था।

उसकी बात सुनकर मैं भी प्लेट रखकर खड़ा हो गया और उसकी तरफ बढ़ते हुए बोला—ऐ मिस्टर, जरा तमीज से बात करो'''तुम्हारे बाप की उम्र के हैं ये !

वह तब तक उस मोटर साइकिल के पास पहुँच चुका था जिसके दूसरी तरफ रवि खड़ा था। मेरी बात सुनकर वह मुड़ा और गुर्राते हुए बिल्कुल फिल्मी ढग से बोला—तेरा बाप है क्या ?

—उसका नही, मेरा है''', रवि ने पीछे से कहा और जैसे ही वह रवि की तरफ मुड़ा रवि ने पूरी ताकत से उसके जबड़े पर एक घूँसा जड़ दिया।

पलक झपकते ही फिर सबकुछ बदल गया। उस भरपूर घूंसे की चोट से वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा। रवि मोटर साइकिल को फलांगकर उसके ऊपर लपका। उस्ताद रवि को रोकने के लिए दौड़े। उसके साथवाले लडके ने नीचे पड़ी किसी मोटर साइकिल की चेन उठाकर रवि की पीठ पर वार किया और मैंने नीचे पड़ी एक लोहे की छड़ उठाकर उस लड़के की दोबारा उठती बाँह पर पूरी ताकत से दे मारी। चेन की चोट से रवि तड़पकर जैसे ही घूमा, नीचे गिरे हुए उस लड़के ने पास पड़ा हुआ लोहे का हथौड़ा उठाकर रवि के पैर मे दे मारा। फिर तो मुझ पर जैसे खून सवार हो गया। आगे बढ़कर मैंने उसकी उस बाँह को जिसमे हथौड़ा था अपने पैर के नीचे दबाकर दूसरे पैर से न जाने कितनी ठोकरें उसके चेहरे पर मारीं। उधर रवि ने उस बीच उस दूसरे लड़के के दोनो हाथ पकड़कर पीछे की तरफ खींच लिये थे, और उसे जमीन पर उल्टा डालकर उसकी बाँहो को मरोड़ते हुए बुरी तरह से उसके सिर को बार-बार जमीन पर मार रहा था। पत्थर के पटियों से पटा हुआ जो फर्श बरसो से पड़े मोबिल ऑइल के धब्बों के कारण काला पड़ चुका था, वह भी कुछ ही क्षणों मे सुर्ख धब्बों से भर गया था। भीड़ इकट्ठा हो

गयी थी और उस्ताद लगभग रोते हुए हम दोनों को उन्हें छोड़ देने के लिए चिल्ला रहे थे लेकिन हम दोनों बरसों पहले के चौथी क्लास में पढ़नेवाले वही बच्चे बन गये थे जिन्होंने स्कूल में एक दिन पदमचन्द को घेरकर मारा था। जब भीड़ बढ़ने लगी तो मैंने रवि से कहा—रवि, यहाँ से ले चलो सालों को, उधर चल अंसारी रोड की तरफ · समझ गया न···खँडहर के पीछे···इन सालों को वहाँ बतायेंगे कि कौन है इनका बाप ! मेरी बात सुनते ही रवि ने अपने शिकार को जमीन से उठाकर खड़ा किया और उसकी दोनों बाँहों को पीछे की तरफ ऐंठकर उसकी टाँगों में लात मारते हुए बोला—चल अब यहाँ से···भाग···साले नहीं तो खत्म कर दूँगा यहीं। खून से लथपथ चेहरा लिये वह लड़खड़ाता हुआ भागने लगा। उसके पीछे-पीछे ही मैंने उसके साथी को भी उसी तरह से दौड़ाया और चलने से पहले वहाँ इकट्ठी भीड़ से चिल्लाकर कहा—खबरदार कोई आया तो······इससे भी बुरी हालत होगी··। जब तक हम दोनों उन्हें लेकर अंसारी रोडवाली खँडहर दीवार के पीछे पहुँचे, उन दोनों के होशोहवास गुम होने लगे थे। उन्हें मालूम था कि हम उन्हें वहाँ क्यों लाये हैं। उन्हें यह भी मालूम था कि उस पूरी भीड़ में से वहाँ कोई उन्हें बचाने नहीं आयेगा। चौराहा पार करते ही वो दोनों रोते हुए गिड़गिड़ाने लगे थे—भाई साब, माफ कर दो···माँ कसम·· अब कभी नहीं होगी ऐसी गलती··· भगवान के लिए···आपके हाथ जोड़ता हूँ···।

खँडहर दीवार के पास कोने में कचरे का एक बहुत बड़ा ढेर था। हम दोनों ने उन्हें उसी पर लिटा रखा था। इसके पहले कि रवि कुछ कहता मैंने उनमें से एक का गिरेबाँ पकड़कर उठाया और दोनों हाथों से उसकी गर्दन पकड़कर बोला—मेरा बाप नहीं था वो···इसीलिए छोड़ रहा हूँ तुझे ··समझा ? अगर होता तो स्साले तुझे वहीं पहुँचा देता जहाँ से तू निकला है···

रवि ने उस फसाद की जड़ के मुँह पर थूकते हुए कहा—थू ··लानत है तुझ पर · लेकिन एक बात सुन ले···अगर आज के बाद मुझे पता चला कि तू दरियागंज से गुजरा है तो याद रख···इसी जगह लाकर तुझे खत्म करूँगा·· समझ गया न···और पुलिस-वुलिस के चक्कर में आया तो समझ ले लाश भी नहीं मिलेगी फिर···

और उन्हें वहीं रोते-चिल्लाते छोड़ हम लोग वर्कशॉप वापिस आ गये थे जहाँ उस्ताद अपनी कुर्सी पर बैठे बिल्कुल किसी बच्चे की तरह सुबक रहे थे।

रवि ने उनकी गर्दन में बाँहें डालकर धीरे-से कहा था—उस्ताद, माफ कर दो···और घबराओ मत बिल्कुल, उसकी तो अब सात पुश्तें भी इस सड़क से नहीं गुजरेंगी।

मैंने भी उस्ताद के पीछे खड़े होकर उनके दोनों कन्धों पर हाथ रखकर कहा था—उस्ताद···असल में बर्दाश्त नहीं हुआ वो सब···हमें माफ कर दीजिए। उस्ताद ने आँसुओं से भीगा अपना चेहरा ऊपर उठाया और एक अजीब ही तरह की सख्त आवाज में डाँटते हुए, हिचकियों के बीच चिल्लाकर वे बोले—ये ही सीखे

तुम लोग जिन्दगी-भर मुझसे ! अरे नामुरादो···मुझसे ही तो कहा था उसने वो सब। और अल्लाह ताला को अगर वो मंजूर न होता तो मुझे खुद न दी होती उसने औलाद। कम-से-कम अपनी औलाद को मार-पीट तो लेता मैं इस गुनाह के लिए···तुम लोगों ने तो अजाब कर दी है मेरी जिन्दगी···खुदा की कसम···तुम लोग तो बिल्कुल दरिन्दे हो ··, और फिर वो रवि पर बरस पड़े थे—और तू··· खबरदार अब जो तू कभी आया यहाँ। मर गया तेरा उस्ताद आज। खत्म हो गया सबकुछ। या खुदा···रहम कर ए रहीम ! और वे फूट-फूटकर रोने लगे थे। हम दोनों अपराधियों की तरह उस्ताद के सामने खड़े रहे थे। फिर जब उन्हें होश आया कि रवि का जिस्म खून से लथपथ था और मेरी हालत भी बहुत अच्छी नहीं थी तो उनमें एक और बदलाव आ गया जो पहले की तरह ही डरावना-सा था। आदमी का और वो भी उस्ताद-जैसे आदमी का रोना बिल्कुल उसी तरह से डरावना था जैसे कि किसी औरत का ऐसे क्षणों में चुप हो जाना जबकि अमूमन उसे रोना चाहिए।

उस्ताद ने अपने यहाँ काम करनेवाले एक छोटे-से लड़के को भेजकर रिक्शा मँगवाया। जब रिक्शा आ गया तो मैंने हिम्मत करके कहा—उस्ताद, अब आप यहीं रुकिए। मैं ले जाता हूँ रवि को डाक्टर के पास।

वे साथ आने के लिए बजिद थे लेकिन आखिरकार मैंने इस बात पर उन्हें राजी कर लिया कि अपनी मरहम-पट्टी करवाकर हम फिर उनके पास वापिस आयेंगे। रिक्शेवाले से उस्ताद ने कहा—देखो बेटा पास ही किसी डाक्टर के यहाँ ले जाओ इन लोगों को। देर तो हो गयी है लेकिन जो भी खुला दीखे वहाँ ले जाओ जल्दी से।

रिक्शेवाला सचमुच भला आदमी था। तेजी से पैंडल मारते हुए उसने रिक्शा बढ़ाया और हम लोग फिर अन्सारी रोड की तरफ चल पड़े। दिल्ली गेट से निकलते ही रवि ने अपना सिर मेरे कन्धे पर टिका लिया और धीरे-से बोला—गलती हो गयी गुड्डू···असल में मैं भूल ही गया कि उस्ताद भी वहाँ हैं···, और फिर वह एक अजीब ढंग से, साँस छोड़कर, थरथराते हुए बोला—ओ गॉड···वॉट अ वर्ल्ड इट इज गुड्डू···। (हे भगवान···कैसी दुनिया है ये गुड्डू)

कुछ देर बाद रिक्शा रुक गया। रिक्शेवाला कह रहा था—भय्या···ये खुली है दुकान···देख लो तनिक···

मैं रवि को लेकर उतरा और अपने सहारे उसे लेकर उस दुकान की सीढ़ियाँ चढ़ा ही था कि सामने अदिति खड़ी थी—अरे एएए···तुम ! माई गॉड···वॉट इज इट ? (हे ईश्वर···क्या हुआ ये)

कुछ क्षणों तक तो मैं भौचक्का-सा उनकी तरफ देखता रह गया फिर मेरे मुँह से निकला—आ आ आप···आ॰ यहाँ···कैसे ?

—कैसे क्या ? भई मैं डॉक्टर हूँ···लेकिन ये तुम लोगों की हालत क्या हो रही है ? चलो अन्दर चलो, चैम्बर में···

सफेद पार्टीशन के पीछे यह एक बड़ा-सा हिस्सा था जिसे एक पर्दे ने दो भागों में बाँट रक्खा था। अदिति के पीछे-पीछे हम दोनों भी उसमें दाखिल हुए। रवि को मैंने उनकी टेबल की साइड में रक्खे एक स्टूल पर बैठा दिया और बोला—असल में हम दोनों का कुछ लोगों से झगड़ा हो गया। ये मेरा दोस्त है रवि। आप जरा देख लीजिए···इसकी पीठ मे उन लोगो ने चेन मार दी थी।

—माई गॉड···चेन मतलब···, अदिति बजाय अपनी कुर्सी पर बैठने के रवि के पीछे आकर खड़ी हो गयी और बोली—शर्ट उतारो तो!

—मोटर साइकिल की चेन···, मैंने धीरे-से कहा—और पैर मे भी इसके चोट लगी है।

रवि ने इस बीच अपनी बुशर्ट उतार दी थी और अदिति का चेहरा अजीब-सा हो गया था। बड़े ध्यान से उन्होंने उसकी पीठ पर उधड़ी हुई खाल की उस लकीर को देखते हुए आवाज दी—ललोंही, जरा कॉटन लेकर आओ, और उसके बाद उन्होंने रवि से कहा—चलो, इधर आओ।

रवि के पीछे-पीछे मैं भी पर्दे के दूसरी तरफ चला गया जहाँ दीवार के सहारे एक ऊँची-सी बेंच लगी हुई थी और उसके पास ही एक ट्रॉली पर दवाइयों की ट्रे और कुछ इन्स्ट्रूमैण्ट्स इत्यादि रक्खे हुए थे। रवि बेंच पर पेट के बल लेट गया। इसी बीच एक नर्स हाथ मे सर्जीकल कॉटन का रोल लिए वहाँ आ गयी। अदिति ने उससे वह लेकर ट्रॉली पर रख दिया और बोली—बाहर का दरवाजा बन्द कर दो। ड्राइवर है न बाहर?

—यैस मैडम, कहकर वह चली गयी।

अदिति ने रुई के टुकड़ो को किसी दवा मे भिगो-भिगोकर रवि की खून से सनी हुई पीठ को साफ किया और उसके बाद बोली—टिंक्चर लगाना भी जरूरी है, तकलीफ तो नही होगी ज्यादा?

—जी नही, रवि ने धीरे-से कहा।

टिंक्चर लगने के दौरान रवि उसी तरह बिल्कुल चुपचाप पड़ा रहा। अदिति ने फिर किसी दवा का पाउडर छिड़ककर दो-तीन जगह रुई लगाकर ही ड्रेसिंग कर दी और फिर बोली—उठो। अब पैर दिखाओ ज़रा!

रवि उठकर बैठ गया और उसने पैण्ट ऊपर सरकाकर फिर अपना पैर दिखाया। ऐड़ी के कुछ ऊपर टाँग के बाहरी हिस्से में एक गेंद के बराबर हिस्सा बिल्कुल नीला पड़ गया था। अदिति ने उसे गौर से देखकर 'हूँऊऊ' कहा और फिर उसकी ड्रेसिंग करते हुए उन्होंने धीरे-से पूछा—यहाँ क्या लगा था?

इसके पहले कि मैं कुछ कहता रवि जल्दी से बोल उठा—वो···पता नही उसके हाथ मे कोई चीज थी···

पट्टी बँधवाकर रवि बेंच से उतर आया और बाहर निकलते हुए बोला—मैं उधर बैठता हूँ गुड्डू···जब वह बाहर चला गया तो अदिति, जो इस बीच ट्रॉली की चीजों को ठीक-ठाक कर रही थी मेरी तरफ मुड़ी और एक बार मुझे ऊपर से

नीचे तक देखकर एक लम्बी साँस छोड़कर बोली—अब तुम बताओ···चोट लगी है न तुम्हें भी ? आइ टेल यू ··यू बॉयज आर मैड···(मैं कहती हूँ···तुम लोग तो पागल हो) तुम लोगों को शर्म नहीं आती इस तरह से लड़ते हुए ! चलो इधर आओ, उन्होंने डाँटते हुए कहा।

मैं चुपचाप गर्दन झुकाये जाकर बेंच पर बैठ गया और खून के धब्बों से भरी अपनी टी-शर्ट उतारकर मैंने अपना सीना उन्हें दिखाया जहाँ छीना-झपटी के दौरान कई जगह लोहे की उस छड़ का सिरा मेरे सीने पर लगा था। घावों को देखकर अदिति ने अपने होंठ भींचकर कई बार अपना सिर झटका और उसी सख्त आवाज में बिल्कुल धमकाती हुई-सी बोली—मालूम है मैं कितना गलत काम कर रही हूँ ये ? ऐसे केस को देखकर पहले मुझे पुलिस को खबर करनी चाहिए···, और फिर उन्होंने जिस ढंग से अपनी आवाज नीची करके मुझसे पूछा—सच बताओ···कोई मर-मरा तो नहीं गया ? तो मैं बावजूद सारी तकलीफ और उनकी डाँट-फटकार के अपनी हँसी नहीं रोक पाया—नहीं, मरा तो कोई नहीं !

··लेकिन मर सकते थे तुम···, उन्होंने एक-एक शब्द को झुंझलाहट में चबाते हुए कहा—अगर इस जगह जरा-सी और डीप होती न इन्जरी···तो काम तमाम हो गया था···समझे ? उन्होंने सीने के बायीं तरफवाले घाव पर दवा लगाते हुए कहा। दवा लगाने के बाद जैसे ही उन्होंने रुई और बैण्डेज उठायी मैंने धीरे-से कहा—देखिए, पट्टी मत बाँधिए···ऐसे ही ठीक है।

उन्होंने गौर से मेरी तरफ देखा और आखिरकार वह हल्की-सी मुस्कराहट जो उन्हें सचमुच बहुत सुन्दर बना देती थी, उसके चेहरे पर उभर आयी—वैसे मार तुम्हें बहुत पड़नी चाहिए···स्टूपिड···, और उनके बाद वो कोने में लगे वॉश बेसिन की तरफ बढ़ते हुए बोली—अच्छा, मैं गोलियाँ और दे देती हूँ। उन्हें टाइम से खाना है और कल मुझसे आकर मिलना भी है—समझ गये न ? मैं चार बजे आ जाती हूँ यहाँ क्लीनिक पर।

गोलियाँ वगैरा लेकर जब हम बाहर निकले तो अदिति भी पीछे-पीछे आ गयी—तुम लोग जाओगे कैसे···कहो छोड़ दूँ ?

—नहीं मैडम···थैंक्यू···, रवि ने बहुत इज्जत के साथ कहा—थैंक्यू सो मच रिअली !

—थैंक्यू···एण्ड गुडनाइट, मैंने न जाने किन-किन चीजों से भरी एक मुस्कान के सहारे उनसे कहा।

—ओके···गुडनाइट दैन, और वो सामने ही खड़ी एक सफेद रंग की इम्पोर्टेड फियाट में जाकर बैठ गयी जिसे ड्राइवर ने उन्हें देखते ही स्टार्ट कर लिया था।

उस गाड़ी को हम दोनों तब तक देखते रहे जब तक कि वह नजरों से ओझल नहीं हो गयी। उसके बाद हम दोनों लगभग एक-साथ ही पीछे की तरफ मुड़े—उस साइन बोर्ड को देखने के लिए जो क्लीनिक के ऊपर टँगा हुआ था।

सफेद रंग का वह एक काफी बड़ा लेकिन बहुत सादा बोर्ड था जिस पर काले अक्षरों मे लिखा हुआ था—

डा. अदिति दयाल
एम. बी. बी. एस, एम. एस. (हैम्बर्ग), एफ. आर. सी. एस. (इंग्लैण्ड)
गायनोकॉलोजिस्ट

बोर्ड से नजरें हटाकर हम लोगों ने एक-दूसरे की तरफ देखा लेकिन इतने में ही वह नर्स बाहर निकली और दरवाजा बन्द करके ताला लगाने लगी। हम दोनों चुपचाप आगे बढ गये। कुछ दूर जाने के बाद रवि ने पूछा—कौन हैं ये गुड्डू ?

—डॉक्टर अदिति दयाल, मैंने कुछ सोचते हुए कहा।

—डोण्ट बी एन ईडियट'' , रवि एकदम झुंझला गया लेकिन अगले ही क्षण फिर अपने आप ही हँसने लगा—लेकिन खैर मान गया यार तुझे आज तो''' प्रतिभाशाली लेखक से ज्यादा तू प्रतिभाशाली फाइटर है। बाई गॉड अच्छा चलता है तेरा हाथ। मेरी मान तो ये सब चक्कर छोड और बॉम्बे चला जा सीधा''' फाइट कम्पोजर ! फिल्मी दुनिया ! चाँदी-ही-चाँदी है प्यारे'''

उस्ताद के वर्कशॉप तक हम लोग पैदल ही आये। उन्हें अपनी मरहम-पट्टी वगैरा दिखाकर और अगले दिन घर आने का वादा करके हम दोनों ने एक रिक्शा पकड़ा और चांदनी चौक होते हुए हम लोग घर पहुँचे। चांदनी चौक इसलिए कि वहां फुटपाथ वाले बाजार से पाँच-पाँच रुपये वाली टी-शर्ट खरीदनी जरूरी थी क्योंकि रिक्शे मे बैठे हुए भी कपड़ों पर खून के धब्बे देखकर लोग बड़े ध्यान से हमें देखने लगते थे। दूसरे घर भी जाना ही था। हालांकि घर पहुँचकर मैंने अम्मां से हॉस्टल जाकर पढ़ाई का बहाना करके रात-भर घर से बाहर रहने की इजाजत माँग ली और फौरन ही नीचे आ गया। रवि इस दौरान नीचे ही खड़ा रहा था। लौटकर मैंने उससे कहा—आज मैं भी वर्कशॉप में ही सोऊँगा।

सोना अलबत्ता काफी मुश्किल साबित हुआ उस रात। मेरी आदत हमेशा पेट के बल लेटकर सोने की थी और बकौल रवि के सोने की पोजीशन से आदमी का सारा कैरेक्टर बताया जा सकता है। राजा-महाराजा और बच्चे हमेशा चित्त लेट-कर सोते हैं, गरीब आदमी और औरतें करवट लेकर और घुटने सिकोड़कर, बुरी आदतों में फँसे जवान लड़के-लड़कियों का गुजारा पेट के बल लेटे बिना नहीं चलता और सरकारी नौकर को सोने के लिए मेज, कुर्सी और फाइलें चाहिए। लेटकर सोना बिचारे की किस्मत में ही नहीं होता। बहरहाल न रवि बादशाह की तरह पीठ के बल चित्त लेट सकता था और न मैं बुरी आदतों मे फँसे जवान लड़के की तरह पेट के बल। नींद की कोशिश के उस दौरान घूम-फिरकर बात फिर अदिति पर आ गयी। रवि को शायद लग रहा था कि मैं उनके बारे मे उसे कुछ बताना नहीं चाहता और हकीकत यह थी कि मुझे उनके बारे में यह दूसरी बात भी कि वे डॉक्टर हैं, आज ही पता चली थी। हुआ दरअसल यह था कि सुधीर मेहता से तो पिछले साल-भर के दौरान मेरा मिलना लगभग हर हफ्ते ही होता रहा था।

मुझे याद है कि शुरू-शुरू में तो मैं अक्सर इस बात की कोशिश करता था कि किसी तरह उनके घर जाने का मौका मुझे मिल जाये क्योंकि उसमें शायद अदिति से भी मिलने की सम्भावना थी। लेकिन 'ला बोहीम' वाली उस पहली मुलाकात के बाद महीनों मैं उन्हें नहीं देख पाया था। फिर अचानक एक दिन सुधीर के साथ वो मुझे कनॉट प्लेस में मिली। मुझे लग रहा था कि शायद वो मुझे पहचानेंगी नहीं और सुधीर भी शायद अपने भुलक्कड़ स्वभाव के कारण मेरा परिचय फिर पहली बार की तरह करवायेंगे। लेकिन मुझे देखते ही सुधीर से पहले वे बोल उठी थीं—हैलो आदित्य! क्या हाल हैं भई, तुम तो फिर नजर ही नहीं आये।

—हाँ, आपसे कुछ मुलाकात हो ही नहीं पायी, मैंने कहा—एक-दो बार तो मैं घर भी आया था, आप थे नहीं!

—कहाँ घूम रहे हो तुम? इस बार सुधीर ने पूछा।

—कहीं नहीं, ऐसे ही···आवारागर्दी हो रही थी, आप लोग कहाँ···? मैंने पूछा।

—मैं तो फिलहाल कुली की हैसियत से साथ हूँ, इनके साथ, सुधीर ने अपने खास कहकहे के साथ बात पूरी की और फिर बताया—इन्हें शॉपिंग करनी है कुछ।

अदिति की बात ने सुधीर को एक और कहकहा लगाने पर मजबूर कर दिया जो न सिर्फ पहलेवाले से कमजोर ही था बल्कि मुझे तो वह बिल्कुल खोखला-सा लगा।

—भई ये तो लाल रंगवाले हैं···, अदिति ने शरारत भरी मुस्कराहट से कहा था—न सही झण्डा हाथ में बदन पर लाल कमीज ही काफी है···भ्रम तो बना ही रहता है न!

सुधीर ने बनावटी गुस्से से अदिति की तरफ अपनी आँखें तरेरी और फिर मुझसे बोले—फिर तो अब तुम भी साथ आ जाओ, क्रान्ति हो ही जाये आज! इस बार अदिति हँसी थी और जैसे किसी ने हरसिंगार का पेड़ हिला दिया हो—सफेद-नारंगी फूलों की बारिश-सी होने लगी थी उनके चेहरे पर। आखिरकार अपनी हँसी पर काबू पाते हुए उन्होंने कहा था—अच्छा, पता तो चले कि कहाँ होगी ये क्रान्ति? देखो भई कॉफी हाउस मैं नहीं जानेवाली, अभी से बता देती हूँ। शोर के मारे सिर भिन्ना जाता है हमारा तो!

—तुम भी यार यूँ ही हो···, सुधीर ने उन्हें छेड़ते हुए कहा था—वो क्रान्ति ही क्या जिसकी मेहमाननवाजी पूँजीवाद न करे। लेकिन तब कार की ही मोटर गाड़ी में गये थे आखिर में···, एक और कहकहा और उसके बाद वो आगे बढ़ते हुए बोले—अब ये तो तुम्हारी श्रद्धा है, वैसे इस वक्त हम लोग 'वोल्गा' के सामने पहुँच चुके हैं।

—दैट्स अ गुड आइडिया, अदिति ने फौरन कहा—कॉफी पी ली जाये यहीं। थकान भी लग रही है।

सुधीर तब तक उस रेस्ट्रॉं का गेट खोलकर अन्दर दाखिल हो चुके थे। क्षण-भर के लिए मैं कुछ शर्मिन्दा-सा हो गया लेकिन फौरन ही फिर मैंने दरवाजा पकड़ कर अदिति के लिए खोला।

—थैंक्यू आदित्य ! अदिति ने धीरे-से कहा और हम लोग हॉल में दाखिल हुए। करीब घण्टे-भर तक हम लोग साथ रहे थे लेकिन उस दौरान ज्यादातर सुधीर ही बातचीत करते रहे थे। अदिति बीच-बीच में उन्हें अपने खास ढंग से छेड़ देती थी और ऐसा होते ही सुधीर अपने कहकहों के पीछे छिप जाते थे। उस मुलाकात से मुझे बस इतना ही अन्दाजा हुआ कि अदिति की साहित्य में तो दिलचस्पी काफी थी, शायद वे पढ़ती भी बहुत थी लेकिन साहित्य में किसी भी प्रकार के राजनैतिक दर्शन की घुसपैठ उन्हें न समझ में आती थी और न ही अच्छी लगती थी।

उस दिन के बाद आज यह उनसे तीसरी मुलाकात थी और रवि के उस अँधेरे कमरे में लेटे हुए जब मैंने शाम के पूरे घटनाक्रम और उसमें अदिति की स्थिति और भूमिका के बारे में सोचा तो मुझे खुद भी शर्मिन्दगी महसूस हुई। क्या सोचा होगा उन्होंने हम लोगों के बारे में ! और जबकि मेरा परिचय तो सुधीर ने उनसे 'लिखते हैं ये भी···' कहकर कराया था। कहाँ वह 'वॉल्गा' में हुई पिछली मुलाकात, अदिति ने बड़े मधे हुए ढंग से मेरी वह उनके लिए दरवाजा खोलनेवाली 'कर्टसी' नोट की थी···और कहाँ आज शाम हम लोगों का वह गुण्डों वाला खून-खराबे से भरा हुआ हुलिया। और अदिति को तो सचमुच ही हम दोनों बिल्कुल रिक्शे-तांगेवालों की तरह लगे होंगे। शुरू-शुरू में रवि की पट्टी करते हुए उनका चेहरा वाकई कितना बदला हुआ लग रहा था। बाद में भी एक अजीब-सा खिंचाव उनके व्यवहार में साफ-साफ झलक रहा था। सुधीर से भी वो कहेंगी जरूर यह सब। सचमुच मुश्किल हो जायेगी तब तो। ठीक है कि सुधीर लेखक हैं और उस नाते अदिति की अपेक्षा बहुत-सी चीजों को वो ज्यादा समझदारी और सहानुभूति से देखते होंगे लेकिन यह भरे-बाजार की मार-पीट और खून-खराबा···इसे तो वे भी उसी तरह देखेंगे जैसे कोई भी और, यहाँ तक कि अम्मा और बाबा भी।

—वैसे एक बात कहूँ···? अँधेरे में रवि ने उठकर बैठते हुए कहा।

—क्या ?

—सच्ची, मैं तो समझता था कि ये लेखक और शायर लोग ऐसे ही ख्याली पुलाव पकाते रहते हैं। किसी भी खूबसूरत छोकरी को देख लिया और लगे दूर से ही इश्क फरमाने, आहें भरने और शेरो-शायरी या अफसाने वगैरा लिखने। लेकिन डॉक्टर अदिति दयाल ने तो मेरा ही चूल्हा बुझा दिया आज ! और वह हँसने लगा। चोट के दर्द की बजाय उसकी यह दूसरी तकलीफ और फिक्र सुनकर मैं भी अपनी हँसी नहीं रोक पाया—मतलब कि हो गया तुझे भी यकीन कि···

—बिल्कुल ! उसने बीच में ही मेरी बात काट दी—तेरा फ्यूचर बहुत ब्राइट है प्यारे ! असल में ज्यादातर तो इन राइटर्स में शक्ल-सूरत से इतने भुड्डू होते हैं कि

खूबसूरत तो छोडो, थोडी बहुत ठीक-ठाक लड़की की भी तबियत खराब हो जाये। फिर अपनी हँसी रोककर उसने पूछा—वैसे ये जो सुधीर मेहता साहब हैं···क्या हैण्डसम आदमी हैं ?

—तू तो यार पीछे ही पड़ गया, मैंने मुस्कुराते हुए कहा—एक तो साली फ्री मे मरहम-पट्टी करा दी, अब ऊपर से तफ्तीश···खैर तुझे तो नींद नही आयेगी अब इसलिए बता ही देता हूँ। अगर तेरा मतलब रॉक हडसन या ग्रेगरी पैक टाइप से है तो बात और है वर्ना ठीक-ठाक है सुधीर भी। भैया मेरे असली चीज वो नही होती। सुधीर इज अ वैरी इम्पॉर्टेण्ट राइटर। (सुधीर एक बहुत महत्वपूर्ण लेखक हैं।)

—माई लैफ्ट फुट ! (ऐसी की तैसी !) रवि ने ऐलान करनेवाली आवाज मे कहा और फिर उठकर लाइट जलाने के बाद वो मेरी तरफ देखकर मुस्कराया—मैं तो अपना स्कोर बता रहा हूँ यार ! ये जो डॉक्टर अदिति दयाल हैं तेरी···, और उसने अपनी आँखे मूँदकर गर्दन हिलायी—जवाब नही है···वॉट अ वोमैन, डैम इट ! तेरी कसम, मैंने आज तक इतनी खूबसूरत औरत नही देखी, औनेस्टली ! एक चीज होती है जिसे कहते हैं डिगनिटी ! आइ एम रिअली इम्प्रैस्ड। (मैं वाकई प्रभावित हूँ)

—सोच ले ? मैंने उसे छेड़ते हुए कहा—कम-से-कम दस-बारह साल का फर्क होगा उमर मे !

—तेरी चेन तो स्साले हमेशा पढ़ाई देखते ही उतर जाती है। लेकिन घबरा मत, मैं इसलिए नही कह रहा, और फिर उसने संजीदगी से कहा—मेरा मतलब वो नही था। असल में कुछ लोगों को देखकर लगता है न कि दुनिया का एक दूसरा हिस्सा भी है···जिसमे सबकुछ बहुत सही है, बहुत अच्छा है। मेरा मतलब है जिसमे दादाजी जैसे लोग हैं, उस्ताद हैं और ये अदिति हैं···तू खुद भी कह रहा है कि तू उनसे आज बस तीसरी बार मिला था और मुझे तो वो जानती तक नही थी। लेकिन फिर भी, उन्होंने कितना ख्याल किया।

मुझे कहने के लिए कुछ नही सूझा।

उसने कोने मे रखे घड़े में से एक गिलास पानी पिया और उसी तरफ मुँह किये हुए एक दूसरी ही आवाज मे कहा—सच बताऊँ तुझे···उन्होने जिस तरह से आज मेरी ड्रैसिंग की न, मुझे···, और वह चुप हो गया। फिर कुछ क्षणों बाद उसने पूछा—पानी पीना है ?

—नही, मैंने कहा और उसके बाद फिर उस रात हम दोनों में अदिति के बारे मे और कोई बात नही हुई। अगले दिन मैं ठीक चार बजे उनके क्लीनिक पहुँच गया। उस वक्त शयाद ज्यादा मरीज नही आते थे क्योंकि जब मैं उनके चैम्बर में दाखिल हुआ तो वे अपनी मेज पर एक मोटी-सी किताब खोले पढ़ रही थी। मेरी नमस्ते सुनते ही उन्होंने अपनी ऐनक उतारते हुए कहा—नमस्ते ! आ गये तुम··· बैठो, उन्होने सामने पड़ी कुर्सी की तरफ इशारा करते हुए कहा और किताब बन्द

छुट्टी का

करते हुए बोली—क्या हाल है चोट का ? दवा खायी थी ठीक से ?

—जी हाँ, अब तो ठीक है, बस रात को जरा दिक्कत हुई थी। मैंने धीरे-से कहा।

—और वो तुम्हारे दोस्त साहब कहाँ हैं···उसका क्या हाल है ?

—ठीक है वो भी, असल में उसे एक जरूरी काम से कहीं जाना था इसलिए नहीं आ सका, मैंने जवाब दिया— वैसे उसने कहलवाया है कि आपसे मिलेगा वो जरूर।

—अच्छा···, उन्होंने कुछ सोचते हुए कहा और फिर आवाज दी—क्लॉडी।

—यैस मैडम !

—देखो, चाय ले आओ जरा, उन्होंने नर्स से कहा और कुछ क्षणों तक गर्दन झुकाये कुछ सोचती रहीं।

मैंने नजरें बचाकर उनकी तरफ देखा। एक बिल्कुल ही नया प्रभाव उनके व्यक्तित्व में इस वक्त था। सफेद साड़ी और ब्लाउज के ऊपर उन्होंने सफेद एप्रन भी पहन रखा था लेकिन उससे ज्यादा एक ठण्डी सफेदी उनके चेहरे पर मौजूद थी। मेरी नजरों से बेखबर वह किसी गहरे सोच में डूबी थीं। कुछ देर बाद जैसे अपने-आपको उबारकर उन्होंने मेरी तरफ देखा और एक कमजोर, फीकी-सी मुस्कराहट उनके चेहरे पर उभर आयी—घर पर डाँट नहीं पड़ी ?

—नहीं, रात तो फिर मैं वर्कशॉप पर ही सोया था रवि के साथ, मेरे मुँह से हड़बड़ी में निकल गया।

—वर्कशॉप ?

—वो···, सॉरी, असल में रवि का जो कमरा है न उसे हम लोग वर्कशॉप कहते हैं, मैंने बात सँभालने की कोशिश की—घर पर तो वाकई बहुत डाँट पड़ती ?

उनकी नजरें अब मेरे चेहरे पर टिक गयी थीं। और मैं उनकी मेज पर रक्खी उस किताब और दूसरी चीजों को देख रहा था !

—तुम्हारे फादर क्या करते हैं ? कुछ देर बाद उन्होंने पूछा। मेरा शरीर सुन्न-सा हो गया। एक अनजाना-सा डर जो उन्हें लेकर पहले दिन से मेरे भीतर उग आया था एकाएक एक दरख्त की तरह मेरे गले तक बढ़ आया—जी···? केवल एक वही शब्द मेरे मुँह से निकल पाया।

—क्या करते हैं तुम्हारे पिताजी ? उन्होंने बहुत सहज ढंग से अपना सवाल दोहराया।

अब, जबकि अदिति मेरी जिन्दगी से बाहर जा चुकी हैं, मुझे कई बार लगता है कि यह उनकी एक बहुत खास बात थी कि उनके अधिकतर सवाल मुझे पहले तो अपनी घबराहट और कमजोरी की निचली सतह तक धकेल देते थे। लेकिन फिर वही सवाल मुझे उस अन्धी बावड़ी में जैसे हाथ पकड़कर उबार लेते और चमत्कार यह होता था कि मेरा सारा आत्मविश्वास उनकी एक हल्की-सी मुस्कान के सहारे

मुझे फिर एक ऐसी ताकत दे देता था जिसे देखकर अदिति की वह हल्की-सी मुस्कान उस हँसी में बदल जाती थी जो उनके चेहरे पर हरसिंगार के फूलों की बारिश-सी कर देती थी।

—मैं उन्हें बाबा कहता हूँ, मैंने पहली बार उस चमत्कार के परिणामस्वरूप कहा था—और बाबा नौकरी करते हैं··· सीताराम बाजार के एक सेठ के यहाँ।

—रिअली? वही धड़कती हुई मुस्कराहट उनके चेहरे पर उभर आयी, लेकिन फौरन ही फिर उन्होंने गम्भीरता से कहा—लेकिन तब तो उन्हें बहुत फिक्र हुई होगी कि तुम घर नहीं आये रात-भर। नहीं?

—नहीं, मैंने गर्दन हिलायी—वहाँ से तो हम लोग घर ही गये थे। अम्माँ से मैंने हॉस्टल जाने का बहाना बना दिया था।

उनकी नजरें अब मुझ पर टिक गयीं। उनका ध्यान जहाँ कहीं भी रहा हो लेकिन अब पूरी तरह से इस बातचीत पर लौट आया था क्योंकि फिर उनकी आवाज में वह एक खास चुलबुलापन भी लौट आया—ऐसे बहाने घर पर हमेशा करते रहते हो न!

—नहीं, हमेशा नहीं, मैं हँसने लगा—कभी-कभी!

मेरी हँसी में वे शामिल नहीं हुईं बल्कि उल्टे नजरें झुकाकर जरा धीमी आवाज में उन्होंने कहा—लेकिन तुम तो बहुत खतरनाक आदमी हो आदित्य! मैं तो तुम्हें बच्चा समझती थी···इतने भोले लगते हो तुम कि ··ये इतनी वायलेन्स तुम में कहाँ से···

मैं चुप हो गया। एक तो उनका सवाल ही ऐसा था जिसका मेरे पास कोई जवाब नहीं था। दूसरे आज उनका मूड कुछ अजीब ही सा था। न जाने कौन-से बादल थे जिनका असर रह-रहकर उनके ऊपर धूप-छाँव की तरह भटक रहा था।

वे फिर कुछ कहने को हुईं लेकिन तभी नर्स चाय की ट्रे लेकर चैम्बर में दाखिल हुई। ट्रे अपने सामने रखवाकर उन्होंने चाय बनाते हुए पूछा—चीनी?

—दो चम्मच।

—और ये वर्कशॉप क्या है? उन्होंने चाय बनाकर प्याला मेरे सामने सरकाते हुए पूछा—रवि के पेरेण्ट्स क्या करते हैं? कुछ क्षणों तक मैं प्याले से उठती हुई भाप को देखता रहा, जो उठते ही हवा में घुलकर गायब हो जाती थी।

—रवि के पेरेण्ट्स नहीं हैं, मैंने आखिरकार कहा।

—ओह···, उनका हाथ होंठों तक प्याला पहुँचाने से पहले ही रुक गया—आई एम सॉरी, आदित्य···

—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। आपको मालूम ही नहीं है तो···, मैंने अब तय कर लिया था कि उन्हें सारी बात बता देना ही ठीक होगा—देखिए···मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ कल की बात पर। मुझे बिल्कुल नहीं मालूम था कि आप डॉक्टर हैं और आपका क्लीनिक यहाँ है। हम लोगों ने दुकान खुली देखी और क्योंकि एमर्जेन्सी-सी थी इसलिए···और देखिए···हम लोग गुण्डे-बदमाश···

—प्लीज आदित्य ! मेरा मतलब वो नहीं था···, उन्होंने बीच में ही मेरी बात काटकर भीगी हुई-सी आवाज में कहा।

—मुझे मालूम है, मैंने जवाब दिया—इसलिए मैं आपको सारी बात बता रहा हूँ···, और उसके बाद मैंने संक्षेप में उन्हें रवि के बचपन, हम दोनों की दोस्ती, उस्ताद और कल की घटना के बारे में सबकुछ बता दिया। मेज पर रखी हम दोनों की चाय ठण्डी हो चुकी थी। मेरी बात सुनने के बाद वे काफी देर तक गर्दन झुकाये चुपचाप बैठी रहीं। फिर उन्होंने अपना गला साफ करते हुए आवाज दी—कलोंडी !

नर्स के आने पर उन्होंने उससे दोबारा चाय लाने को कहा और उसके बाद मेरी तरफ देखने लगीं। जब आखिरकार वे बोलीं तो वह एक ऐसी आवाज थी जिसे मैं पहली बार सुन रहा था—जिन्दगी क्या कुछ कर सकती है आदित्य, यह तो मुझे मालूम है लेकिन इस उम्र में लड़के तुम जैसे भी हो सकते हैं—मेरा मतलब तुम दोनों ही से है, यह सचमुच एक ऐसी बात है कि आमतौर पर देखने को नहीं मिलती। और तुम में दरअसल कुछ बातें इतनी अजीब हैं कि आदमी सोच ही नहीं सकता कि तुम्हारे पीछे इस तरह का बचपन और ऐसी जिन्दगी रही है और अब···ये सब जानने के बाद मालूम है मैं तुमसे क्या कहना चाहती हूँ ?

मैं उसी तरह नजरें झुकाये बैठा रहा।

—इधर देखो···मेरी तरफ···, उन्होंने बहुत ही धीमी, सुलगती-सी आवाज में कहा और जब मैंने उनकी तरफ नजरें उठायीं तो उनकी आँखों में सितारे-से चमक रहे थे।

—जिन्दगी ने तुमसे जितना छीना है··· उसका कई गुना वह तुम्हें वापिस देगी···तुम दोनों को, लेकिन बस एक शर्त है ! कमजोर मत पड़ना···, और उन्होंने अपनी नजरें झुका लीं—अभी तो बहुत-सी चीजें आयेंगी तुम लोगों के सामने।

उस छाँह को फिर से उनके चेहरे पर उतरती देख मैंने माहौल को हल्का करने की कोशिश में कहा—लेकिन उसके लिए कभी-कभार मरहम-पट्टी भी करवानी पड़ती है। और उस पर आप नाराज होने लगती हैं ! उन्होंने फिर से मेरी तरफ देखा और धूप में चमकती हुई उस हँसी के साथ बोलीं—अबकी बार आये न अगर तुम दोनों तो याद रखना मैं खुद तुम लोगों को दरियागंज कोतवाली में छोड़कर आऊँगी !

नर्स चाय ले आयी थी और साथ ही यह खबर भी कि कोई मरीज बाहर था।

—दस मिनट बाद, उन्होंने नर्स से कहा और चाय बनाते हुए बोलीं—लेकिन सच्ची तुम लोगों को थोड़ी अक्ल से भी काम लेना चाहिए। एक तरफ तो तुम दोनों इतने समझदार और जिम्मेदारी के साथ सबकुछ करते हो और दूसरी तरफ इतना गुस्सा···बाबा रेएए···अपनी हालत देखी थी तुम लोगों ने कल ?

मैं धीरे-से मुस्कराया और खामोशी से चाय पीता रहा। जब उन्होंने भी चाय खत्म कर ली तो मैं उठते हुए बोला—एक बात और पूछनी थी···

—बोलो ?

—आपने क्या···सुधीर को भी सब बता दिया ··कल के बारे में ?

मेरा सवाल सुनकर वे चुप हो गयी। फिर चाय के प्याले को ट्रे में रखने के बाद उन्होंने धीरे-से कहा—नहीं। बादलों की वह परछाईं फिर उनके चेहरे पर उतर आयी थी।

—क्या ऐसा हो सकता है कि आप···, मैंने बहुत ही सपाट ढंग से पूछा—कि आप उन्हें यह सब न बतायें ?

—लेकिन वैसे भी मुझे क्या जरूरत है बताने की, उन्होंने अपने कन्धे उचकाते हुए कहा—व्हाई शुड आइ बी टैलिंग हिम एट ऑल, आदित्य ? (मुझे क्या जरूरत पड़ी है उन्हें बताने की ?)

—थैंक्यू ! मैंने कहा और चेम्बर से बाहर आ गया।

अदिति से मिलकर अपने-आप में लौटना मेरे लिए हर बार काफी मुश्किल साबित होता था। वह मेरा पीछा नहीं छोड़ती थी। उस दिन भी यही हुआ। तय तो यही हुआ था कि अदिति से मिलकर मैं रवि से मिलने सीधे वर्कशॉप जाऊँगा। गनीमत यही थी कि मैंने यह भी कह दिया था कि अगर अदिति ने दवाइयाँ वगैरा नहीं बदली और कोई खास बात नहीं हुई तो शायद मैं न भी आ पाऊँ।

क्लीनिक से निकलते ही मैंने अपना फैसला बदल दिया। मैं घर जाना चाहता था। इस बीच हुआ दरअसल यह था कि पिछले कुछ महीनों से मैंने एक डायरी-सी लिखनी शुरू कर दी थी। पिछले साल-भर के दौरान कई बार ऐसा हुआ था कि कई लोगों के साथ कुछ स्थितियों में यह अच्छी तरह जानते हुए भी कि मुझे क्या कहना है और क्या करना है, अधबीच ही मुझे अपने आपको रोकना पड़ जाता था। और कई बार तो ये स्थितियाँ ऐसे लोगों के साथ पैदा हुई थीं कि मुझे उन्हें स्वीकार कर पाना बहुत मुश्किल साबित हुआ था। अम्माँ-बाबा से लेकर इन स्थितियों में रवि तक शामिल था। सुधीर मेहता के साथ तो ऐसे मौके अक्सर सामने आने लगे थे। काफी वक्त लगा था मुझे उम्र के इस नये अहसास और रुख को समझने और आखिरकार मान लेने में—स्वीकार कर लेने में कि उम्र के भी वही चार मौसम होते हैं जिनका सवालों की तरह इस्तेमाल करके वक्त दुनिया की सब मुर्दा और जिन्दा चीजों का हर साल इम्तहान लेता है। वर्ना बहार के बाद गर्मी का सख्त मौसम क्या और क्यों जरूरी है ? और फिर मेरी जिन्दगी में तो बचपन भी बहार के उस दीवानेपन से सहमा-सा हो रहा था जिसके तहत कलियों के गुच्छे के-गुच्छे फूलते हैं, नयी कोंपलों के फूटने की वह मचलती हुई जिद देखते ही बनती है और परिन्दों को सबकुछ मालूम होते हुए भी सिवाय चहचहाने और गाने के अलावा कुछ नहीं सूझता !

अपनी उस डायरी में पहले चार पेज मैंने सुधीर मेहता से हुई मुलाकात के बाद लिखे थे जिसमें उन्होंने अपने पसन्दीदा रेस्ट्राँ 'ला बोहीम' में बैठकर, हल्के लेकिन बिल्कुल साफ अँधेरे में बिल्कुल किसी नयी ब्याहता की तरह तीजों के त्यौहार

पर मार्क्सवादी दर्शन की चीमे लेते हुए कहा था—देखो''', तुम्हें याद है, मैंने खुद तुमसे कहा था कि उस साहित्य या उस कला का कोई मतलब नहीं होता जो आदमी की फिक्र न करे। लेकिन मुझे लगता है कि अब तुम्हें अगला पाठ भी पढ लेना चाहिए। आखिर किस आदमी की बात कर रहे हैं हम लोग ? और उन्होंने मेज पर रक्खे कोना कॉफी की केरेफे को उठाकर अपने कप में काली कॉफी उँडेलते हुए मुस्कराकर मुझे वह पाठ पढाने की कोशिश की थी—जैसे ही हम आदमी की बात करते हैं—हमारे सामने वह आखिरी गड्ढा भी मौजूद होता है जिसका पूरा वजूद सिर्फ इक्का-दुक्का आदमियों के उलाँघ जाने से ही खत्म नहीं हो जाता। और यहीं पर आदमी एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक इकाई की शक्ल इख्तियार करता है''', उन्होंने मेज पर पड़े अपने पैकेट मे एक दूसरी सिगरेट निकालकर पहली सिगरेट के आखिरी हिस्से से जलाते हुए किसी मँजे हुए अभिनेता की तरह कहा था—आदमी वही है जो हर जगह मौजूद है ! समझ रहे हो न तुम ? यू सी,'''अगर कोई अपने रगमहल मे अपनी प्रेमिका के साथ नवाबो और बादशाहो की तरह रगरेलियाँ मना रहा है तो वह एक व्यक्ति तो हो सकता है लेकिन वह वो आदमी हर्गिज नहीं है जिसकी बात कोई भी सोचने-समझनेवाला बुद्धिमान आदमी करना चाहेगा !

ज्यादातर बुद्धिजीवियो की तरह सुधीर मेहता भी रेशम के कीडे की तरह अपने कोये को ही बुनते रहते थे—उससे बाहर आ पाना उनके लिए शायद मुक्ति की तरह एक अन्तिम स्थिति ही थी। लेकिन यह अच्छी तरह जानते हुए भी कि वे एक बहुत बड़े, महत्त्वपूर्ण और किसी हद तक यकीनन अच्छे लेखक तो थे ही, मेरे पसन्दीदा भी थे, मैंने बहुत धीमी आवाज में उनसे पूछा था—आपको नहीं लगता कि आदमी मे हम जिस चीज को दिमाग कहते हैं—और शायद वही इस फसाद की जड़ है, वह ठीक उसी तरह के प्रभाव पैदा करते हुए पेड़-पौधो, नदियों और पहाड़ों बल्कि मैं तो कहूँगा कि जमीन पर भी एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक अपने आवश्यक रूप मे मौजूद होता है ?

—वॉट डू यू मीन ? (क्या मतलब है तुम्हारा ?) सुधीर ने कन्धे उचकाते हुए कहा था—तुम कहना क्या चाहते हो ?

मैंने कुछ नहीं कहा था क्योंकि सुधीर मेहता उसे सुनना नहीं चाहते थे और दूसरा वहाँ कोई मौजूद नहीं था।

"—मैं कहना ये चाहता हूँ, सुधीर मेहता साहब," उस रात मैंने अपनी उस डायरी में लिखा था—"कि बरगद के पेड़ और बाँस के पेड़ में, बहुत फर्क होता है बावजूद इसके कि दोनों लगभग एक ही उम्र तक जिन्दा रहते हैं। और बावजूद इसके भी कि पेड़-पौधों मे दिमाग के नाम पर, बकरे का वह भेजा तक नहीं होता, जिसके कि आप पकौड़े तलकर खा जाते हैं—और दिमाग का तो लतीफा ही यह है कि आदमी के अलावा, बकौल आप जैसो के, वह कहीं पाया ही नहीं जाता।

"माफ कीजिए मिस्टर सुधीर मेहता, आप उन बेईमान, पाखण्डी और मौकापरस्त लोगों में से एक हैं जो आदमी के दिमाग की दुहाई देकर, आदमी का ही (बकौल आपके—वह आदमी जो हर जगह मौजूद है) इतने बदतरीन ढंग से मजाक उड़ाते हैं कि मुझे लगता है कि आप आदमी तो छोड़िए उन जानवरों से भी बदतर है जिनका लोग सिर्फ शौकिया शिकार करते हैं या (अगर वह आपकी बुद्धिजीवी संवेदना को मंजूर नहीं है), तो उनको हलाल या झटके से खत्म करके खा जाते हैं।

"अपने पाखण्ड से इन्कार आप मेरे सामने भले ही कर दें लेकिन इतना तो आप भी मानेंगे (क्योंकि आपने अभी तक अधिकतर जो लिखा है उसमें आदमी की अपनी भूल अस्मिता की खोज और उसके व्यक्तिगत सम्बन्धों का वह दलदलनुमा धरातल ही मुख्य विषय रहा है) कि हिन्दुस्तान जैसी सबसे पुरानी सभ्यता के कोष में 'सब धान बाइस पंसेरी' जैसे मुहावरे यूँ ही नहीं आ जाते। यदि वे आते हैं तो इसका एक साफ मतलब यह भी कि भद्रजनों का आदमी की अस्मिता को लेकर यह शौक 'शतरंज' या 'गजद्वन्द' जैसे पुराने खेलों का एक शौक-भर रहा है। श्रीमान सुधीर मेहता किसी ने कभी यह परवाह नहीं की कि वह आदमी जिसके हर जगह मौजूद होने का अन्देशा हमें हमेशा होना चाहिए—उसकी हमारे रहते क्या हालत है? आप जिन बड़े-बड़े नामों की माला जपते रहते हैं उनकी फिक्र में आदमी भी शामिल था यह मैं किसी छोटी हद तक मान सकता हूँ। लेकिन यह कि उनकी फिक्र उस आदमी को लेकर थी जो हर जगह मौजूद है—यह आदमी के बारे में एक कितना भद्दा लतीफा है इसका अन्दाजा आपको हो भी नहीं सकता—क्योंकि हकीकत यह है कि दिमाग की मौजूदगी का मुगालता भर आदमी को असली जिन्दगी के स्तर पर खस्सी कर देता है।

"वह आदमी जो हर जगह मौजूद है और जिसकी फिक्र बकौल आपके हमें होनी चाहिए—वह जिन्दगी दिमाग से नहीं जीता। दिमाग तो दरअसल असली जिन्दगी से इतना घबराता है कि उसकी सारी कोशिश बस जिन्दगी को एक ऐसा चाबीवाला खिलौना बना देने की होती है जिसमें कोई खतरा न हो और जिसमें डर न लगे। रंग भरने का काम जरूर कर सकता है दिमाग, लेकिन जिन्दगी की वह तस्वीर तो उसके बहुत पहले ही बन चुकी होती है। पता नहीं सुधीर साहब, मुझे तो लगता है कि कुछ और होता है आदमी के अन्दर जिसके बल पर वह जीता है, लड़ता है और शायद खत्म भी हो जाता हो।" घर पर छत के जीनेवाली ऊपरी सीढ़ी पर बैठे हुए मैंने डायरी में लिखे उन पहले चार पन्नों को दोबारा पढ़ा और कुछ देर सोचता रहा। लेकिन जल्दी ही अदिति से आज हुई बातचीत दिमाग में फिर गूँजने लगी—संगीत की तरह—एक ऐसा संगीत जो बहुत गहरे किसी महकती हुई घाटी में गूँज रहा था।

मैंने कलम उठायी ही थी कि मेरे कानों में किसी शोर की आवाज पड़ी और फिर उस शोर को चीरती हुई एक और आवाज उठी—जैसे कि किसी ने बड़े-से

बर्तन को उठाकर फेंक दिया हो। मैं फौरन नीचे आया।

झगड़ा मोहल्ले के नल पर हो रहा था। अम्माँ और मोहल्ले में कुछ घर छोड़कर रहनेवाले शर्माजी की बीवी में जो एक प्राइमरी स्कूल में पढ़ाती थी। हस्बेआदत शर्माजी भी अपनी बीवी की हिमायत लेने आ पहुँचे थे और वह कमाल भी दिखा चुके थे—अम्माँ की पीतलवाली बड़ी बाल्टी को उठाकर फेंकने का। झगड़ा नया नहीं था, मैं बचपन से उसे हर तीसरे-चौथे रोज होते देखता आ रहा था। इस तरह के कई खास झगड़े थे जिनके बिना मोहल्लेवाले एक ऊब-सी महसूस करने लगते थे। अलबत्ता बाल्टी फेंकनेवाली बात जरा नयी थी। शर्माजी ने सालों बाद अम्माँ के साथ इस तरह की बदतमीजी की थी। इस तरह की पिछली घटना तब हुई थी जब मैं दसवीं क्लास में था। उस बार बाबा को घर लौटने पर जब पूरी बात पता चली थी तो उन्होंने शर्माजी को घर से बाहर बुलाकर पहले तो धीमी आवाज में समझाया था—औरतों के झगड़ों में आदमियों को दखल नहीं देना चाहिए। लेकिन शर्माजी ने जैसे ही कहा—अपनी औकात मत···उनका वाक्य पूरा नहीं हो पाया क्योंकि उनका मुँह खून से भर गया था। बाबा के उस तमाचे ने शर्माजी को फिर अब तक ठीक रक्खा था।

नल से पानी लेने को लेकर वैसे शर्माजी का मोहल्ले के हर घर से झगड़ा होता था। दरअसल फसाद की जड़ यह थी कि वे दोनों पति-पत्नी नौकरी करते थे। उनकी पत्नी स्कूल से ठीक उसी समय लौटती थी जब कि नल में पानी आता था यानी साढ़े-चार बजे। शर्माजी साढ़े पाँच बजे लौटते थे और आते ही चाय और नाश्ता माँगते थे। इसके लिए यह जरूरी था कि वे जल्दी से पूरे घर का पानी भरकर चूल्हा जलायें क्योंकि आमतौर पर नल का पानी शाम को घण्टे-भर के लिए ही आता था। दूसरी बात यह भी थी कि शर्माजी की पत्नी देखने में जितनी छोटी थी, उनकी आवाज, गुस्सा और ठसक उतनी ही बड़ी थी। ठसक इसलिए कि उस मोहल्ले की औरतों में सिर्फ वही थी जो थोड़ा-बहुत पढ़ी-लिखी थी और बाकायदा नौकरी करती थी। अलबत्ता मोहल्ले की दूसरी औरतें जो बिल्कुल ही घरेलू जिन्दगी से बँधी थी, उनके नौकरी करने को लेकर काफी मजाक बनाती थी।

जब मैं नल पर पहुँचा तो पूरा गलियारा पानी से गीला था। अम्माँ बाल्टी उठाकर उसके जगह-जगह से पिचक जाने के कारण गुस्से में थी और ऊँची आवाज में कह रही थी—आने दो उन्हें आज···सरमाजी, तुम्हारे दिमाग बहुत चढ़ गये है। उनके सामने फेंकना तुम ये बाल्टी ··शर्माजी नल के नीचे अपने बर्तनों को एक के ऊपर एक रखे हुए पानी भर रहे थे। उसी तरफ मुँह करके खड़े हुए उन्होंने चिल्लाकर कहा—अरे वो क्या थानेदार है? क्या कर लेगा? बहुत हो गया··· जिसे देखो साला सिर पै ही चढ़ा जाता है! मैं शर्माजी के पास जा पहुँचा था। और जब मैं बोला तो पूरी कोशिश के बावजूद मेरी आवाज गुस्से से काँप रही थी—शर्माजी···घर जाइए अब।

उन्होंने एकबारगी चौंककर मेरी तरफ देखा और फिर घुड़कते हुए बोले—

चल बे, तू अपना काम कर, नही तो अभी···

और मैंने उन्हे आगे नही बोलने दिया। दोनों हाथों से उनके सिर का पिछला हिस्सा जकड़कर मैंने उसे पूरी ताकत से उनके सामनेवाली दीवार मे मारते हुए कहा—नही तो···?···नही तो?···नही तो···?

उनके सिर से खून बहने लगा था। उनके हाथ से पीतल का वह बड़ा-सा कलसा छूटकर नीचे जा पडा था और अपने हाथो को फड़फडाते हुए, मेरी गिरफ्त से छूटने की कोशिश मे वे लगातार अपनी कोहनियाँ पीछे करके मेरे पेट और दुखते हुए सीने पर मारते हुए छटपटा रहे थे। लेकिन वह मैं उन्हे किसी कीमत पर नही करने दे सकता था। मेरा सीना अब हर उस जगह से टीसने लगा था जहाँ दवा लगी हुई थी। मैं जानता था कि अगर मैंने उनका सिर छोड़ दिया तो फिर मैं अपने आपको शायद बचा नही पाऊँगा क्योंकि शर्माजी डील-डौल के जरा भारी-से ही थे।

हिंसा की भी अपनी एक लय होती है—दूर-दूर तक फैले हुए समुद्र मे किनारों को देखकर उठती हुई लहरो की तरह। उन्ही लहरो पर सवार मैं उस आदमी के सिर को 'नही तो' के उस नीरस दोहराव मे भी एक अजीब-सी लय मे दीवार से टकराता जा रहा था।

नल पर जमा भीड मे भगदड मच गयी थी। अम्माँ मुझे पूरी ताकत से खीचने की कोशिश मे रोने-सी लगी थी। शर्माजी की पत्नी को दौरा पड गया था। अपने आप ही फिर शर्माजी का सिर मेरे हाथो से छूट गया था क्योंकि वो लुढ़ककर जमीन पर जा गिरे थे, और नल की तेज धार उनके सिर पर गिरने के कारण, बजाय सफेद के गुलाबी-सा पानी चारों तरफ छितरा रही थी।

—चलो अम्माँ··, मैंने अम्माँ की बाँह पकड़कर खीचते हुए कहा था—और अब चिल्लाओ मत!

पूरा मौहल्ला उस गलियारे के दोनो तरफवाले नुक्कड़ों पर इकट्ठा हो गया था। उस भीड मे मौहल्ले के मर्द भी शामिल थे और शायद इसीलिए अम्माँ के साथ घर मे घुसते वक्त गुस्से की वह लहर एक बार फिर मेरे भीतर तक उतर गयी। वे सब-के-सब खामोश थे—वे लोग खामोश थे जिनके सामने मैं उसी मौहल्ले में पैदा हुआ था, नंगा खेला था और जिनमे से अधिकतर को मैं मामा, चाचा या भाई साहब कहता था। वे लोग खामोश थे जिन्होंने आठ-घरो के उस छोटे-से नामालूम मौहल्ले में भी एक पूरी राजनीति पैदा कर रखी थी। इस बात पर भी वे लोग खामोश थे कि मौहल्ले के बच्चे ने मौहल्ले के एक बुजुर्ग को बुरी तरह से पीटा था। वे खामोश इसलिए भी थे कि उनमे से अधिकतर शर्माजी को पिटते हुए देखना चाहते थे। और इस सम्भावना ने तो उन्हें बिल्कुल ही खामोश कर दिया था कि कल को उनके साथ भी ऐसा ही हो सकता था। मैं अच्छी तरह जानता था कि असल मे वे सब-के-सब इसलिए खामोश थे कि वे उस समस्या के बारे मे सोचने लगे थे कि मौहल्ले को हमारे परिवार और मुझसे कितनी जल्दी

और कैसे छुटकारा मिले। अजीब थी वह खामोशी उस मोहल्ले की जहाँ रात के तीसरे पहर भी एक-दूसरे से सटे हुए घरों में न सिर्फ फुसफुसाहटें ही सुनी जा सकती थी बल्कि कभी-कभी तो किसी घरेलू औरत के पिटने और चीखने-चिल्लाने का शोर भी नब्ज की तरह धड़कने लगता था। सचमुच वह एक ऐसा सन्नाटा था जिसमें वह पूरा मोहल्ला किसी कब्रिस्तान की तरह वीरान-हैरान-सा हो गया था और सिर्फ एक दबी हुई-सी चीख जिसमें गूँज रही थी जो बार-बार मेरे भीतर तक जाकर तड़फड़ाती-सी लौटती थी—भाग जाओ यहाँ से···भाग जाओ··।

अम्माँ को घर में बैठाकर और समझा-बुझाकर मैं गुस्से के उसी उबाल में घर के पानी भरनेवाले सब बर्तनों को लेकर दोबारा नल पर पहुँच गया जहाँ अब कोई नहीं था—न बर्तन, न आदमी। दीवार पर खून के कुछ धब्बे थे जिन्हें मैंने बाल्टी भर पानी से बिल्कुल साफ कर दिया और उसके बाद पानी भरने लगा। गलियारे के सीढ़ियोंवाले नुक्कड़ की तरफ से कम्मो दाखिल हुई और क्षण-भर के लिए मेरे सामने ठिठककर आगे बढ़ गयी—गलियारे की उस तरफ जहाँ हमारा घर था। बाल्टियाँ उठाकर जब मैं घर पहुँचा तो कम्मो अम्माँ के पास बैठी उन्हें तसल्ली दे रही थी। मुझे देखते ही वह चुप हो गयी। फिर गर्दन झुकाकर बिल्कुल निहाल हो जानेवाले अन्दाज में बोली—बहुत अच्छा किया तूने गुड्डू···बिल्कुल ये ही इलाज था उस हरामजादे का···

—लेकिन बेटा ··उसने अगर कहीं थाने जाकर कुछ उल्टा-सीधा कह दिया तो? अम्माँ फिक्र भरी आवाज में बोली—

—तुम तो बेकार में फिकर कर रही हो, ताईजी, कम्मो के स्वर में एक दूसरे ही तरह की उत्तेजना भर गयी—ज़रा बुलाने तो दो उस कमीने को पुलिस। सबसे पहले तो मैं बताऊँगी उसकी कारिस्तानियाँ···, और वह चुप हो गयी।

मुझे लगा कि शायद कम्मो मेरे कुछ कहने या उस बातचीत में हिस्सा लेने का इन्तज़ार कर रही थी। लेकिन मैंने कुछ नहीं कहा और कोने में बिछी हुई चारपाई पर जाकर बैठ गया। मैं जल्दी-से-जल्दी शान्त होकर घर से बाहर जाना चाहता था।

—सच्ची बेटा कम्मो···बस, एक तुम और बहनजी ही हैं इस मोहल्ले में जो वक्त-जरूरत काम आ जाते हो। नहीं तो बेटा भंगी-चमारों से भी गया-गुजरा है ये मोहल्ला! अम्माँ ने कम्मो से कहा।

—मैं तो ताईजी तुमसे कितनी बार कह चुकी हूँ कि आप हमारे यहाँ से भर लिया करो पानी, कम्मो ने उठने की तैयारी करते हुए कहा—पर तुम तो हम लोगों से सच्ची बहुत ही भेद-भाव करती हो। उस दिन मम्मी भी ये ही कह रही थी कि न तुम आती हो हमारे यहाँ और न गुड्डू···, और वह खड़ी हो गयी।

—नहीं बेटी···तुमसे भला काहे का भेदभाव! और बहनजी से कहना कि मैं कल आऊँगी, अम्माँ ने भी उठते हुए कहा और फिर कम्मो को छोड़ने बाहर तक चली गयी।

जैसे ही अम्माँ कमरे मे लौटी मैं उठते हुए बोला—मैं जरा नीचे तक जा रहा हूँ, अम्माँ।

—देख बेटा, आज तो तूने बहुत ही बुरा किया, अम्माँ मुझे समझाते हुए बोली—अरे ये सब झगड़े-टण्टे तो चलते ही रहते हैं। लेकिन ऐसे नही पीटना चाहिए बेटा ···और अब तू वैसे भी रात-बिरात अकेला आता है। इन दुष्टो का कोई भरोसा है क्या कर बैठें। भगवान ने एक तुझे ही तो भेजा है हम दोनों की तसल्ली के लिए···, उनकी आवाज रुँधने-सी लगी थी—ला देखूँ, तुझे तो नही लगी कही चोट!

—नही अम्माँ···मुझे कुछ नही हुआ। और तू फिकर मत कर···इनका तो बस ये ही इलाज है। बाबा भी वो ही करते जो मैंने किया और बाबा तो इसी मौहल्ले मे रहते-रहते अब बूढ़े हो गये। और रात-बिरात अकेले तो बाबा भी आते हैं···उससे क्या होता है, मैंने कहा।

—फिर भी बेटा···इतना गुस्सा नही करते। देख तेरे बाबा ने कितनी तकलीफ उठायी है इसी गुस्से के पीछे, अम्माँ की आवाज कही गुम होने लगी थी—तूने तो देखी तक नही है वो जमीन-जायदाद, जिसका असली मालिक तू ही है···

—ठीक है अम्माँ···जमीन-जायदाद नही है तो नही है। किस्मत तो नही छीन लेगा कोई, मैंने हल्की-सी झुँझलाहट के साथ कहा—और छीन ले वो भी···मैं तो हूँ! और मैं बाहर आ गया।

जैसे ही मैं चौराहे पर आया मुझे ध्यान आया कि छत के जीनेवाली ऊपरी सीढ़ी पर मेरी डायरी के एक खाली पन्ने पर मेरा फाउण्टेन पैन खुला हुआ रक्खा था। उसकी स्याही अब तक सूख चुकी होगी·· जबकि मैं आज अदिति के बारे मे कुछ लिखनेवाला था! मुझे लगा कि वह बड़ा खराब शगुन था। न जाने क्यों अदिति के बारे मे मैंने जब कभी भी सोचा, शगुन के नाम पर कभी भी कुछ ऐसा नही हुआ जो अच्छा हो।

जबकि अदिति ने मुझे इसकी ठीक उल्टी बात बतायी थी—कुछ सालों बाद।

चौराहे पर आकर मैंने अजमेरी गेट की तरफ चलना शुरू ही किया था कि मौहल्ले के दो लोग शर्माजी को पकड़े चौराहा पार करते दिखायी दिये। मुझे लगा कि यह बिलकुल सही वक्त था शर्माजी और उन दोनों पड़ोसियों को बताने का कि जो पाठ उस मौहल्ले ने मुझे पढ़ाये थे वह मैंने बहुत अच्छी तरह पढ़-सोख लिये हैं। शर्माजी के सिर का ऊपरी हिस्सा पट्टियाँ बँधने के कारण बेहद बड़ा हो गया था। उनकी बायी आँख का जरा-सा हिस्सा ही बस खुला था जिसके कारण वह थोड़ा-बहुत देखकर, उन दो पड़ोसियों के सहारे चौराहा पार कर रहे थे। मैं वही खड़ा हो गया। शर्माजी के साथियों ने मुझ पर नजरें पड़ते ही घबराहट मे शर्माजी से कुछ कहा। जब तक ये लोग मेरे सामने पहुँचे, उन दोनों के चेहरे सूख-से गये थे। मैंने पास आकर अपनी आवाज को यथासम्भव मामूली बनाते हुए पूछा—अब चलें,

शर्माजी पुलिस थाने ?

इसके पहले कि शर्माजी कुछ कह पाते एक पड़ोसी ने मुझे समझाते हुए कहा—अरे बेटा अब छोड़ भी। जो हो गया सो हो गया। मालूम है तीन जगह टाँके आये हैं दस-दस, बारह-बारह···

—चाचाजी, मैं तो छोड़े देता हूँ···मैंने उस पड़ोसी से कहा—लेकिन ये आप भी जानते हैं कि बात कुछ दिनों या महीनों के लिए भले ही रुकी, खत्म नहीं नही हुई है। मेरा मतलब शर्माजी की तरफ से ये बात शायद फिर उठेगी, इसलिए मैं इन्हीं से एक बात कहना चाहता हूँ···

शर्माजी ने फिर कुछ कहने की कोशिश की और तब मुझे पता चला कि क्योंकि उनके मुँह मे भी चोट लगी थी इसलिए वे बोल नही पा रहे थे।

—शर्माजी देखिए! मैंने अपनी आवाज और धीमी करते हुए कहा—आप मेरे बुजुर्ग हैं, बाबा से कुछ ही छोटे हैं आप। और पढ़े-लिखे भी हैं। जो कुछ भी हुआ उसके लिए मैं शर्मिन्दा हूँ। आपसे मुझे बस यही कहना है कि मुझे ऐसी शर्मिन्दगी का मौका फिर मत दीजिए कभी। मैं आपसे सच कहता हूँ···, दरअसल मेरा अपनी बात शुरू करते वक्त यह सोचना कि अपनी आवाज को, मैं कोशिश कर रहा था धीमी करने की बिल्कुल गलत था। सच यह था कि गुस्से और हिंसा की उस लहर ने अपनी वापिसी में मुझे अचानक एक अजीब ढंग से तोड़ दिया था और मेरी आवाज चौराहे पर पड़े किसी काँच के टुकड़े की तरह पिसकर बिखर चली थी—मैं खुद यहाँ से···हम तीनों लोग···यहाँ से चले जाना चाहते हैं···शर्माजी! और अचानक मैं मुड़कर चल पड़ा—तेजी से बहता हुआ-सा, उस लौटती हुई लहर में।

कुछ देर बाद लगा जैसे वह सब मेरा वहम था। न कोई लहर थी, न उसकी वापिसी और न ही कोई बहाव। मैं तो जड़ खड़ा था—खामोश और बेहद थका हुआ—अजमेरी गेट के बाहर, कमला मार्केट के भीड़ भरे चौराहे पर। न तो मुझे यह मालूम था कि मैं कहाँ जाने के लिए घर से निकल आया था। शरीर के भीतर वह भभकती हुई सनसनी बिल्कुल खत्म हो चली थी और अब दर्द की उन टीसों ने मुझे जकड़ लिया था। एक क्षण के लिए मेरी आँखों के सामने अँधेरा-सा छा गया। फिर किसी कार की हैड लाइट को मैंने पास आते हुए देखा और अपनी पूरी हिम्मत बटोरकर मैंने तय किया कि उसके गुजरते ही मैं चौराहे से हटकर सड़क के दूसरे किनारे की तरफ भाग जाऊँगा। लेकिन उस गाड़ी के गुजरते ही जैसे ही मैंने भागने के लिए कदम बढ़ाये—मुझे लगा जैसे कि एक ही झटके मे मेरी आँतें बाहर आ जायेंगी। सड़क के बीचों-बीच हुई उस कै ने मेरे भीतर तक अँधेरा कर दिया। किसी दूसरी कार के चीखते हुए टायरों की आवाज ने मुझे फिर रोशनी की तरफ खींचा।

—द इन्कन बास्टर्ड···, रोशनी की वह लकीर खरोंचती हुई-सी आगे बढ़ गयी।

चौराहे पर आसपास की बाकी रोशनियाँ फिर झिलमिलाने-सी लगीं। सड़क के दूसरे किनारे पर लगी रेलिंग को मैंने किसी तरह पार किया और फुटपाथ के अन्दरूनी हिस्से की दीवार को पकड़कर मैं आखिरकार खड़ा हो गया। आसपास कोई नहीं था। मुझे फिर उबकाई आयी और इस बार न तो मैंने अपने आपको रोका और न ही मुझमें और कुछ कर सकने की अब कोई ताकत ही बची थी। उल्टियाँ कुछ देर बाद बन्द हो गयीं। उनके कारण मेरी आँखों से पानी बहने लगा था। उन्हीं झिलमिलाती नजरों से मैंने देखा कुछ दूर पर मशीन के ठण्डे पानीवाला एक ठेला खड़ा था। अपने आपको समेटकर मैंने कदम बढ़ाये। ठण्डे पानी से कुल्ली वगैरा करने के बाद मैंने अच्छी तरह अपना चेहरा धोया और उसके बाद धीरे-धीरे कदम रखते हुए मैं कुछ दूर पर बने रोडवेज के बस स्टैण्ड के अन्दर दाखिल हो गया जहाँ बीचोबीच एक छोटा-सा साफ-सुथरा लॉन था। हरी घास के उस गलीचे पर लेटते ही मेरी आँखें मुँद गयीं। कुछ क्षणों के लिए फिर सबकुछ अँधेरे में डूब गया—उसी तरह जैसे फिल्म चालू होने से पहले हॉल में वह अँधेरा धड़कता है। उसके बाद फिर फिल्म चालू हो गयी—कल शाम को उस्ताद के वर्कशॉप से लेकर ठण्डे पानी के ठेले तक, सब-की-सब तस्वीरें खामोशी में एक सधी हुई स्पीड से, बिना हिले-डुले, धुंधलाये या ऊपर-नीचे हुए मेरी आँखों में रोशन होकर भीतर कहीं लिपटती गयीं।

जब मैंने आँखें खोलीं तो उनकी जलन कम हो गयी थी। लेकिन गोली वे अब भी थीं और उनमें छत के जीने की ऊपरी सीढ़ी पर रखी वह डायरी और खुला हुआ फाउन्टेनपेन झिलमिला गया···

उस रात वहाँ से उठते वक्त मैंने आखिरकार तय किया था कि मैं अदिति के बारे में न सोचूँगा, न लिखूँगा और न ही अब उनसे मिलूँगा।

अपने आप तय की हुई बातों और फैसलों पर बिना किसी बाहरी दबाव या डर के अमल करने की आदत उम्र के इस अठारहवें साल तक हालांकि खासी मजबूत हो चली थी लेकिन उम्र का यह शुरुआती टुकड़ा भी आखिर था क्या? एक जंगली पगडण्डी जिसका रुख कोई भी चीज बड़ी आसानी से बदल देती है—कुछ देर की बारिश, किसी दरख्त के झड़ते हुए पत्ते या ऊपर किसी चट्टान से टूटकर गिर पड़ा एक भारी पत्थर! यह अलग बात है कि इस तरह की ज्यादातर चीजों को मैं बचपन से लेकर कॉलिज के जमाने तक बड़ी आसानी से अनदेखा करता गया था—क्योंकि इस सारे दौरान रवि साथ रहा था। हर साल-छः महीने बाद एक छोटे-से परिवार का लाड़-प्यार भरा माहौल मुझ इकलौते लड़के में नयी-नयी तरह की कमजोरियाँ उभार देता था जो बीमारी की तरह मेरे भीतर एक आलस-सा जगा देती थीं। कई बार मुझे यह भी लगता था कि रवि के हालात मुझसे बहुत अलग थे और इसलिए उसके सामने सचमुच हर चीज में सिवाय सहने के और कोई रास्ता नहीं था। लेकिन मैं क्यों जान-बूझकर मुश्किलों में फँसता जाता हूँ? दुनिया में आखिर तो सभी तरह के लोग होते हैं और ज्यादातर साधारण गरीब

लोगों की ही है।

इससे भी कौन इन्कार करेगा कि हर गरीब आदमी अमीर होना चाहता है। लेकिन फिर···? सिर्फ चाहने-भर से ही तो गरीबी से छुटकारा नहीं मिलता। बल्कि थोड़ा-बहुत काम करने से भी बात नहीं बनती। मैं जो कई बार अपने-आपको दिलासा देने की कोशिश करता था कि मैं निठल्ला नहीं बैठता था और अपनी पढ़ाई के लिए काफी मेहनत करता था—वह भी कुल मिलाकर अपनी कमजोरियों को छिपाने का बहाना-भर था। इस तरह की मामूली मेहनत मुझे ज्यादा-से-ज्यादा बाबा की तरह कोई छोटी-मोटी नौकरी करने से बचा सकती थी लेकिन उसके नतीजे में कोई और महत्त्वपूर्ण सम्भावना बिलकुल नहीं थी। और फिर जैसे धुन्ध-सी छँटती थी—एक ही सूरत थी उस सबसे छुटकारा पाने की···, और उसके साथ ही रवि की कोयले की तरह चुपचाप दहकती हुई आँखें मुझे घेर लेती थीं।

—मुझे तो हर हाल में यह सब करना है गुड्डू, रवि ऐसी स्थितियों में हर बार मुझसे कहता—देयर इज नो अदर वे। नॉट फॉर मी !! (और कोई रास्ता नहीं है। कम-से-कम मेरे लिए) और मुझे तो लगता है तेरे लिए भी! रास्ता अगर है···तो यही है!

फिर वह मुझे समझाता था—बात सिर्फ पैसे की नहीं है गुड्डू। तू क्या समझता है कि मैं अमीर आदमी बनना चाहता हूँ? ओह नो! वह किसी जख्मी जानवर की तरह कराह उठता—असल में बहुत उलझी हुई है ये बात गुड्डू··· मुझे खुद नहीं मालूम कि मैं क्या चाहता हूँ। लेकिन तेरी कसम, यह मुझे अच्छी तरह मालूम है कि मैं उस यतीमखाने में वापिस नहीं जाऊँगा। और यह भी मुझे मालूम है कि अपने हिस्से की गरीबी मैं भोग चुका हूँ। अमीर लोग कैसे होते हैं मुझे नहीं मालूम। लेकिन मैं एक बार देखना जरूर चाहता हूँ वह नशा जो इन सब चीजों को भुला देता है।

मुझे लगता कि चाहता मैं भी बिलकुल वही था।

अदिति से न मिलने का वह फैसला हफ्तों मेरा इम्तहान-सा लेता रहा लेकिन उन कुछ घटनाओं ने मुझे जैसे अपने ही बारे में एक नयी जानकारी दे दी थी—यदि मुझे पता-भर चल जाये कि मेरा इम्तहान है तो फिर वह कितना ही मुश्किल इम्तिहान क्यों न हो, मैं उसमें फेल नहीं हो सकता।

लगभग दो हफ्ते बाद रवि ने एक रोज मुझे बताया कि वह अदिति से उनके क्लीनिक पर मिलने गया था। हम दोनों उस शाम कनॉटप्लेस में वक्त काटने के लिए यूँ ही टहल रहे थे। किसी विदेशी दूतावास में एक पार्टी थी जिसका निमन्त्रण रवि ने अपनी किसी दोस्त के द्वारा हासिल किया था। हम दोनों वहाँ जानेवाले थे। विदेशी दूतावासों की ये पार्टियाँ रवि की ही सूझ थी और हम लोगों की जिन्दगी में एक नया और काफी रोमांचकारी सिलसिला शुरू कर रही थी। एक दूसरी ही दुनिया के लोगों से इन पार्टियों पर मुलाकात होती थी।

—अदिति तुम्हारे बारे में पूछ रही थी, रवि ने कुछ देर बाद मुझसे कहा।

—हूँ अब···मेरा मिलना नहीं हुआ उनसे···

—इसीलिए पूछ रही थी, उसने मेरी तरफ देखते हुए कहा।

मैं चुप रहा और हम दोनों खामोशी से चलते रहे। अगले ब्लॉक की क्रॉसिंग पर मैं कुछ कहने ही जा रहा था कि रवि एक गैस के गुब्बारेवाले को देखकर खड़ा हो गया और बोला—कैसे दिये हैं?

—छोटा एक आने का, बड़ा दुअन्नी का!

—दो रुपये के बीस? रवि ने दो का नोट निकालकर देते हुए पूछा!

गुब्बारेवाले ने हँसते हुए नोट ले लिया—अब आपसे क्या भाव करें साब··· इतने पुराने ग्राहक हो···, और उसने गुब्बारे फुलाने शुरू कर दिये। जैसे ही उसने पहला गुब्बारा धागा बाँधकर रवि को दिया, रवि ने उसे मुझे देते हुए धीरे-से मुस्कराकर कहा—अदिति ने कहा तो नहीं था लेकिन असल में ये दे उन्हीं की तरफ से रहा हूँ तुम्हें।

—यू रास्कल···, मैं अपनी हँसी नहीं रोक पाया। रवि उसी तरह मुस्कराता रहा। अगले तीन-चार गुब्बारे उसने उन बच्चों को दे दिये जो ठेले के पास खड़े ऊपर तने हुए गुब्बारों को ललचाई नजरों से देख रहे थे। बाकी गुब्बारों का बड़ा-सा गुच्छा लेकर रवि आखिरकार वहाँ से चलते हुए बोला—चक्कर है क्या लेकिन?

—काहे का चक्कर?

—तू गया क्यों नहीं उनके पास?

—मतलब? तेरा दिमाग तो ठिकाने है न? मैं पहले भी कहाँ जाता था उनके पास? मैंने हल्की-सी झुँझलाहट के साथ कहा—यार मेरी जान-पहचान सुधीर मेहता से है, उनसे मैं जरूर मिलता रहता हूँ लेकिन उसके अलावा अलग से तो मैं उनसे पहले भी कभी नहीं मिलता था! अब वो क्योंकि सुधीर की वाइफ हैं इसलिए···

—आइ सी···! रवि फिर मुस्कराया और कुछ क्षणों बाद बोला—तब तो मामला और भी संगीन है। काबिले-अफसोस भी है क्योंकि इतना सबकुछ सीखने के बाद भी तुम्हारा सोचने का ढंग वही मिडिल क्लास···क्योंकि वो किसी की बीवी हैं इसलिए उनकी अपनी पर्सनैल्टी कुछ है ही नहीं। और ये तब जबकि वो इतनी अच्छी डॉक्टर है। शेम···शेम!···, और सामने से आते दो छोटे-छोटे भीख माँगते बच्चों को गुब्बारे देते हुए वह उसी सुर में दोहराने लगा—शेम··· शेम!

हम दोनों हँसने लगे।

जब तक हम लोग सिन्धिया हाउस तक पहुँचे, गुब्बारे खत्म हो चुके थे। हम लोगों की बातचीत का विषय भी तब का बदल चुका था। रवि मुझे शाम के अगले हिस्से में मिलनेवाले कुछ लोगों के बारे में बता रहा था—देख, दो-तीन बड़ी काम की चीजें आनेवाली हैं इस पार्टी पर। मिलवा तो खैर मैं दूंगा तुझे

लेकिन होमवर्क तुझे ही करना है सारा। सबसे इम्पार्टेन्ट मामला कल्चरल लीग की सेक्रेट्री का है। मिसेज रॉड्रिग्स ! याद है न जी. डी. आर. वाली पार्टी ?

—याद तो है यार···, एक उलझन-सी मुझ पर सवार होने लगी थी—लेकिन बाइ गॉड ये होमवर्क वाला मामला मुश्किल पड़ता है···

—और वो अखबारवालों और राइटर्स के साथ बकवास तुझे अच्छी लगती है। रवि ने झल्लाते हुए कहा—साले कोने में खड़े-खड़े दारू चढ़ाते रहते हैं और बातें करते हैं दुनिया जहान की। छोड़ो यार···उन खच्चरों की किस्मत को तुम क्यों अपनी रजाई बनाने पर तुले हुए हो। और फिर पार्टी का मतलब ये नहीं होता कि गिलास लेकर अपनी कोठरी में चले गये और जब खाली हो गया तो फिर प्याऊ पर खड़े हो गये। लोगों से मिलना सीखो, उन पर कुछ काम करो, कुछ उन्हें अपने ऊपर काम करने दो···!

—लोग हों तो इतनी मुश्किल नहीं होती···इस ब्योरम में असल में लोगों की जगह औरतें हैं··, मैं मुस्कराया।

—अरे यार, तो क्या खा जायेंगी तुझे ? रवि हँसने लगा—अच्छा चल प्लूरल का सिंगुलर कर देते हैं। तू तो यार आज बस मिसेज रॉड्रिग्स को सँभाल ले। तेरी कसम, अगर नीना का चक्कर नहीं होता तो मैं तुझे परेशान नहीं करता। इट्स एन एमर्जेन्सी, बिलीव मी ! तुझे बस ये करना है कि हम दोनों के नाम कल्चरल लीग की लोकल रिसैप्शन कमेटी में आ जायें—एनुअल कन्वेंशन के लिए। समझ गया ?

—और ये होगा कैसे ? मैंने पूछा—मेरा मतलब है···

—डोण्ट बी एन इडियट ! रवि ने बीच में ही बात काटकर मुझे बड़े नाटकीय ढंग से खा जानेवाले अन्दाज में देखकर कहा और फिर हँसते हुए बोला—बेटा, ये तो वो तुझे खुद बता देगी···, और फिर पास से गुजरती हुई टैक्सी को हाथ के इशारे से रोककर, तेजी से उसकी तरफ बढ़ते हुए बोला—चल आ···

हँसते हुए हम दोनों टैक्सी में बैठ गये। खिड़की के बाहर शाम की वह रंगीन चहल-पहल तेजी से पीछे छूटती जा रही थी। मेरी आँखों के सामने अदिति के चैम्बर की वह खामोश सफेदी बिछ गयी थी···जिसमें वो और रवि आमने-सामने बैठे थे। मैंने सुना, अदिति पूछ रही है—

—आदित्य कहाँ है ?
—उसकी तबियत अब कैसी है ?
—आया क्यों नहीं वो इतने दिनों से ?
—करता क्या रहता है आखिर ?
—आता क्यों नहीं मुझसे मिलने ?
—इधर तो वह सुधीर के पास भी नहीं आया ?
—बात क्या हुई आखिर ?

रवि की आवाज ने वह सिलसिला अचानक फिर तोड़ दिया—एक बात

पूछूं ?

—क्या ?

—ये तुझे किसने बताया कि अदिति सुधीर मेहता की पत्नी है ? रवि ने अंग्रेजी मे पूछा ।

—क्या मतलब ? मैं बौखला गया ।

—मतलब···जो मैं पूछ रहा हूँ ? रवि ने मेरी तरफ देखा ।

—हाँ आँ···लेकिन, मैं सचमुच उसका सवाल समझ नही पा रहा था—पूछ क्यो रहा है तू ? क्या ये सच नही है ?

—नहीं ! रवि ने गर्दन झुकाकर कहा ।

—वॉट डू यू मीन ? (क्या मतलब है तेरा ?) मैं लगभग चीख उठा ।

—ईज़ी···, रवि ने टैक्सी ड्राइवर की तरफ इशारा करते हुए धीरे-से कहा—वह उनकी पत्नी नही हैं !

—तुझे कैसे मालूम ? मेरी आवाज भिंच-सी गयी थी ।

—मैंने पूछा था उनसे ।

—कब ?

—आज ।

—क्यो···? मैं लगातार उसके चेहरे की तरफ देख रहा था—कैसे ?

यूँ ही ··, रवि ने कन्धे उचकाते हुए कहा—मैंने तो बस यूँ ही पूछ लिया कि आप तो डॉक्टर हैं···फिर सुधीर मेहता से आपने कैसे शादी कर ली ?

—तो ? उन्होंने क्या कहा ?

—वो हँसने लगी···, रवि ने मेरी तरफ देखा। बोली, हम दोनो तो दोस्त हैं···शादी-वादी तो नही की हम लोगों ने !

—फिर ?

—फिर क्या यार ! रवि मुस्करा पड़ा—तोता था तो एक भी नही लेकिन उड़ सारे गये !

उसके साथ ही टैक्सी रुक गयी। हम दोनो उतर गये। रवि ने टैक्सीवाले को पैसे देकर रवाना किया और फिर लम्बी साँस खींचते हुए बोला—खैर, चलो···अभी तो अगला सीन बाकी है ! हम दोनो चुपचाप सामनेवाली बिल्डिंग की तरफ बढ़े जहाँ दरवाजे पर कुछ हलचल थी ।

गेट पर कुछ लोगों से हाथ मिलाकर हम लोग उस बड़े-से लॉन मे दाखिल हुए जहाँ अच्छी-खासी हमा-हमी थी। काफी लोग पार्टी पर आ चुके थे। हम दोनो कुछ ही दूर पहुँचे थे कि नीना सामने आ गयी और बहुत गर्मजोशी से मिली। नीना रवि की जिन्दगी मे पहली लड़की थी जिसके साथ उसकी दोस्ती न सिर्फ अब काफी लम्बी और अच्छी ही हो गयी थी बल्कि रवि मे उसके कारण बहुत-सी अच्छी चीजें जैसे पूरी तरह से निखर-सी गयी थी ।

हम लोग नीना से बात कर ही रहे थे कि उसकी एक दोस्त उसे "जस्ट अ

मिनिट, नीना···" कहकर बिल्डिंग के अन्दर ले गयी। रवि ने इस मौके का फायदा उठाते हुए मेरी बाँह पकड़कर लॉन के दूसरे कोने की तरफ चलते हुए कहा—योर होमवर्क नाउ !

—फॉर गॉड स्सेक···रवि ! मैं दबी आवाज मे उसे घुडकते हुए बोला लेकिन उसके आगे कुछ भी कहना फिजूल था क्योंकि रवि का चेहरा, उसकी आवाज और उसका पूरा अन्दाज तब तक बिल्कुल बदल चुका था।

—बट ऑवकोर्स ! इट हैज टु बी यू मिसेज रॉड्रिग्स। गुड इवनिंग मैम ! (जरूर ये आप ही हो सकती हैं, मिसेज रॉड्रिग्स, नमस्ते मैडम) वह मिसेज रॉड्रिग्स के रूज लगे गालो को आहिस्ता से चूमकर, गलीचा बिछानेवाले अन्दाज मे कह रहा था।

मैंने भी उन्हे मुस्कराते हुए विश किया। मिसेज रॉड्रिग्स लगभग तीस-पैंतीस साल की एक मशहूर सोशलाइट थी। मैंने उन्हे इस तरह की पार्टीज पर कई बार देखा था। मैं जानता था कि वे काफी शराब पीती हैं। मैंने सुना था कि इन पार्टीज पर वो अमूमन आदमियों की तलाश में आती थी—ऐसे आदमी जो उन्हे नशे और उसके भारीपन की लज्जत का पूरा मजा दे सकें। इस काम के लिए, जाहिर है उनकी पहली पसन्द नयी उम्र के लड़कों की होती थी। हम दोनों को यूँ अपने सामने देखकर, एक शोख-सा गुलाबीपन उनकी आँखों में बेसब्री से बाहर झाँकने लगा।

रवि अपने प्लान के मुताबिक कुछ ही देर में *'अभी आया'* कहकर खिसक गया। मिसेज रॉड्रिग्स ने पास से गुजरते हुए 'लिकर कार्ट' को रोककर अपने लिए एक और 'गिमलेट' उठा ली और फिर मुस्कराकर पलकें झपकाते हुए उन्होंने मुझसे पूछा—हैव अ लिटिल बियर, डार्लिंग···गिव मी सम कम्पनी···! और मेरे जवाब का इन्तजार किये बगैर उन्होने बियर का एक मग उठाकर मुझे दे दिया।

बीयर मैं पी कई बार चुका था लेकिन अभी तक उसका जायका मुझे ललचा नही पाता था। साथ ही मैं अभी तक 'कुछ' तय नही कर पाया था। टैक्सी मे हुई उस बातचीत ने मेरे भीतर जैसे किसी चीज की जलती हुई लपटो को एकदम से बुझा दिया था और एक धुंआ-सा फैल गया था—जिसके पार मैं अभी तक साफ-साफ कुछ भी नही देख पा रहा था। अगर मुझे इस बीच थोड़ी देर की भी मोहलत मिल जाती तो हो सकता है कि मैंने यही तय किया होता कि आज शाम मैं मिसेज रॉड्रिग्स के साथ आखिर तक शराब पिऊँगा···। लेकिन उस धुएँ ने सबकुछ छिपा रक्खा था।

मिसेज रॉड्रिग्स ने अपना कॉकटेल ग्लास मेरे मग से धीरे-से टकराया और अपनी बिल्ली जैसी आँखो को मुझ पर जमाकर बोली—चियर्स ! टु अ हैन्डसम डैविल !

इसके पहले कि मैं कुछ कह पाता, किसी ने पीछे से मेरे कन्धे को हल्के से थप-

थपाया। मैं चौंक गया। और मुड़कर जब मैंने देखा तो पीछे अदिति खड़ी थी—कहाँ थे जी तुम ?

3

सर्दियाँ आ गयी थीं। यूनिवर्सिटी के खेल-कूद, टूर्नामेन्ट्स और स्पोर्ट्स मीट इत्यादि का मौसम। मैं अपने कॉलिज की टैनिस टीम का मेम्बर था। टैनिस का चस्का मुझे स्कूल के दिनों से ही था। नवीं क्लास तक मैं बैडमिण्टन इतनी अच्छी खेलने लगा था कि न सिर्फ स्कूल की टीम में ही शामिल कर लिया गया था बल्कि हायर सैकेण्ड्री तक मैंने लगातार दो साल तक इण्टर-स्कूल बैडमिण्टन चैम्पियनशिप जीती थी। स्कूल के पी. टी. टीचर जो चौथी क्लास के दौरान पदमचन्द की पिटाई के कारण मुझसे कई साल नाराज रहे थे, आखिरकार बैडमिण्टन के कारण मुझे पसन्द करने लगे थे। ग्यारहवीं क्लास में उन्होंने ही मुझे टैनिस खेलने की सलाह दी थी। लेकिन स्कूल में टैनिस नहीं होती थी और जब मैंने उन्हें बताया कि किसी क्लब को जॉइन करना मेरे लिए मुश्किल था तो उन्होंने स्कूल की तरफ से सिफारिश करवाकर एक क्लब में मेरे ही साथ कुछ और लड़कों के भी खेलने का इन्तजाम करवा दिया।

जिस दिन मैंने पहली बार बैडमिण्टन की जगह टैनिस का रैकेट हाथ में लिया था, मुझे याद है कि अपने ऊपर एक नये ढंग का भरोसा मैंने अपने भीतर कहीं महसूस किया था। टैनिस को लेकर मेरा वह असाधारण आकर्षण शायद स्वाभाविक ही था। उस खेल में कुछ ऐसा था जो उस दुनिया का हिस्सा था जहाँ मैं पहुँचना चाहता था। साथ ही वह टीम का नहीं बल्कि काफी हद तक अकेले खिलाड़ी का खेल था। यह एक ऐसी स्थिति थी जो मुझे समझ में भी आती थी और अच्छी भी लगती थी। वैसे भी स्कूल और कॉलिज की पढ़ाई के दौरान मुझे यह बात हमेशा खटकती थी कि शिक्षा का सारा नाटक तो बराबरी, भाईचारे और टीम भावना जैसे शब्दों के सहारे खेला जाता था लेकिन सफलता और सम्मान के सम्भुओं में फर्स्ट, सैकिण्ड, थर्ड या कप्तान और चैम्पियन जैसे लोग ही जा पाते थे। मुझे लगता कि यदि फैसला आखिरकार 'सर्वश्रेष्ठ' और एक अकेले आदमी के ही हक में होना है तो फिर टीम में खेला ही क्यों जाये। बल्कि ऐसे खेल ही क्यों खेले जायें जिनमें भीड़ होती है। एक और बात भी थी मेरे इस सोचने के ढंग के पीछे। उस मोहल्ले के माहौल ने जिसमें कि मैं रहता था, धीरे-धीरे मुझे इतना अकेला बना

दिया था कि मैं किसी टीम में खेलने लायक बचा ही नहीं था। नतीजा यह हुआ कि साल-भर के अन्दर ही मैं अच्छी-खासी टैनिस खेलने लगा।

खेलने की बात को लेकर ही रवि के व्यक्तित्व के बारे में भी मुझे एक बहुत जरूरी और महत्त्वपूर्ण बात अनायास ही पता चला थी। मैंने जब स्कूल में बैडमिण्टन खेलना शुरू किया तो रवि से भी कहा। उसने मेरे सुझाव को बड़े दो-टूक ढंग से खारिज कर दिया। मैंने उसके बाद भी कई बार उसे समझाने की कोशिश की कि खेलने के बहुत से फायदे होते हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि आदमी यदि पूरी सजीदगी से उसमें जुट जाये तो बिना ज्यादा पढ़ाई-लिखाई के भी अच्छा कैरियर बना सकता है। एक रात फिर उसने उस बातचीत का अन्त करते हुए मुझसे साफ-साफ कहा था—देख, न तो मुझे ज्यादा पढ़ाई-लिखाई करनी है, न बैडमिण्टन का चैम्पियन बनना है और कैरियर-वैरियर गया भाड़ में। मुझे मालूम है कि मुझे क्या करना है और वो मैं कर रहा हूँ। समझ गया न तू? अब आइन्दा ये स्पोर्ट्स पर लैक्चर बन्द।

फिर जैसी कि उसकी आदत थी, अपने गुस्से को हँसी से धोता हुआ बोला—ये सब चक्कर तू अपने लिए रख न। और तेरे तो दिन भी अभी खाने-खेलने के हैं यार…

—वो तो है ही…, मैंने भी उसे सहज करने के लिए हँसकर कहा था—घबरा मत तेरे भी दिन आयेंगे ऐसे।

—असल में बात मालूम है क्या है? कुछ देर बाद वह धीरे से बोला था—गुड्डू, बात ये है कि…जब लोग खेलते हैं न…मेरा मतलब है जब कोई मैच वगैरा होता है, तो जो लोग देख रहे होते हैं…पता नहीं क्यों मुझे लगता है कि जो आदमी हारता है…वो उन्हीं लोगों की वजह से हार जाता है। कैसे पागलों की तरह चिल्लाते हैं वो…बिल्कुल कुत्तों की तरह पीछे पड़ जाते हैं वो हारनेवाले के। मुझे बहुत घबराहट होती है वह देखकर।

शर्मिन्दगी के मारे मैं चुप हो गया था। रवि के अनाथालय से भागने के बाद यह दूसरा साल था।

मुझे सचमुच अपने आप पर बहुत गुस्सा आया था उस रात। न जाने कितनी बार मैं ऐसी गलतियाँ कर चुका था। उसकी अपनी तकलीफों से उसका ध्यान हटाने की अपनी बचकानी कोशिशों में मैं अक्सर उसकी किसी ऐसी रग पर पाँव रख देता था कि वह सहम-सा जाता था।

मैंने उसके कन्धे पर हाथ रखकर धीरे से कहा था—तू बेकार घबराता है रवि! और फिर…तू तो इतनी हिम्मत के साथ सबकुछ कर रहा है। बाइ गॉड, आइ एम सो प्राउड ऑव यू…(भगवान की कसम मुझे तुझ पर गर्व है) मैं तो खुद तुझसे सीखता हूँ इतनी बातें…

रवि कुछ नहीं बोला था। और उस दिन के बाद फिर मैंने रवि से खेलने के बारे में कभी कुछ नहीं कहा। बाद की जिन्दगी में भी ऐसी कई स्थितियाँ आयीं जब

मुझे लगा कि रवि के व्यक्तित्व का यही हिस्सा उसकी कमजोरी बना था लेकिन जो बात मुझे आज तक समझ में नहीं आयी वह यह है कि रवि जैसा सख्त जाँ और हिम्मती लड़का जिसने जिन्दगी में क्या कुछ लड़कर नहीं जीता, वह इस एक गुत्थी को क्यों नहीं सुलझा पाया ?

अदिति ने मुझे इसके बारे में मनोविज्ञान के कई शब्दों का सहारा लेकर समझाने की कोशिश की थी लेकिन आश्चर्य उन्हें भी इस पर कम नहीं हुआ था। अलबत्ता रवि मैच देखने जरूर आता था। यूनिवर्सिटी की पढ़ाई के दौरान शायद ही मेरा कोई ऐसा मैच था जिसे देखने वह न आया हो। कोर्ट के एक कोने में मेरे बैग के पास बैठकर वह चुपचाप लेकिन बिल्कुल चौकन्ना होकर पूरा मैच देखता रहता। जब मैं मैच जीत जाता तो उसका चेहरा पिघल-सा जाता था। मुझे अपनी बाँहों में पूरी ताकत से भींचकर वह बिल्कुल स्कूल के दिनोंवाली आवाज में कहता—यू वर ग्रेट गुड्डू ! (बहुत जोरदार खेला तू, गुड्डू) और जब मैं हार जाता तो उसकी वह कमजोर-सी आवाज—मेक दट नैक्स्ट टाइम गुड्डू ! (अगली बार सही गुड्डू !)

टैनिस टूर्नामैण्ट हो रहा था। उस दिन मैन्स फायनल था। देबू रॉय जिससे कि मुझे मैच खेलना था पिछले दो सालों से यूनिवर्सिटी का चैम्पियन था और एम. ए. फायनल का छात्र था। मैं यूनिवर्सिटी में जब से आया था देबू रॉय के खेल से न सिर्फ बहुत प्रभावित ही था बल्कि उसके बेहद प्रभावशाली व्यक्तित्व और काफी नाटकीय तौर-तरीकों का भी मुझ पर काफी दबाव था। अक्सर यूनिवर्सिटी कोर्ट् स में मैं उसे देखता था और न जाने क्या होता था कि उसकी मौजूदगी मुझे कुछ इस तरह से सिकोड़-सा देती थी कि मैं अपना स्वाभाविक खेल भी भूल-सा जाता था। हर बार मैं सोचता कि आखिर ऐसा क्यों होता है ? उसे सामने देखते ही मेरा सारा आत्म-विश्वास चूर-चूर क्यों हो जाता है ? जहाँ तक खेल का सवाल था मुझे मालूम था कि मैं उतना कमजोर नहीं था, बल्कि पिछले साल-भर के दौरान तो मेरे खेल में इतना सुधार हुआ था कि मेरे कोच को मुझसे बहुत उम्मीदें बँध गयी थीं। लेकिन देबू रॉय···?

सबकुछ बदल जाता था उसके आते ही। जैसे ही उसकी चमचमाती हुई लाल रंग की एम. जी. स्पोर्ट् स कार कोर्ट के बाहर आकर रुकती एक अजीब-सी हलचल चारों तरफ मच जाती। लगभग हमेशा ही उसके साथ दो-तीन काफी खूबसूरत लड़कियाँ भी आती थीं। यूँ वे भी रैकेट लिये और खेल के कपड़े पहने हुए आती थीं लेकिन शायद ही मैंने उन्हें कभी कोर्ट पर देखा था। सारा वक्त वे लोग कोका-कोला की बोतलें उठाये और च्यूइंगगम चबाते इधर-उधर घूमती रहतीं। देबू रॉय जब खेलता तो उसके मामूली-से शॉट पर भी उनकी चीखें आसमान सिर पर उठा लेतीं। सैट पूरा करने के बाद वे लोग देबू के साथ लॉन के एक कोने में बैठकर देर तक खिलखिलाती रहती थीं। जूनियर खिलाड़ी होने के नाते मुझे कोर्ट बाद में मिलता था और जिस वक्त मैं खेल रहा होता था तो मुझे लगता जैसे वे सब लोग मुझ ही पर हँस रहे हैं। इसका एक कारण भी था। लगभग छः महीने पहले एक

बार मैं कोर्ट पर बैठा अपनी बारी का इन्तजार कर रहा था। देबू रॉय के साथ खेलनेवाला लड़का उस दिन नहीं आया था और क्योंकि देर हो रही थी इसलिए देबू ने मुझसे अपने साथ एक सैट खेलने के लिए कहा था। मैं सहज ढंग से और एक जूनियर के नाते काफी अदब और सावधानी के साथ खेलने लगा। पहले गेम के दौरान ही मुझे लगा कि देबू का बैक-हैण्ड काफी कमजोर है और यदि मैं उस चीज का फायदा उठाऊँ तो जीत सकता हूँ। हुआ भी बिल्कुल वही। मैंने जब वह सैट जीत लिया तो देबू का मूड काफी खराब हो गया। लेकिन बाहरी तौर पर उसने उस हार को साधकर मुझसे हाथ मिलाया और बोला—बहुत अच्छा खेलते हो तुम —लगता है घर पर भी काफी प्रैक्टिस करते हो!

—घर पर कहाँ···सर, मैंने हिचकते हुए कहा था—मैं तो बस यहीं खेलता हूँ थोड़ा-बहुत!

—अच्छा! क्यों? क्या करते हैं तुम्हारे फादर? देबू ने आश्चर्य से पूछा था।

कुछ क्षणों के लिए मैं चुप हो गया था। फिर मैंने धीरे से कहा—प्राइवेट नौकरी करते हैं।

—प्राइवेट नौकरी मतलब? देबू रॉय ने तौलिये से अपना गुलाबी चेहरा पोंछते हुए बीच में ही रुककर मुस्कराते हुए पूछा।

और मेरा चेहरा तमतमा गया था—प्राइवेट नौकरी मतलब प्राइवेट नौकरी, मिस्टर देबू रॉय! और मैं कोर्ट से बाहर निकल गया था।

पता नहीं क्यों मुझे लगा था कि देबू रॉय अमीर खानदान का भले ही सही लेकिन अच्छा खिलाड़ी था और इसलिए बाद में अगर माफी नहीं भी तो कम-से-कम अपने व्यवहार पर अफसोस जरूर जाहिर करेगा। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ बल्कि इसका उल्टा ही हुआ। उसके बाद कोर्ट पर मुझे देखते ही उसके चेहरे पर वही मजाक उड़ाती हुई-सी मुस्कराहट उभर आती और उसे देखते ही मेरे तन-बदन में आग-सी लग जाती।

उस घटना के बारे में मैंने किसी से कुछ नहीं कहा था—यहाँ तक कि रवि से भी नहीं। लेकिन अपने भीतर कहीं मैंने तय कर लिया था कि देबू रॉय से मैं उसकी वह मुस्कराहट छीनकर रहूँगा।

रास्ता सिर्फ एक था—जो रवि कहता था—जिस चीज से डर लगता है उसके सामने से हटो मत, उसे तोड़ दो—खत्म कर दो! कई महीनों फिर मैं जान-बूझकर कोर्ट पर ज्यादा-से-ज्यादा वक्त देबू रॉय की नजरों के नीचे झुलसता रहा। उसके तमाम लटको-झटको और तौर-तरीकों के बीच मैं चुपचाप हर रोज कोर्ट पर सबकुछ भूलकर सिर्फ एक चीज के लिए खेलता—देबू रॉय को हराने के लिए! सेमी फायनल जीतने के बाद कॉलिज में भी इस बात को लेकर काफी उत्तेजना थी कि बी. एस-सी. फायनल का एक लड़का यूनीवर्सिटी फायनल देबू रॉय जैसे हीरो के साथ खेलनेवाला है। रातोरात सबकुछ बदल गया था। कॉलिज के कई लड़कों ने इतनी गर्मजोशी से मेरे फायनल में पहुँचने को सराहा कि एक बिल्कुल ही नये

ढंग के आत्म-विश्वास ने मुझे बेचैन-सा कर दिया। अजीब थी वह बेचैनी। मुझे आज भी वह सुबह अच्छी तरह याद है—

खचाखच भरे हुए कोर्ट में आधे से ज्यादा लोग मेरे कॉलिज के थे। मैच शुरू होने से पहले ही इतना ज्यादा हंगामा हो चला था कि देबू रॉय का मूड कुछ उखड़-सा गया। लेकिन पहले गेम के दौरान ही देबू रॉय ने सबकुछ बदल दिया और जैसे ही मैं वह गेम हारा, सबसे पहली आवाज जो मेरे कानों में पड़ी वह थी देबू रॉय के साथवाली लड़कियों की खिलखिलाहट। उसके साथ ही मेरी निगाह कोने में बैठे हुए रवि पर पड़ी जिसका चेहरा सख्त-सा हो चला था और वह नजरें झुकाये कुछ सोचता-सा बैठा था।

मेरे अपने हिसाब से भी दूसरा गेम काफी अलग तरह का होनेवाला था क्योंकि पहले गेम के दौरान मैंने एक-एक करके देबू रॉय के सभी पसन्दीदा और ताकतवर शॉट्स को आजमा लिया था और यह भी अच्छी तरह देख लिया था कि उसके खेल में कोई बहुत ज्यादा सुधार नहीं हुआ है। फिर पहले गेम की जीत का हल्का-सा सुरूर देबू रॉय की मुस्कराहट और मूड में भी साफ झलकने लगा था। लेकिन दूसरा गेम इतना अलग होगा यह खुद मैंने भी नहीं सोचा था। देबू रॉय की पहली ही सर्विस छीनकर मैंने उसे दोबारा मौका नहीं दिया। मैंने तय कर लिया था कि उसे फोर हैण्ड से खेलने का मौका नहीं दूंगा चाहे मुझे कितना ही क्यों न भागना पड़े। और नतीजा यह हुआ कि दूसरा गेम मैंने उसी सर्विस में जीत लिया। देबू रॉय के बैक-हैण्ड की कमजोरी का आखिरी परिणाम यह हुआ कि गेम पाइण्ट पर मेरे एक स्मैश को बैक-हैण्ड से सँभालने की कोशिश में देबू रॉय के हाथ से रैकेट छूट गया और कोर्ट पर मौजूद कॉलिज की भीड़ ने जैसे आसमान सिर पर उठा लिया।

उस कोहराम के बीच मैंने फिर रवि की तरफ देखा। बावजूद इसके कि मैं दूसरा गेम जीत गया था रवि पहले से भी ज्यादा 'टेन्स' था और उसी तरह नजरें झुकाये बैठा था। तीसरा गेम कई अर्थों में महत्वपूर्ण था। न सिर्फ मैंने उसे जीत कर यूनिवर्सिटी चैम्पियनशिप ही जीती थी बल्कि बीच गेम में ही उसकी वह मुस्कराहट भी बिल्कुल हाथ से छूटे रैकेट की तरह चेहरे से दूर न जाने कहाँ जा पड़ी थी। देबू रॉय का खूबसूरत चेहरा उस मुस्कराहट के छिनते ही अजीब ढंग से मुरदा और विद्रूत-सा हो गया था। तीसरा गेम और सैट हारने से काफी देर पहले उसे यह मालूम हो गया था कि वह चैम्पियनशिप हार रहा था। एक अजीब ढंग की झल्लाहट और भौचक्कापन उसके सारे वजूद पर छा गया था। वही भीड़ जो पिछले लगातार दो सालों से उसे उकसाते हुए, चीते की तरह फुर्तीला और खूँखार बनाती रही थी, अब एक ऐसे हांके में तबदील हो गयी थी जिससे घिरकर देबू रॉय घबरा गया था और भागना चाहता था। लेकिन भागने से पहले कई बार मरना पड़ता है। देबू रॉय को दूसरा सैट भी खेलना था। उसे वह सैट खेलना भी पड़ा, उसे हारना भी पड़ा और बजाय भागने के आखिर में गर्दन झुकाये, धीमे कदमों से चलते

हुए कोर्ट के बाहर भी जाना पड़ा। सैट जीतने के बाद मैंने उससे हाथ मिलाया था और 'वैल प्लेड' कहने के बाद मैं अपने आपको वह दूसरी बात कहने से पूरी कोशिश के बावजूद रोक नहीं पाया था—मेरे पिता एक सेठ के यहाँ नौकरी करते हैं देव, तुम जानना चाहते थे न ! मैंने अंग्रेजी में कहा था।

ठीक उसी क्षण मैंने अपने भीतर यह भी फ़ैसला किया था कि अब मैं टैनिस नहीं खेलूँगा। उसी दिन मुझे पहली बार रवि की भीड़ के बारे में कही गयी वह बात पूरी तरह से समझ में आयी थी। उसी दिन मुझे लगा था सुधीर मेहता कुछ भी कहते रहें—लेकिन भीड़ एक अन्धा और खूँखार जानवर होती है, उसे सिर्फ़ ऐसे लोगों की तलाश होती है जो किसी दूसरे को मारकर उसकी लाश उनके सामने फेंक दें। भीड़ क्रान्ति-श्रान्ति नहीं, सिर्फ़ बदलाव चाहती है—मनोरंजन के लिए बदलाव। भीड़ के लिए 'सही' और 'गलत' नैट के दोनों तरफ़ खेलनेवाले अलग-अलग खिलाड़ी होते हैं और भीड़ को इन्तजार 'सही' का नहीं बल्कि जीतनेवाले का होता है।

दूसरा सैट मैंने सचमुच काफ़ी स्टाइल के साथ एक बैक हैण्ड ड्राइव से खत्म किया था और कोर्ट में भूचाल-सा आ गया। कॉलिज के लड़के-लड़कियों ने मुझे कन्धों पर उठाकर पूरे कोर्ट का चक्कर लगाया। रवि उस सारे दौरान उसी कोने में खड़ा वह सारा तमाशा देखता रहा। उसकी नजरें अब झुकी नहीं थीं और न ही उसका चेहरा सख्त था। मेरी जीत ने उसकी आँखों को चमका दिया था। कैसे छोटे-छोटे क्षण और कितनी नामालूम-सी बातें होती हैं जिस दौरान दोस्ती या और भी रिश्तों की जड़ें जमीन के नीचे अँधेरे में ही फैलती जाती हैं।

अगले दिन के अखबारों ने वह खबर इतनी बढ़ा-चढ़ाकर छापी कि मुझे खुद थोड़ा आश्चर्य हुआ। खेल के ब्यौरे के साथ-साथ मेरी दो तस्वीरें भी छपी थीं—एक खेलते हुए और दूसरी सिर्फ़ चेहरे की। बाबा हिन्दी का अखबार पढ़ लेते थे और उन्होंने ही वह सारी खबर अम्माँ को भी पढ़कर सुनायी थी। खबर सुनने के बाद अम्माँ अखबार लेकर मौहल्ले में चली गयी थीं—सब पड़ोसियों को दिखाने। मैं क्योंकि पिछली रात देर से घर लौटा था इसलिए सुबह उठा भी देर से था। जब उठा तो बाबा नाश्ता कर चुके थे और अपनी ड्यूटी पर जा रहे थे। मुझे देखकर वह धीरे से मुस्कराये थे और फिर मेरे बालों को बहुत लाड़ से छितराकर बोले—आज तो तुम्हारी तस्वीर छपी है अखबार में—और हमें तुमने बताया भी नहीं कि—खैर, बहुत अच्छी बात है। लेकिन बेटा, पढ़ाई का भी ध्यान रखना अपनी। अम्माँ जब लौटीं तो उनकी खुशी देखने लायक थी। यूँ न उन्हें यह मालूम था कि टैनिस क्या होती है और न यह कि यूनिवर्सिटी चैम्पियन बनने का क्या मतलब होता है। उनके लिए तो अखबार में दो-दो तस्वीरों का छपना मुख्य बात थी।

जहाँ तक मौहल्ले का सवाल था, सिर्फ़ कम्मो थी जो मुझे मुबारकबाद देने आयी थी। मैं कॉलिज जाने के लिए निकल ही रहा था कि वह एक बड़ी-सी प्लेट में बहुत से रसगुल्ले लेकर दाखिल हुई और उसकी खुशी ने सचमुच जैसे पूरे मौहल्ले

के उस अजीब, ठण्डे व्यवहार को ढँक-सा लिया। मुझे पहली बार अहसास हुआ कि अम्मां और बाबा के बाद सिर्फ एक कम्मो थी जिसे मेरी पसन्द-नापसन्द मालूम थी, जो मेरा लाड़-प्यार करती थी और जिसके साथ मेरा एक अजीब-सा रिश्ता वक्त के साथ-साथ गहराता गया था।

मुझे याद है कि नवी क्लास तक मैं उसे कम्मो दीदी ही कहता रहा था। उस घर की और छतवाले उस कमरे की बहुत-सी यादें मेरे भीतर आज भी कुछ दीवारो पर सफेद कलई की तरह पुती हुई हैं—ऐसी दीवारें जिन पर फिर कभी सफेदी नही हुई और वक्त के साथ-साथ जो पीली-मटमैली-सी पडती गयी हैं। यहाँ-वहाँ से जिन पर पपड़ियाँ-सी उखडती रही हैं—अपने पीछे भदरंगे धब्बे छोडती हुई।

मैं जब नवी क्लास मे पहुँचा तो मेरी उम्र 13 साल की थी। कम्मो उस वक्त बीस पार कर चुकी थी। तब तक मुझे बहुत-सी चीजों का मतलब मालूम हो चुका था। कम्मो को वो पतली किताबें देनेवाला आदमी अब कम्मो की तरफ देखता भी नही था। कम्मो के घर अक्सर आनेवाले उसके हम-उम्र रिश्तेदारो की भी तादाद कम नही हुई थी। हर साल-दो साल बाद कुछ चेहरे गायब हो जाते और उनकी जगह कुछ नये चेहरे आ जाते। कम्मो मैट्रिक का वह इम्तहान कभी पास नही कर पायी। बीस साल की उम्र मे ही वह मोहल्ले की शादी-शुदा औरतो की तरह दिखने लगी थी। बल्कि एक अजीब-सा उजाड़पन उसके चेहरे पर और छा गया था जो उसे उन घरेलू औरतों की तुलना मे और भी दयनीय बना देता था।

जाड़ो की एक दोपहर कम्मो दीदी ने मुझे बुलाया था। उस वक्त घर मे कोई और नही था। कम्मो दीदी ने नीचेवाले कमरे मे ही मुझे बिठाया था और काफी देर तक मेरे बराबरवाली सोफा-सीट पर गरदन झुकाये चुपचाप बैठी रही थी। उन्हें देखकर मुझे लगा जैसे उनकी तबियत ठीक नही थी। कुछ देर बाद उन्होंने सचमुच बेहद बीमार आवाज में मुझसे कहा—तुझे एक बात बताऊँ गुड्डू!

—हूँअअ, उनकी आवाज ने मेरे भीतर एक सन्नाटा पैदा कर दिया था।

वो फिर चुप हो गयी। कुछ देर बाद जब वो बोली तो वह कमजोर आवाज बिल्कुल ही टुकड़े-टुकड़े हो गयी—मेरी शादी···होनेवाली है गुड्डू!

मैंने चौंककर उनकी तरफ नजरें उठायी और उनके चेहरे की तरफ देखता-सा रह गया। शादी की बात करते हुए तो लड़कियाँ इतना शरमाती हैं। फिर? लाज की उस झीनी, गुलाबी चुन्नी की जगह कम्मो दीदी के चेहरे पर उस सफेदी के कफन ने मुझे डरा-सा दिया। घबराहट मे मेरे मुँह से सिर्फ इतना ही निकला—अच्छा···।

फिर खामोशी छा गयी। कम्मो दीदी उसी तरह फर्श पर बिछी लाल-नीली दरी को देखती बैठी रही।

—कब होगी शादी, कम्मो दीदी? मैंने उस चुप्पी से घबराकर पूछा।

—अगले महीने, उन्होंने अनमने ढंग से कहा और उसके बाद फिर अपने

आपको कुछ बांधती हुई-सी वो बोलीं—लेकिन उसके पहले एक बहुत जरूरी काम है, गुड्डू—

—क्या ?

—करेगा न तू – देख मना मत करना, तुझे मेरी कसम !

—पहले काम तो बताओ ?

—देख—तू किसी डाक्टर को जानता है ?

—हाँ, हाँ—वो डाक्टर माथुर हैं —चाँदनी चौक में, मैंने जल्दी से बताया—जब मैं बीमार पड़ता हूँ तो अम्माँ उन्हीं के पास ले जाती हैं हमेशा—लेकिन डॉक्टर से क्या—

उनका चेहरा फिर बुझ गया—नहीं—वो नहीं। और किसी डाक्टर को ?

—और तो किसी को नहीं जानता मैं-—

हम दोनों फिर चुप हो गये। वो कुछ देर तक सोचती रहीं। फिर जैसे अपनी आवाज को उन्होंने धकेला—अच्छा देख—तू मेरे साथ चला चलेगा न डाक्टर के पास ? डाक्टर का पता मैं कर लूंगी।

—हाँ, हाँ—लेकिन, तुम्हें तकलीफ क्या है कम्मो दीदी ?

—मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती गुड्डू, उन्होंने कहा—और···मम्मी को मैं बताना नहीं चाहती···नहीं तो उन्हें दौरा पड़ जायेगा।

—ठीक है···तो मैं चलूँगा तुम्हारे साथ, मैंने उनसे वादा करते हुए कहा।

अगले रोज हम दोनों चौराहे से कुछ दूर आगे, लाल कुएँ की तरफ अलग-अलग पहुँचे और फिर रिक्शा लेकर सदर बाजार के लिए रवाना हुए जहाँ कोई डाक्टर था। रिक्शा में बैठने के कुछ देर बाद कम्मो दीदी ने मुझसे कहा—देख अगर डाक्टर साहब तुझसे पूछें तो तू कह देना कि मेरी शादी हो चुकी है। ठीक है ? मैंने चुपचाप गर्दन हिला दी।

कम्मो दीदी ने रिक्शेवाले को डाक्टर की दुकान के सामने ही रुकवाया और हम लोग नीचे उतरे। दुकान में घुसने से पहले मेरी नजरें क्षण-भर के लिए बाहर टँगे हुए लाल रंग के बड़े से बोर्ड पर ठिठक गयीं जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—'गुप्त रोगों का शर्तिया इलाज' और नीचे किसी डाक्टर का नाम था। हम लोग जब अन्दर पहुँचे तो वह डाक्टर अकेला बैठा एक मैगजीन पढ़ रहा था। उस कमरे की रंगत और उस आदमी को देखकर मैं कुछ सहम-सा गया। डाक्टर माथुर जो मेरा इलाज करते थे और उनका कमरा एक क्षण के लिए मेरी आँखों के सामने घूम गया। कितना फर्क था इन दोनों जगहों में। वह आदमी डाक्टर के बजाय किसी बस का कन्डक्टर लग रहा था। साथ ही कुछ और भी था उसमें जिसे देखकर मुझे घबराहट के साथ ही एक अजीब-सा गुस्सा भी मन-ही-मन महसूस होने लगा।

कम्मो दीदी उस डॉक्टर के बराबर पड़ी एक बेंच पर बैठ गयीं और मैं उनसे थोड़ा हटकर बेंच के कोने की तरफ। कम्मो दीदी ने नीची आवाज में अपनी

तकलीफ बतायी। डॉक्टर ने सारी बात सुनने के बाद पूछा—आपके शौहर को भी है यह तकलीफ?

—जी ! कम्मो दीदी ने नजरें झुकाकर कहा।

—तो इलाज तो उनको भी करवाना चाहिए''', उसने कम्मो दीदी की तरफ देखकर मुस्कराते हुए कहा—खैर, घबराने की बात नहीं है कोई। इस उमर में हो ही जाती हैं ये बीमारियाँ तो। आइए जरा' उधर आ जाइए। कम्मो दीदी खड़ी हो गयी और उस डॉक्टर के पीछे-पीछे एक कैबिननुमा कमरे में चली गयी।

अचानक एक धमाका-सा मुझे अपने भीतर महसूस हुआ और अगले ही क्षण मुझे समझ में आ गया कि उस डॉक्टर की शक्ल से मुझे इतनी नफरत क्यों हो गयी थी। उस डॉक्टर की वह मुस्कराहट ठीक वैसी ही थी जैसी कि बरसों पहले चौराहे के सामने उस भादी के बाईवाली दुकान के मालिक की थी जिसने वह किताब मुझे कम्मो दीदी को देने के लिए दी थी।

कुछ देर बाद कम्मो दीदी और वह डॉक्टर कैबिन से बाहर आ गये। मैंने जान-बूझकर अपनी नजरें झुका ली। उस डॉक्टर ने कम्मो दीदी को कुछ दवाइयाँ दी। चलते वक्त कम्मो दीदी ने अपने पर्स में से अस्सी रुपये निकालकर उस डॉक्टर को दिये और हम दोनों दुकान से बाहर आ गये।

वापिसी के दौरान कम्मो दीदी सारे रास्ते चुप रहीं। घर से कुछ दूर पहले ही हम दोनों रिक्शे से उतर गये। कम्मो दीदी ने मुझसे कहा—देख कोई पूछे तो कह देना मैं रूमाल कढ़वाने गयी थी, ठीक है?

मैंने गर्दन हिला दी थी।

—जा अब तू, मैं चली जाऊँगी, उन्होंने चलते हुए कहा था। कम्मो के साथ मुझे आठ-दस बार उस डॉक्टर के पास जाना पड़ा था। हर बार वो उसे पहले से ज्यादा फीस देती थी। पहला हफ्ता सचमुच बहुत ही बुरा बीता था क्योंकि डाक्टर की दवाई खाने के बाद कम्मो को दो-तीन दिन बहुत तेज बुखार रहा था। उन दिनों मेरा ज्यादातर वक्त उसके कमरे में ही बीता था। बुखार के कारण उसकी मम्मी ने एक दूसरे डाक्टर को घर पर बुलाया था जिसने बहुत-सी और दवाइयाँ दी थी। लेकिन कम्मो ने वो सब-की-सब दवाइयाँ मुझसे फिकवा दी थी। उन तीन दिनों के दौरान मैं सुबह-शाम सदर बाजारवाले उस डाक्टर के पास कम्मो का हाल बताने और नयी-नयी दवाइयाँ लाने जाता। लौटकर फिर घण्टों मैं उसके सिरहाने बैठा उसके जलते हुए माथे पर यू-डी-कॉलोन की पट्टियाँ बदलता रहता। कम्मो बीच-बीच में बुखार की उस बेहोशी में न जाने क्या-क्या बड़बड़ाती। होश आने पर वह मेरी गोद में सिर रखकर किसी छोटी लड़की की तरह सुबकने लगती।

उस बीच कम्मो का एक रिश्तेदार—लगभग उसी की उम्र का एक मरियल-सा लड़का—भी कई बार उसके कमरे में दिखायी देता लेकिन उससे मेरी कोई बात-चीत न होती। न जाने क्यों मुझे लगा कि कम्मो उसी की वजह से बीमार पड़ी थी।

हारकर कम्मो को उसी डाक्टर की दवाएँ खानी पड़ी जो उसकी मम्मी ने बुलाया था। वह पिछले दिनों रही अपनी हालत से इतना ज्यादा घबरा गयी थी कि आखिरकार उसे घर आनेवाले डॉक्टर को अपनी असली बीमारी भी बतानी पड़ी। बहरहाल तीन हफ्ते बाद जाकर कम्मो की हालत कुछ सुधरी। जैसे-जैसे उसकी तबियत मे सुधार हुआ, मेरा उससे मिलना अपने आप ही कम हो गया। अलबत्ता कुछ दिनो बाद मुझे याद आया कि कम्मो की शादी भी तो होनेवाली थी। उस दोपहर जब मैं इस बारे मे पूछने के लिए कम्मो के कमरे में पहुँचा तो वह अपने बिस्तर पर तकिये मे मुँह छिपाये सिसक रही थी। कुछ क्षणो तक मैं उसे चुपचाप देखता रहा फिर उसके पास बैठकर मैंने आहिस्ता से उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा—कम्मो दीदी !

कुछ क्षणो के लिए उसकी सिसकियाँ रुक गयी और वह उसी तरह एक सकते-से मे पडी रही। फिर अचानक वह फफक पडी और उसी दौरान उठकर वह मुझसे चिपटकर फिर फूट-फूटकर रोने लगी।

कम्मो की शादी की बात टूट गयी थी। लडकेवालो का कहना था कि लडकी का चाल-चलन अच्छा नही है—ये बातें मुझे बाद मे पता चली थी जब इनके बारे मे मोहल्ले के लोग कानाफूसी छोडकर खुले-आम बातें करने लगे थे।

पता नही क्यो फिर बहुत दिनों तक मेरी हिम्मत नही हुई कम्मो से मिलने की। कुछ महीनों बाद एक दिन फिर वह खुद ही मेरे घर आयी थी। काफी देर तक वह अम्मा से इधर-उधर की बातें करती रही थी। मुझसे भी उसने ढेरों बातें की थी उस दिन और मुझे यह देखकर बहुत अच्छा लगा था कि कम्मो जैसी भी थी, और उसके साथ जो कुछ भी हुआ था लेकिन वह फिर जिन्दगी मे—जैसी भी उसकी जिन्दगी थी—बहने लगी थी। बात करते-करते मैं उसे छोडने उसके कमरे तक गया। उसने मुझे बताया कि वह फिर से मैट्रिक के इम्तहान की तैयारी कर रही है। उसके कमरे मे बैठे बातचीत करते हुए मुझे एकाएक यह अहसास हुआ था कि मैं उससे कम्मो दीदी नही बल्कि सिर्फ कम्मो कहकर बात कर रहा था। अजीब तो है, लेकिन सच है कि न जाने क्यो, कब और कैसे कम्मो मेरे लिए लाड-प्यार करनेवाली बडी बहन के बजाय एक छोटी-सी लडकी बन गयी थी—एक ऐसी लडकी जिसकी बदकिस्मती के कारण वह मोहल्ला और माहौल मैं आज तक नही भूल पाया गोकि मैं कब का वहाँ से फरार हो चुका हूँ।

चैम्पियनशिप जीतने के बाद कई दिन तक कॉलिज और यूनिवर्सिटी मे 'एक नया हीरो' मिल जाने की हलचल रही। एकाएक बहुत-से लोग मेरे बारे मे 'और कुछ' जानने के लिए उत्सुक हो उठे थे। मेरे लिए यह स्थिति एक नयी उलझन थी। एक तरफ तो मुझे उस नयी लोकप्रियता के रोमाच ने एक नया आत्मविश्वास दे दिया था और मेरे लिए बहुत-सी चीजों को आसान कर दिया था। लेकिन साथ ही एक बिल्कुल ही नये ढंग का अकेलापन मेरे चारो तरफ बिखर गया था। कॉलिज कैन्टीन, यूनीवर्सिटी के बस स्टॉप और इधर-उधर घूमते हुए कई बार लड़के-

लड़कियों के झुण्ड मुझे देखकर कानाफूसी करने लगते। उनकी दबी आवाज की बातचीत मे मुझे कई बार अपना नाम सुनायी पड़ता। कभी-कभी कोई लड़की मेरी तरफ इशारा करके अपने साथवाली लड़कियों का ध्यान मेरी तरफ खींचती। कई अनजान लड़के और लड़कियाँ बहुत ही खुले ढंग से मुझसे मिलकर मुबारकबाद भी देते। वह सब मुझे अच्छा तो लगता लेकिन आखिरकार उदास कर देता था। उन सब लोगों के लिए मैं अजायबघर मे किसी नये चीते की तरह था। उन्हे मेरे बारे मे सिर्फ उतना ही मालूम था जितना कि अमूमन आदमी को अलग-अलग किस्म के जंगली जानवरों के बारे मे मालूम होता है। अपनी जीत के पिंजरे मे बन्द मैं दरअसल उन लोगो के लिए एक 'एक्साइटमैण्ट'-भर था, सिवाय मेघना को छोड़कर।

ग्यारहवी क्लास के दौरान, पासवाले लड़कियों के स्कूल मे पढ़नेवाली जिस लड़की से मेरी दोस्ती हुई थी और जिसे उपन्यास पढ़ने का बेहद शौक था, उसका नाम मेघना था। स्कूल पास करने के बाद उसने मेरे साथ ही कॉलिज मे बी. ए. मे दाखिला लिया था। मैं क्योंकि साइन्स का विद्यार्थी था इसलिए हम दोनो ज्यादा तो नही मिल पाते थे लेकिन फिर भी स्कूल के दिनों की तुलना में हम लोग पहले से ज्यादा सहज होकर मिलते थे। मेघना के पिता विदेश विभाग मे एक बड़े अफसर थे। उसकी माँ का देहान्त कई साल पहले हो चुका था और वैसे भी मेघना अपने पिता से बहुत अटैच्ड थी। पढ़ने का शौक उसके पिता को भी बहुत था और शायद उन्ही के कारण मेघना मे धीरे-धीरे न सिर्फ साहित्य की खासी अच्छी समझ पैदा हो गयी थी बल्कि उसके व्यक्तित्व मे भी उसके कारण एक असाधारण-सा आकर्षण पैदा हो गया था।

सच लेकिन यह था कि शुरू से ही मुझे मेघना के व्यक्तित्व मे कुछ ऐसा नजर आया था जो रवि से बहुत कुछ मिलता था। ऊपरी तौर पर वह बहुत शोख शरारती और तेज-सी दिखनेवाली लड़की थी, और काफी खूबसूरत भी थी। अलबत्ता वह एक बहुत हल्की परत थी जिसके नीचे वह एक बेहद उदास, बहुत ज्यादा संवेदनशील और खामोश-सी लड़की थी। न जाने कितनी ही अच्छी किताबें मैंने सिर्फ उसके कारण पढ़ी थी। दो साल पहले जब मेरी पहली कहानी प्रकाशित हुई थी तो सबसे पहले मेघना ने ही मुझे मुबारकबाद दी थी। उसे सचमुच काफी आश्चर्य हुआ था कि मैंने अव्वल तो लिखना शुरू कर दिया था और दूसरे उसके ख्याल से वह कहानी 'पहली कहानी' होने के नाते बहुत अच्छी थी।

—चलो कुछ तो असर हुआ हमारी सोहबत का! उसने पहली बार इठलाते हुए मुझसे कहा था। हम लोग कश्मीरी गेट पर 'कार्लटन' में बैठे हुए थे।

—पुरानी कहावत है कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है! मैंने उसके खुशी से भरे छेड़छाड़ के खेल मे शामिल होते हुए जवाब दिया था।

—अच्छा जी! अब हम खरबूजा हो गये···, उसने उसी रंग मे कहा और फिर मेरी तरफ बड़े खास ढंग से देखते हुए बोली—शर्म नही आती एक खूबसूरत

लड़की को खरबूजा कहते हुए ? अब मैं नहीं पिलाती कॉफी ! और हम दोनों हँसने लगे थे।

उसी शाम फिर मेघना ने मुझे अपने पिता से मिलवाया था। उन्होंने भी मेरी कहानी पढ़ ली थी और यह कहना गलत नहीं होगा कि बाबा की उम्रवाले लोगों में वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने बाकायदा मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बिल्कुल बाप-वाली आवाज में कहा था—वेरी गुड आदित्य, इस उम्र में अगर तुम इतना अच्छा लिख सकते हो तो तुम्हें अब बहुत संजीदगी से लिखना चाहिए। मैं और मेघना कल रात काफी देर तक बात करते रहे तुम्हारी कहानी के बारे में।

घर के लोग कई बार वह सबकुछ नहीं दे पाते जो अनजान, राह-चलते अजनबी लोग जिन्दगी-भर के लिए साथ बाँध देते हैं। अक्सर मुझे लगा है कि दो हिस्सों में बँटी होती है जिन्दगी—एक वह जिसमें माँ-बाप, भाई-बहन और वह पूरा कबीला मौजूद होता है जो बहुत कुछ देता है लेकिन शायद इस अपेक्षा के साथ कि हम कबीले से बाहर नहीं जायेंगे और इसलिए अन्ततः बहुत कुछ हम कबीले को वापिस भी करेंगे—कम-से-कम इतना तो जरूर ही कि कबीला चलता रहे, उसके लोग जानवरों की तरह रहते हुए भी 'इन्सान' होने का भ्रम पाले रहें और दुनिया की दुकानदारी खत्म न हो जाये। दूसरा हिस्सा उन अजनबी, बाहरी लोगों का होता है जो कुछ देर के लिए मिलते हैं और उसी दौरान न जाने कितने छोटे-छोटे चमकीले पत्थर हमें एक तोहफे की तरह देकर हमेशा के लिए जिन्दगी से बाहर और बहुत दूर चले जाते हैं। धीरे-धीरे पता चलता है कि वो पत्थर हीरे-जवाहिरात बल्कि कहिए कि पारस पत्थर की तरह बेशकीमती हैं। कितने ही क्षण आते हैं जब आप उन खोये हुए लोगों को बहुत कुछ लौटाना चाहते हैं, उन्हें देना चाहते हैं। वे मौजूद नहीं होते। उनके लौटने की सम्भावना तक नहीं होती। और तब पता चलता है कि दुनिया की दुकानदारी खरीद-फरोख्त नकद वसूली से नहीं चलती—वह चलती है उधारी के एक बहुत लम्बे सिलसिले के जरिये जिसमें अक्सर होता यह है कि किसी का उधार आप किसी और को चुकाते हैं। आपका दिया हुआ कोई किसी और को देता है—

मेघना ही थी जिसने आखिरकार उस निर्जन सन्नाटे को तोड़ा था जिसमें अपनी जीत के बावजूद मैं स्तब्ध-सा खड़ा था। टूर्नामेन्ट के दौरान वह कॉलिज से छुट्टी लेकर जयपुर गयी हुई थी और फायनल के परिणाम के बारे में उसने अखबारों में ही देखा होगा क्योंकि अगले दिन ही उसका बधाई का तार मुझे मिला। उसके लगभग हफ्ते-भर बाद वह वापिस लौटी थी और कॉलिज में मिलते ही उसने ऐलान किया था कि मुझे हर हालत में उसे जीतने की पार्टी देनी होगी।

अगले दिन ही मैंने उसे वह पार्टी दी थी और वह दिन इस मायने में बहुत महत्त्वपूर्ण था कि उस रोज मेघना ने पहली बार मुझसे बहुत-से व्यक्तिगत सवाल पूछे थे और मैंने बहुत सहज ढंग से उसके प्रश्नों का उत्तर दिया था। मेघना ने मुझसे पहले ही कह दिया था कि वह किसी रेस्त्राँ में लंचवाली पार्टी नहीं लेगी

बल्कि हम लोग हो सका तो शहर से बाहर या फिर किसी ऐतिहासिक इमारत को देखने जायेंगे और औपचारिक पार्टी के बजाय एक छोटी-मोटी पिकनिक मनायेंगे। मेघना अपनी गाडी ले आयी थी और हम लोगो ने तरह-तरह की खाने-पीने की चीजें साथ रखकर फिर तय किया कि तुगलकाबाद जायेंगे। मेघना पहली लडकी थी जिसके साथ मैंने उस तरह से एक पूरा दिन बिताया था। शुरू से ही क्योंकि उसे यह बात बहुत दिलचस्प और अजीब लगती थी कि मैं साहित्य पढने और कहानियां लिखने के साथ ही टेनिस मे भी इतनी दिलचस्पी लेता हूँ इसलिए बात-चीत का सिलसिला वहीं से शुरू हुआ।

—चैम्पियन तो तुम हो गये लेकिन मेरा खयाल है कि अब तुम गये काम से! उसने कहा था।

—क्या मतलब?

—मतलब ये कि टेनिस के ग्लैमर के सामने साहित्य-वाहित्य कहाँ लगता है, उसने मुझे छेड़ते हुए कहा—हमने तो सुना है कि चैम्पियनशिप के साथ-साथ तुमने देबू की 'ब्यूटी ब्रिगेड' भी छीन ली है!

—लडकियाँ आम तौर से काफी समझदार होती हैं। बस जो जरा ज्यादा खूबसूरत होती हैं उनमे दिमाग कुछ कम होता है—ब्यूटी एण्ड ब्रेन्स का तो पुराना रोना है, मैं मुस्कराया।

—ऐसा? उसने तुनकते हुए कहा—ठहर जाओ मैं बताऊँगी तुम्हे आज कि ब्यूटी एण्ड ब्रेन्स का रोना कैसा होता है। सच्ची बहुत ही बेशर्म हो तुम तो यार···

—अब जैसा गानेवाला वैसा बजानेवाला। शर्म की तो गुंजाइश तुम वैसे भी कहाँ छोडती हो?

—ठीक है···बजाना तो हमें भी आता है, उसने मेरी तरफ देखकर बड़े मजेदार ढंग से गर्दन हिलाते हुए कहा—फिर देखेंगे कि क्या गाते हो तुम!

मेघना और रवि, इन दोनों ही के साथ मुझे अक्सर लगता कि हँसी-मजाक परिन्दों की बोलियों की तरह होते हैं। कुछ लोगो के बीच शब्द हँसी-मजाक के दौरान अर्थ नही बल्कि एक लय प्रदान करते हैं। और ऐसे लोग एक आदमी की जिन्दगी मे बहुत नही आते जो उसके कहे शब्दो मे और यहाँ तक कि उसकी जिन्दगी मे भी अर्थ के बजाय लय ढूँढते है।

शायद यही कारण रहा हो मेरे और मेघना के बीच उस एक खास अपनेपन के अहसास का जिसे मैं कभी-कभी किसी धुन की तरह गुनगुनाने-सा लगता था।

—मजाक नही आदित्य, कुछ देर बाद मेघना ने संजीदगी से कहा था—लेकिन मुझे सचमुच कभी-कभी लगता है कि तुम इन सब चीजों मे उलझकर कही लिखना न छोड़ बैठो।

—असली बात तो ये है मेघना कि इस स्टेज पर यह एक फालतू की फिक्र है, मैंने जवाब दिया था—दो-चार कहानियाँ लिख लेने से न कोई लेखक बनता है

और न कुछ भी करने या न करने से कोई लिखना छोड़ता है—अगर कि उसके पास वाकई कुछ है लिखने को और वह उसे लिखना चाहता है। और फिक्र करने के लिए तो वैसे भी चीजों की कोई कमी नहीं होती जिन्दगी मे। है न?

—हाँ, और कुछ देर के लिए फिर वह खामोश हो गयी थी।

तुगलक का मकबरा दिखायी देने लगा था। मेघना ने तब नये सिरे से बात-चीत शुरू करते हुए कहा था—एक बात कहूँ?

—क्या?

—चार साल हो गये न अब हम लोगों को मिले हुए? उसने जैसे अपने आप से ही वह सवाल पूछते हुए कहा—लेकिन तुम्हारे बारे में मुझे अभी तक कुछ नही मालूम।

मैं चुप रहा था।

—आदित्य! कुछ क्षणो बाद मेघना ने बहुत धीमी आवाज में मेरा नाम पुकारा था।

—हूँअअ···

—बहुत चीजें हैं न फिक्र करने को···तुम्हारे पास?

—है तो सही मेघना!

—क्या तुम घबराते हो उनसे?

—नही, घबराना काहे का···

—तो फिर···बताते क्यों नही मुझे उनके बारे मे?

—तुमने पूछा नही कभी इसलिए खयाल नही आया। वर्ना ऐसी कोई जासूसी कहानी नहीं है···, मैंने बातचीत को हल्का करने की कोशिश मे कहा था। दरअसल मेघना ने जिस तनहा आवाज में वो सब बातें पूछी थी, उनसे मुझ पर एक बेचैनी-सी सवार हो गयी थी—कुछ-कुछ उस तरह की बेचैनी जैसी कि मौसम की पहली बारिश होने से पहले फिजा मे पायी जाती है।

उस वक्त तो बात हँसी मे उड़ गयी थी लेकिन बाद मे जब हम तुगलक के मकबरे की उस इमारत में बैठे कॉफी पीते हुए न जाने क्या-क्या बाते कर रहे थे तो वही सब बातें किसी पुरानी इमारत मे रहनेवाले परिन्दों की तरह वापिस लौट आयी थी।

जिन्दगी मे न जाने कितने ही क्षण आते हैं जिनकी तस्वीरें कोई नही खीचता लेकिन फिर भी खाली वक्त के एलबम मे न जाने कौन उन्हे लगा देता है। उस दिन की जो तस्वीर है उसमे उस इमारत के एक कोने मे मेघना मेरी गोदी मे अपने बेहद लम्बे-लम्बे रेशमी बाल खोले, सिर टिकाये लेटी है। रह-रहकर वह मुझसे कितने ही सवाल पूछती गयी थी और मेरे भीतर से कोई उनका जवाब देता गया था।

एक और तस्वीर भी है उस दिन की जिसका रंग वक्त के साथ-साथ कुछ भूरा-सा जरूर हो गया है लेकिन सबकुछ उसमे उसी तरह है जैसे उस शाम था—जब हम तुगलक के उस मकबरे से वापिस लौट रहे थे। चलने से पहले सीढ़ियों

पर मेघना रुक गयी थी। सूरज डूब रहा था। सारी इमारत उस आग की-सी रोशनी मे नहा गयी थी। मेघना का गोरा रंग भी दहकने-सा लगा था। मेरे सामने खडे होकर उसने मेरी आंखो में देखते हुए कहा था—आज का दिन और ये सब बातें···हम भूलेंगे नहीं न आदित्य ?

—नही···

और फिर वह मुझसे चिपट गयी थी। मैं उसके बालो को सहलाता रहा था और हम दोनो तब तक उसी तरह खडे रहे थे जब तक कि सूरज डूब नहीं गया।

बाद में अलबत्ता यह मुझे खुद बहुत आश्चर्यजनक लगा था कि उस तरह की घुलती हुई सांसों और बातो से भरा एक पूरा दिन मेघना के साथ गुजारने के बाद भी मैं थोड़ा चौंका तो जरूर था लेकिन भीतर खड़ा वह बरगद और उसकी बे-गिनती शाखें उसी तरह एक सन्नाटे मे चुपचाप खडी रही थी। देखा जाये तो मेघना मेरी जिन्दगी मे पहली लड़की थी जो मेरी हमउम्र भी थी, खूबसूरत भी और हर तरह से एक ऐसी लड़की थी जिसकी मुझ जैसे किसी लड़के को तलाश हो सकती थी। लेकिन होता शायद यह है कि जिन्दगी में कुछ लोग न जाने कब चुप-चाप आकर कही आस-पास खड़े हो जाते हैं और हर बार मुसीबत, परेशानी या कमजोरी के क्षणो में सिर्फ वही होते हैं जो बिना कुछ कहे, बिना किसी कारण या अपेक्षा के किसी फरिश्ते की तरह सबकुछ सम्भाल लेते हैं। यह दूसरी बात है कि फरिश्ते आदमी को उस तरह से कभी झकझोरते नही जैसे कि आंधी, तूफान या उनकी तरह कोई और।

उन्ही दिनो फिर अदिति की एक चिट्ठी मुझे मिली थी। मैच जीतने के लगभग दस दिन बाद। वही गन्ध और वही आंधी उस लिफाफे में बन्द थी जिसे खोलते ही सबकुछ फिर बिखर गया था या सिमट गया था—मैं नही कह सकता। सादे, सफेद कागज पर मोतियों जैसे अक्षर जड़े हुए थे—

प्रिय आदित्य,

तुम तो सचमुच 'स्टार' ही बन गये। तुम्हारे चैम्पियनशिप जीतने की खबर करीब हफ्ता-भर पहले अखबार मे पढ़ी थी। अगर तुमने पहले बताया होता तो मैच भी देखने को मिल जाता और तुम्हे बधाई भी उस वक्त देते जब तुम्हे अच्छा लगता। वह हुआ नही। फिर लगता रहा कि तुम मिलने तो आओगे—तब दे दूंगी बधाई। वो भी नही हुआ। अब सोचा कि चिट्ठी ही लिख दूं। कॉन्ग्रेचूलेशन्स ! मुझे तो पता ही नही था कि तुम इतनी अच्छी टेनिस खेलते हो। सच मे बहुत अच्छा लगा अखबार में वह खबर पढ़कर। आजकल तो खैर तुम बिजी होगे—एक तो कहानी लेखक, ऊपर से टेनिस स्टार! यूनिवर्सिटी की लड़कियाँ भला कहाँ छोड़ेंगी तुम्हे। खैर, जब छूट जाओ और मन हो तो मिलना—बहुत दिन हो गये। स्नेह,

अदिति।

उस खत को न सिर्फ मैंने कई बार पढा ही था बल्कि जैसे अदिति की आवाज में सुना भी था और मेरे कानों मे गूँजती हुई वह आवाज मुझे बहुत उदास-सी लगी थी। क्या उम्र होती है वह कि जब आदमी जिन्दगी के हरे-भरे जंगल मे अपनी पूरी ताकत, सारे आत्मविश्वास, और अक्ल और अहसास से भरे दिलो-दिमाग के बावजूद सिर्फ तसल्ली के लिए भटकता रहता है। यह तसल्ली कि कोई और भी उसे ढूंढ रहा है। और विडम्बना यह होती है कि ढूंढनेवाले से वह बचता ही फिरता है।

अदिति से मिले मुझे अब लगभग आठ महीने हो चुके थे। आखिरी बार मैंने उन्हे उस रात उस दूतावास की पार्टी मे देखा था। मिसेज रॉड्रिग्स से बात करते हुए जब उन्होंने पीछे से मेरे कन्धे पर हाथ रखकर पूछा था—कहाँ थे जी तुम? तो मैं कुछ भी नही बोल पाया था। उन्हे अचानक अपने सामने उसी सहज रूप मे देखकर मेरे भीतर एक अजीब घटना हुई थी। अचानक मैं अपने आपको अकेला छोड़कर कही भाग गया था। और पीछे छूटा हुआ अकेला, कमजोर और बुरी तरह से बौखलाया हुआ मैं, शायद उनसे कुछ भी नही छुपा सका था क्योंकि मेरे चेहरे पर वह सबकुछ कांटो की तरह उग आया होगा जो उस दिन से मेरे भीतर किसी नम-सी जमीन मे बीजो की तरह दबा पड़ा था, जब मैंने अपनी डायरी मे उनके बारे मे कुछ लिखना चाहा था। अदिति ने मुझसे दो-तीन बार अलग-अलग तरह से पूछा था—क्या बात है आदित्य? क्या हुआ? तुम्हारी तबियत तो ठीक है न?

उनके आखिरी सवाल के जवाब मे मैंने धीरे-से कहा था—हाँ!

उसी वक्त एक विदेशी जोड़ा हम लोगो के पास आ गया था और अदिति उनसे बातें करने लगी थी। मिसेज रॉड्रिग्स मौका देखते ही मुझ पर झपट पड़ी थी।

उस दिन के बाद मैंने कई बार सोचा कि अदिति के पास जाकर कम-से-कम अपने उस रूखे व्यवहार और किसी हद तक बदतमीजी के लिए तो माफी माँग लूं। लेकिन हर बार मैं अपने आपको अपना वह फैसला याद दिलाता जो मैंने उस दिन रोडवेज के बस-स्टैण्डवाले लॉन से उठते वक्त किया था। हफ्तो मैं अपने उस फैसले पर कायम रहा था—हमेशा अपने आपको यह समझाते हुए कि अदिति की दुनिया किसी दूसरे ही नक्षत्र मे थी। मेरे लिए उनका अस्तित्व रात को आसमान मे चमकनेवाले किसी तारे की तरह था जो सूरज निकलते ही गायब हो जाता था। कुछ भी ऐसा नहीं था जिसके सहारे हम दोनो थोडा-बहुत भी नजदीक आ सकते थे। मुझे जो भ्रम हुआ था वह उसी तरह का था जैसे कि क्षितिज पर जमीन और आसमान के बारे मे होता है।

धीरे-धीरे सबकुछ पानी मे घुली रेत की तरह सतह पर बैठता जा रहा था और बावजूद अपने आपको उथला महसूस करने के मैं पूरी कोशिश करता रहा था अपने आस-पास के बहाव मे शामिल होने की। और तब रवि ने मुझे वह सबकुछ बताया था अदिति और सुधीर के सम्बन्धो के बारे मे।

और कुछ जो भी रहा हो लेकिन मुझे मानना होगा कि उस जानकारी ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर मेरे निम्न मध्यवर्गीय संस्कारों को बिल्कुल चकनाचूर कर दिया था। यह बात कि अदिति और सुधीर जैसे लोग बिना शादी किये भी पति-पत्नी की तरह इतने सहज ढंग से उसी समाज में रह सकते थे जिसमें कम्मो जैसी नादान लड़की की शादी सिर्फ इसलिए नहीं हो पा रही थी कि उसका चाल-चलन खराब था—मेरे चारों तरफ शीशों के टुकड़ों की तरह बिछ गयी थी। कम्मो की बात अगर छोड़ भी दी जाये तो भी यह एक ऐसा सच था जिसने मुझे भीतर गहरे तक झकझोर दिया था। नैतिक-अनैतिक जैसे शब्द तो उस उम्र में रंगीन पत्रिकाओं में छपनेवाले तरह-तरह के विज्ञापनों की तरह होते हैं जिन्हें देखकर खरीदा तो बहुत कुछ जा सकता है लेकिन विश्वास करने के लिए सिवाय बरसों की आजमाइश के और कोई चारा नहीं होता। दरअसल उस बात ने तब तक बने मेरे सारे जीवन-मूल्यों, आस्थाओं और अपेक्षाओं का अचानक इस तरह से बिखरा दिया था जैसे भूचाल के बाद किसी मकान का मलबा। रह-रहकर मुझे कुछ-न-कुछ ऐसा मिल जाता जो इतनी बुरी तरह से टूट चुका होता कि मैं उसे पहचानने की कोशिश में उसका अफसोस तक भूल जाता। सबसे बुरी तरह जो चीज टूटी थी—वह थी अदिति की वह संगमरमर की-सी मूर्ति जिसे मैं पता नहीं क्यों हमेशा जिन्दा समझता आया था। यह ठीक है कि सुधीर की पत्नी के रूप में उनकी उपस्थिति ने हमेशा ही मुझे सिवाय उदास और हताश करने के कुछ नहीं किया था। लेकिन उस सम्बन्ध को फिर भी अन्ततः मैंने स्वीकार कर लिया था। किसी कम उम्र जंगली जानवर की तरह मैं उस काँटेदार बाड़ से लहू-लुहान होकर कब का वापिस लौट आया था जो उस सीमा पर लगी हुई थी जिसके दूसरी तरफ अदिति और सुधीर मेहता एक आदर्श पति-पत्नी के रूप में रहते थे। लेकिन यह कि अदिति बिना शादी किये सुधीर के साथ रह रही थी—जंगल की आग की तरह मेरे भीतर न जाने कहाँ-कहाँ तक फैलता और सब कुछ जलाता चला जा रहा था। महीनों लगे थे मुझे उस आग को बुझाने में और मैं कुछ इस तरह से झुलस गया था उस कोशिश में कि फिर मुझे अदिति से एक डर-सा लगने लगा था। डर नहीं बल्कि और भी भयावह था वह अहसास।

तब तो तब मैं वैसे आज तक यह नहीं समझ पाया कि एक तरफ तो अधिकतर सम्बन्धों में हम तभी तक दूसरे व्यक्ति में दिलचस्पी लेते हैं जब तक कि वह हमारे भीतर अपने प्रति किसी-न-किसी प्रकार की उत्सुकता जगाये रह सकता है। और दूसरी तरफ हम कभी इस बात को बर्दाश्त नहीं कर पाते कि दूसरे व्यक्ति का एक हिस्सा ऐसा भी है जिसके बारे में हम कुछ नहीं जानते।

बहरहाल उस पार्टी के बाद अभी तक मैं अदिति से नहीं मिला था। और शायद उन्हीं के कारण सुधीर मेहता से भी मेरा मिलना फिर काफी कम होने लगा। इस बीच उन्होंने अपनी पत्रिका में मेरी दो कहानियाँ छापी थीं और उनकी बहुत तारीफ भी की थी। न सिर्फ यह बल्कि उन्होंने मुझे इस बीच दो और महत्वपूर्ण

लेखकों से मिलवाया था जो उनके बहुत अच्छे दोस्त भी थे। उन लोगो को उन्होंने मेरी कहानियाँ भी पढ़ने के लिए दी थी और उन्होंने भी उनकी खासी तारीफ की थी। देखा जाये तो मेरे पास ऐसा कोई कारण नही था कि मैं उनसे मिलना कम करता। यह बात दूसरी थी कि उनके साथ बातचीत के दौरान मुझे अक्सर बड़ी उलझन होती थी। न सिर्फ सुधीर बल्कि उनके दोनों दोस्त भी साहित्य के सन्दर्भ मे बात शुरू करते ही जैसे अपनी-अपनी ऐनक पहन लेते थे और उसके कारण या तो उन्हें सिर्फ अपने पास की चीजें साफ दिखायी देती थी या बहुत दूर की। जिस माहौल मे हम बैठे बातें कर रहे होते वह मुझे फिर श्मशान की तरह खामोश और निर्जन लगता जिसमें मैं अकेला बैठा जैसे बैताल कथाएँ-सी सुनता रहता। लेकिन यह भी सच है कि सुधीर अपने ढंग से मेरा बहुत ख्याल करते थे और अपने व्यक्तित्व की सारी सीमाओ के बावजूद मुझे हमेशा पढ़ने-लिखने के लिए उत्साहित करते रहते थे। कई बार वो मुझे घर बुलाते जहाँ अक्सर उनके दोस्तो के साथ लम्बी-लम्बी बैठकें होती थी। लेकिन अधिकतर मैं यह सोचकर टाल जाता कि वहाँ अदिति भी होगी।

उनकी चिट्ठी का वह आखिरी वाक्य फिर बारिश की आवाज की तरह चारो तरफ छा गया था—'बहुत दिन हो गये'। सचमुच बहुत, बहुत दिन हो चुके थे। मैं अपने आपको इस पूरी मुद्दत के दौरान हर दिन यकीन दिलाता रहा था कि मैं अदिति को भूलता जा रहा हूँ, उनसे दूर होता जा रहा हूँ, उनके साथ मेरा किसी भी तरह का सम्बन्ध सम्भव नही, मेरी जिन्दगी कुछ और है, हम दोनों उम्र के दो अलग-अलग सिरो पर खड़े है और उन दो सिरो के बीच मेरे सामने बहुत कुछ ऐसा है जिसे उलाँघना न तो शायद सम्भव ही है और न ही उसकी जरूरत है। उम्र के पहिये मे सम्बन्ध ही तो सबकुछ नही होते—उसके घूमने का तो पूरा एक विधान है जिसमे आदमी को व्यक्तिगत और सामाजिक जिन्दगी की कितनी ही महत्त्वपूर्ण स्थितियाँ और भूमिकाएँ सुनिश्चित हैं। उन्हे आखिर कैसे बदला जा सकता है? और क्या उम्र के उस पहिये को कोई रोक सकता है? मेरे मन में उठते सब सवालो का जवाब मेरे सामने मौजूद था और मैं यह भी जानता था कि उनके परे मेरे कुछ भी सोचने या महसूस करने का कोई अर्थ नही था। लेकिन उस चिट्ठी और उसके अन्तिम वाक्य ने देखते-ही-देखते उस बारिश को एक तूफान मे बदल दिया। भीतर के उस बरगद की शाखें एक-दूसरे पर ही वार करने लगी। कोड़े-से बरसते रहे मेरे उस अकेले, कमजोर और बौखलाये हुए 'मैं' के ऊपर जो अदिति से मिलना चाहता था, उनके बहुत पास जाना चाहता था। वह रात मेरे लिए बहुत मुश्किल साबित हुई थी।

दो-तीन दिन उसी तरह से गुजरे थे। मैं कुछ भी तय नही कर पा रहा था। जैसे ही मैं अदिति से मिलने की सोचता, मुझे लगता कि वह बहुत जबर्दस्त भूल होगी। जब इतने महीनों मैं उनसे दूर रहा था तो मुझे अपने आप पर थोड़ा काबू और रखना चाहिए क्योंकि हो सकता है फिर मैं सचमुच ही उनसे बहुत दूर चला

जाऊँगा। मुझे लगता कि मेघना की उपस्थिति मुझे जिन्दगी के सामान्य बहाव मे खीच लेगी बशर्ते कि मैं बस इस एक बार अपने आप को किसी तरह बाँध लूं। फिर मैं सोचता कि चलो मिलूँगा नही, लेकिन उनकी चिट्ठी का जवाब तो मुझे देना ही चाहिए। सामान्य शिष्टाचार भी तो कोई चीज होती है। और फिर अदिति की इसमे आखिर कौन-सी गलती थी। अपनी जिन्दगी अपने मनचाहे ढंग से जीने का तो हरेक को अधिकार है। और यह सब अनर्गल बातें तो मैं सोचता रहता हूँ उनके बारे मे। उन्हें तो अन्दाजा भी नही होगा मेरी इस मन:स्थिति का। उन्हे अगर पता चल जाये कि मैं इन सब फिजूल की बातो से घिरा बैठा हूँ तो शायद वे मुझसे बात भी करना पसन्द न करें। उनके लिए तो इस तरह की बातें कल्पनातीत होगी। वो तो बस सहज ढग से मुझसे मिलती-भर रही है और सिर्फ उसी के आधार पर मैं यह सब बकवास अपने आपसे कर रहा हूँ। क्या सोचेगी वो? यही न कि मैं लाख कोशिश करता रहूँ सभ्य, सुसंस्कृत और बेहतर बनने की, आखिर रहता तो मैं उसी मोहल्ले मे हूँ। कहानी लिख लेने या टैनिस चैम्पियन बन जाने से मेरी मानसिकता तो नही बदल सकती—वह मानसिकता जो गन्दी नाली के कीड़े की तरह हर चीज को खाने लपकती है।

वह चिट्ठी भी अन्ततः मैं उन्हे नही लिख पाया। उसकी जगह, मैंने सोचा, कि मैं अपनी डायरी मे उन्हें वह चिट्ठी लिखूंगा जो उन तक कभी नही पहुँचेगी। अगले कुछ दिन फिर मैं उसी खत के बारे मे सोचता रहा जो मुझे लिखना था।

उस रोज कोई छुट्टी थी और उससे पिछली रात मैंने तय किया था कि अगली सुबह मैं डायरी मे वह खत लिखूंगा। लेकिन अगली सुबह रवि घर आ गया था। रवि के घर आने का मतलब वैसे ही काफी बड़ा हंगामा होता था। अम्मा और बाबा शुरू से ही उससे इतना प्यार करते थे कि स्कूल के दिनों मे मुझे कई बार वह बहुत अजीब लगता था। थोड़ा बड़ा होने पर मुझे समझ में आया कि बात दरअसल उल्टी थी। रवि अम्माँ और बाबा का इतना ख्याल रखता था कि मैं भी नही रख पाता था। मेरी गैरमौजूदगी मे वह न जाने कब-कब आकर खा-पीकर, दुनिया-भर की बातें करके और घर के छोटे-मोटे काम निबटाकर चला जाता था मुझे मालूम ही नही पड़ता था। जिन दिनो उसने टूरिस्ट गाइड का काम नियमित रूप से किया था उन दिनो वह जब भी कही बाहर जाता अम्माँ और बाबा के लिए हमेशा कुछ-न-कुछ लाता था।

सुबह के वक्त रवि के घर आने का मतलब होता था कि अम्माँ और बाबा उसे अलग-अलग नाश्ता कराते थे। अम्माँ उसके लिए प्याज-हरी मिर्च और अजवाइन-वाली पानी के हाथ की मिस्सी रोटी बनाती थी जिसमे फिर चाकू से गोद-गोदकर घी भरा जाता था। रवि उस रोटी के पीछे पागल रहता था। अम्माँ के पास अँगीठी के बराबर बैठे हुए वह उसे खूब अच्छी तरह सिकवाता था। अम्माँ कहती जाती—बस बेटा, फिर जल जायेगी···और रवि कहता रहता—बस थोडी और अम्माँ···

इस जिन्दगी मे मैं अपने-आपको कभी नही ढाल पाऊँगा। इतनी सजी-सजायी जिन्दगी तो सिर्फ उन्ही लोगो की हो सकती है जिनके पास कुछ करने के लिए है ही नहीं। या फिर उनकी जो किसी और दुनिया मे रहते हैं। मैं तो कुछ और तलाश रहा था—शायद एक ऐसी जिन्दगी जो साफ-सुथरी-भर हो, कुछ सुविधाएँ भी जिसमे हों और बहुत-सा वक्त हो जिसमें मैं कुछ सोच सकूँ और कर सकूँ···

पहली बार मेरा ध्यान माहौल मे बहते हुए धीमे-धीमे प्यानो के स्वरों पर गया। विदेशी संगीत के बारे मे मेरी जानकारी अभी तक बस फिल्मी और पॉप संगीत तक ही सीमित थी। इस तरह का संगीत बस कभी-कभी कुछ फिल्मो मे नेपथ्य मे मैंने बजते सुना था और वह मुझे हमेशा बहुत अच्छा लगता था। एक सीमित समय मे, बिना लय या ताल के दबाव मे अलसाये-से स्वरों की एक अपनी अलग चाल जो बीच-बीच में किसी लय की तलाश में खो-से जाते थे। असल में जिन्दगी भी मैं कुछ-कुछ उसी तरह की चाहता था···

अलबत्ता जिस बात से मुझे हैरत होती थी वह यह थी कि हम दोनो की जिन्दगी मे इतना कुछ एक-सा होते हुए भी रवि को सारे समय इसी दुनिया और माहौल की तलाश रही थी। वह ठीक इसी जगह पहुँचना चाहता था। यह बात पिछले सालों के दौरान न जाने उसने कितनी ही बार घुमा-फिराकर कही थी। होटल मैनेजमैण्ट कोर्स का डिप्लोमा मिलने के बाद उसने एक दिन मुझसे कहा था —अब तैयार हूँ मैं बिल्कुल, गुड्डू! ऑल सैट फॉर द टेक ऑफ! प्यारे सेनापति अब तुम लिस्ट बनानी शुरू कर दो। सिर्फ चार साल बचे हैं अब दशहरा मनाने में···, और हम दोनो हमेशा की तरह उस बात पर पागलों की तरह हँसते रहे थे।

दशहरेवाली बात हम लोगो के बीच एक पुराना लतीफा था। हम लोग तब शायद आठवी या नवी क्लास मे थे। दशहरे के कई दिन पहले से रोजाना निकलने-वाली रामलीला की सवारी हम लोग बचपन से ही देखते आये थे और तब तक वह दिलचस्पी खत्म नही हुई थी। उस सवारी में हम लोगों के लिए बहुत-से आकर्षण होते थे मसलन झाँकियो के आगे-आगे निकलनेवाले मशहूर अखाड़े जो लाठी चलाने से लेकर तलवारबाजी तक के एक-से-एक करतब दिखाते थे। उसके बाद फिर शहर के सब मशहूर बैण्डवालो की टोलियाँ होती थी जो हर चौराहे पर अपने सबसे बढ़िया तैयार किये हुए फिल्मी गानो की धुनें बजाते थे। रवि के लिए एक खास आकर्षण अपनी हमउम्र लड़कियाँ भी होती थी जो आसपास के छज्जों पर खड़ी सवारी देखती होती थी। लेकिन सबसे बड़ा आकर्षण हम लोगों के लिए यह होता था कि हमारे ही स्कूल का एक लड़का पिछले दो-तीन साल से रामलीला मे राम बनता था। रवि को वह बात बहुत दिलचस्प लगती थी। रामलीला के दिनों के अलावा भी रवि उसके बारे में बात करते हुए उसे बजाय उसके नाम से पुकारने के, रामचन्द्रजी ही कहता था। कई बार हम लोग जब स्कूल के बाहर

निकलते तो वह लडका अक्सर सोडेवाले के ठेले के पास खडा सोडा पीते नजर आता। रवि उससे बहुत मजेदार ढग से पूछता—क्यो रामचन्द्रजी, सोडा पी रहे हो—यार कुछ तो शर्म करो!

दशहरे के दिन रामलीला की सवारी बहुत देर से निकलती थी क्योंकि सारे रास्ते पूजा-पाठ पर जोर रहता था। उस बार दशहरे के दिन हम लोग सवारी के इन्तजार में नीचे चौराहे की भीड़-भाड़ से कुछ अलग खडे न जाने क्या बात कर रहे थे कि रवि अपने खास ढंग से मुस्कराते हुए बोला था—वैसे तो आइडिया अच्छा है यार गुड्डू कि दशहरे के दिन तो सारी दुनिया रामचन्द्रजी की पूजा करती है, बाद मे बिचारे कन्हैया के ठेले पर खडे सोडा पीते रहते है—

कुछ क्षणों तक हम लोग हँसते रहे लेकिन उसके बाद जब रवि बोला तो उसकी आवाज सिमट-सी गयी थी—अपन लोगों को भी यही करना चाहिए। कितने साल वन मे रहे थे रामचन्द्रजी?

—चौदह।

—और अपन लोगों को हो गये''', उसने चौथी क्लास से हिसाब लगाना शुरू किया और बोला—पाँच साल! यानी अभी नौ साल बाकी है, और वह चुप हो गया।

—खैर कोई बात नही, कुछ देर बाद वह अपने-आप ही बोला था और उसके चेहरे पर वह चुलबुली मुस्कराहट वापिस आ गयी थी—नौ साल के अन्दर-अन्दर हम लोगों को सबकुछ कर लेना है। कार, बंगला, एअर कण्डीशनर, कार्पेट्स, छोकरी और जो भी और चाहिए होता है—उसके बाद फिर हम दशहरे की पार्टी देंगे और खूब पटाखे चलायेंगे उस दिन। बस रामलीला खत्म उसके बाद! जहाँ मर्जी हो खड़े होके सोडा पियो!

हँसते-हँसते हम लोगो का बुरा हाल हो गया था। उस बात को अब लगभग पाँच साल हो चुके थे। वह मजाक हम लोगों के बीच कई बार हुआ था लेकिन मैं यह भी जानता था कि रवि को उस दिन का न सिर्फ संजीदगी से इन्तजार था बल्कि वह इस सारे दौरान बहुत तेज कदमों से बढता रहा था। स्कूल छोडने के बाद, खास तौर पर टूरिस्ट गाइड का काम करके वह अच्छे-खासे पैसे कमाता रहा था। फिजूलखर्च वह कम नही था लेकिन उसके बावजूद वह अपनी जरूरत और पसन्द की चीजें खरीदता रहता था। पिछले ही दिनो उसने एक मोटर साइकिल खरीदी थी जो अब तक की चीजों मे उसकी सबसे बडी खरीद थी। नौकरी लगते ही उसने करौलबाग मे दो कमरो का एक साफ-सुथरा मकान किराये पर ले लिया था और उसमे भी धीरे-धीरे जरूरत की सब चीजें इकट्ठी कर ली थी।

चीजो को खरीदने का वह अन्दाज मैंने आज तक किसी रईस आदमी मे भी नही देखा। जिस चीज की उसे जरूरत होती उसके बारे मे उसे सबकुछ मालूम रहता। दुकान पर पहुँचकर वह दुकानदार से उन सब बातो का हवाला देते हुए उसके बारे में पूछता। यदि दुकानदार [illegible] सामने रख देता तो उस पर एक

लापरवाह-सी नजर डालते हुए वह कहता, पैक कर दीजिए और ये पैसे लीजिए ", और वह कीमत के अन्दाज से सौ-सौ रुपये के नोट निकालकर दुकानदार को दे देता। बिना कीमत पूछे, बड़े-बड़े नोटों के द्वारा भुगतान करने की उसकी वह अदा दुकानदार को नये सिरे से बाअदब कर देती थी। दूसरा नतीजा इसका यह होता था कि रवि यदि दोबारा कभी उस दुकान पर पहुँच जाता तो दुकानदार सब काम और ग्राहकों को छोड़कर बड़ी गर्मजोशी से उसकी तरफ दौड़ता था।

कभी-कभी मुझे लगता है कि बचपन के उन कच्चे दिनो मे कभी-कभी कोई चीज जिन्दगी-भर के लिए इस तरह से बदल जाती है कि बाद मे यह सम्भव ही नही होता पहचानना कि आखिरकार वह कौन-सी चीज थी, कौन-सी बात थी जिसने पूरी जिन्दगी बदलकर रख दी। बड़े होकर उसके बारे मे हम अपनी समझ और दिमाग के सहारे अन्दाजे लगाते हैं, अधूरेपन की चादर को झूठ और सच्चाई के ताने-बाने से किसी तरह बुन लेते हैं और फिर आखिर तक उस चादर को ओढ़े रहते हैं। और जो लोग किसी भी स्तर पर थोड़ा मशहूर हो जाते हैं उनकी तो लाश पर भी वही चादर डाल दी जाती है और इस तरह हमेशा-हमेशा के लिए वह एक सच्चाई दुनिया से खो जाती है जो शायद अगर मालूम पड जाती तो न सही दुनिया लेकिन बहुत कुछ बदला जा सकता था उसके कारण। मैं दरवाजे के ठीक सामने पड़नेवाली टेबुल पर बैठा था और इसलिए रवि दूर से आता दिखायी पड़ गया। उसकी चाल मे वह फुर्तीला उछाल-सा नही था जो उसके व्यक्तित्व को बेहद आकर्षक बना देता था। कुछ पास आने पर मैंने देखा कि उसके चेहरे का रंग भी बदला हुआ था। हताशा के पीलेपन के बजाय उसमे गुस्से की सुर्खी घुली हुई थी। टेबुल के पास आकर उसने मेरे सामनेवाली कुर्सी खींची और उस पर बैठते ही उसके मुँह से निकला—द सन ऑव अ बिच!

—क्या हो गया? मैंने धीरे-से पूछा।

उसने मेज पर रक्खे पानी के गिलास को कुछ ही घूँटो मे खाली कर दिया और फिर एक सिगरेट जलाते हुए अपनी आवाज को कुछ संयत करते हुए बोला—साले समझते हैं कि नौकरी नही भीख माँगने निकला हूँ मैं— बास्टर्ड!

यह गाली रवि बहुत कम देता था और उसका मतलब होता था कि वाकई उसका गुस्सा उसके काबू से बाहर होता था।

—लेकिन खैर'''साले को अक्ल तो आ गयी आज, कुछ देर बाद वह अपने-आप ही बोला और फिर कुर्सी के पिछले हिस्से पर अपना सिर टिकाकर, आँखें मूँदकर खामोशी से सिगरेट के कश लेता रहा।

मैंने भी कुछ नही कहा। उसी बीच वेटर आ गया और मैंने फिर से कॉफी आर्डर कर दी।

सिगरेट बुझाने के लिए वह आखिरकार सीधा हुआ और फिर मेज के ऊपर अपनी कोहनियाँ टिकाकर बैठ गया। उसके चेहरे की रंगत अब लौट आयी थी। काफी इत्मीनान से फिर उसने मुझे पूरे इण्टरव्यू के बारे मे बताया।

इण्टरव्यू लेने तीन लोग बैठे थे जिसमे एक महिला भी थी। एक और बुजुर्ग-से सज्जन उस बड़ी-सी मेज से थोड़ा हटकर बैठे सारे वक्त चुपचाप अपना सिगार पीते रहे थे। मेज के सिरे पर बैठी उस महिला ने सबसे पहले रवि के सर्टीफिकेट्स इत्यादि देखे थे और बहुत अच्छे ढंग से उससे कुछ सवाल पूछे थे और बीच-बीच मे कई बार 'वैरी गुड' भी कहा था। उसके बाद दूसरे सिरे पर बैठे आदमी ने उससे 'रिसैप्शन' से सम्बन्धित कुछ तकनीकी सवाल पूछे थे जिनका रवि ने बहुत आत्म-विश्वास के साथ जवाब दिया था। सिगारवाले बुजुर्ग उस सारे दौरान रवि को बहुत ध्यान से देखते रहे थे। रवि को लगने लगा था कि इण्टरव्यू बहुत अच्छा जा रहा था और उसे यकीनन वह नौकरी मिल जायेगी कि तभी बीच में बैठे हुए उस आदमी ने सारी बात बदल दी थी। बड़े खास ढंग से मुस्कराते हुए वह काफी अच्छी अंग्रेजी में बोला था-–मान लीजिए मिस्टर कुमार, हम आपको यह नौकरी दे देते हैं और साल-दो साल आप उस पर टिके भी रहते हैं। लेकिन उसके बाद अगर कोई दूसरा होटल आपको ज्यादा तनख्वाह देकर बुलाना चाहे तो आप क्या करेंगे ?

रवि ने अपने खास अन्दाज मे कन्धे उचकाते हुए बिना सोचे ही कहा था—जाहिर है कि मैं चला जाऊँगा।

—तो फिर अब आप ही बताइए कि हम ये नौकरी आपको क्यो दे दें ? उसकी वह मुस्कराहट एक मजाक उड़ानेवाली हँसी मे बदल गयी थी और कमरे में सन्नाटा छा गया था।

बकौल रवि के उसने उसी क्षण यह तय कर लिया था कि उसे यह नौकरी नही चाहिए। अपने आपको साधकर फिर उसने उस आदमी की उस हँसी को अचानक अपनी मुस्कराहट से जैसे काटते हुए कहा था—मेरा ख्याल है इण्टरव्यू अब खत्म हो चुका है। अगर आप इजाजत दें तो मैं आपसे एक सवाल पूछना चाहता हूँ।

—अरे वाह ! मैं तो समझा था कि इण्टरव्यू देने आप आये हैं, उसने हँसते हुए जवाब दिया था—खैर पूछिए ?

—मिस्टर···जो भी आपका नाम है···आप तो इस होटल मे बहुत दिनों से काम कर रहे हैं न ? रवि ने एक बिलकुल ही दूसरे अन्दाज, दूसरे ढंग की अंग्रेजी और पैनी आँखो से उस आदमी को देखते हुए पूछा था।

—जी हाँ···चार साल से, उसकी हँसी गायब हो गयी थी और उसकी जगह वही पहलेवाली मुस्कराहट आ गयी थी—मैं यहाँ का डिप्टी जनरल मैनेजर हूँ—आपकी जानकारी के लिए। और मेरी तनख्वाह लगभग सात हजार रुपये महीना है।

—जानकारी के लिए शुक्रिया, रवि की मुस्कराहट ने आखिरी छलाँग मारी थी—लेकिन अगर मैं आपको अभी और इसी वक्त दस हजार रुपये महीने का ऑफ़र दूँ तो आपका क्या जवाब होगा ?

न सिर्फ वह मुस्कराहट उसके चेहरे से गायब हो गयी थी बल्कि गुस्से में तमतमाता हुआ वह आदमी अपनी कुर्सी से खड़ा हो गया था—लेकिन···मेरा खयाल है मिस्टर कुमार, उसने एक-एक शब्द चबाते हुए कहा था—कि आप यहाँ नौकरी ढूंढने आये थे, देने नहीं···

सिगार पीता हुआ वह बूढ़ा आदमी उसी दौरान मुस्कराते हुए उठा था और चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया था।

—वह महत्त्वपूर्ण नहीं है, रवि ने उसी इत्मीनान से कहा था—मुझे आपके जवाब में दिलचस्पी है और अगर आप जवाब न देना चाहें तो यह आपकी मर्जी है।

—मिस्टर कुमार···उसने दहाड़ते हुए कहा था—इसके पहले कि मैं आपसे बाहर जाने के लिए कहूँ आपके सवाल का जवाब मैं दिये देता हूँ—मैं नहीं जाऊँगा। और आप अब जा सकते हैं।

—थैंक्यू मिस्टर डिप्टी जनरल मैनेजर, रवि ने उठते हुए कहा था—लेकिन इसका मतलब यह होगा कि आप एक निकम्मे कर्मचारी हैं। गुड बाइ! और वह कमरे से बाहर निकल आया था।

कॉफी आ गयी थी। रवि ने दोनों प्यालों को भरते हुए मुस्कराकर कहा—स्साला भूलेगा नहीं जिन्दगी-भर। तेरी कसम, उसे देखकर आज बहुत दिनों बाद यतीमखाने की याद आ गयी। साले को वहीं छोड़ आना चाहिए।

मैंने भी इण्टरव्यू की कड़वाहट को धोने की कोशिश में हँसते हुए कहा—यतीमखाना नहीं बल्कि काँजी हाउस! और उस हँसी के बाद हम लोगों ने फिर उस बारे में कोई और बात नहीं की। हालाँकि मैं जानता था कि इस घटना ने रवि को बहुत निराश कर दिया था। इस होटल में नौकरी की सम्भावना को उसने हमेशा अपने आगे किसी लक्ष्य की तरह रक्खा था। यूँ अगले ही हफ्ते एक और बड़े होटल का भी इण्टरव्यू कॉल उसके पास था और इतना तो मैं भी जानता था कि रवि के लिए किसी अच्छी नौकरी का पाना मुश्किल हर्गिज नहीं था।

रवि ने उस दिन छुट्टी ले रक्खी थी और पहले से ही उसने प्रोग्राम बना रक्खा था कि इण्टरव्यू के बाद हम लोग नीना और उसकी एक दोस्त के साथ फिर पूरा दिन बितायेंगे।

—छोकरियों को ऐश कराते रहना चाहिए यार, उसने मुस्कराते हुए उस होटल से बाहर निकलते हुए कहा था—नहीं तो टायर बड़ी जल्दी फ्लैट हो जाता है।

—गनीमत है अभी स्टैपनी का खयाल नहीं आया तुझे, मैंने उसे छेड़ते हुए कहा था।

—खैर मेरी छोड़···, उसने मोटर साइकिल के पास पहुँचकर खड़े होकर कहा—पहले तू अपना पहिया तो ढूँढ। हद है यार, तुझे छोकरीबाजी की आदत अभी तक नहीं पड़ी। आजकल तो साले स्कूल के लौंडे भी अपनी छोकरी बस्ते में

लिए घूमते हैं। चक्कर क्या है तेरे साथ? भले आदमी, कोई लड़की अगर साथ हो तो कुछ तो अक्ल से काम लिया कर। मालूम है पदमा क्या कह रही थी उस दिन?

—ओ छोड़ यार, तुझे मालूम है पदमा का फ्यूज बाँधना मेरे बस की बात नहीं है, मैंने उलझते हुए कहा क्योंकि एक भीनी-सी गन्ध मेरे भीतर दाखिल होने लगी थी।

—अच्छा खैर ठीक है, छोड़ पदमा को! लेकिन गुरुजी आज बिचारी नन्दिता पे थोड़ा रहम करना, वह हँसते हुए बोला—बिचारी नीना से कई बार कह चुकी है कि राइटर साहब से मिलवा दो। मैंने इसीलिए बुलाया भी है उसे आज। और तूने साले अगर फिर बोर किया न उस छोकरी को तो समझ ले काँजीहाउस में भी खस्सी बैलों के साथ बँधवा के आऊँगा''', और उसने मोटर साइकिल स्टार्ट कर दी।

पूरा दिन फिर इतना व्यस्त बीता था कि मुझे न कुछ सोचने का मौका मिला और न अपनी फिक्र करने का। देर रात को जब रवि ने मुझे घर के चौराहे पर छोड़ा तो चारों तरफ नींद का सन्नाटा था। और वह गन्ध थी जो मैं जानता था मुझे सोने नहीं देगी।

एक मुश्किल यह भी होती है जिन्दगी के उस झरने की तरह बहते हुए हिस्से में कि कुछ भी न सिर्फ रुकता नहीं बल्कि इतने तेज बहाव में बहता है कि वे चट्टानें तक कटती चली जाती हैं जिनके ऊपर से बेहिसाब पानी का वह सैलाब गुजरता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि तकलीफ नहीं होती कोई! दरअसल बहुत मुश्किल है उस तकलीफ का अन्दाजा जो उस एक छोटे से पौधे को होती होगी जो किसी चट्टान में बस यूँ ही उग आता है और एक पूरी जिन्दगी की उम्मीद बाँधे हर पल सहमा-सा खड़ा रहता है—ऊपर से गिरते उस मचलते हुए झरने की ताकत और उसके कारण न जाने कितने ही अंदेशों से घबराया हुआ-सा।

अगले कुछ दिनों का सिलसिला कुछ ऐसा ही था। एकाएक अम्माँ बीमार पड़ गयी थी और बाबा शहर से बाहर थे। मेरा ज्यादातर वक्त घर पर ही बीतता रहा। अम्माँ की बीमारी का सुनकर कम्मो घण्टों घर पर आकर मेरी मदद करती। उसी बीच वह अपनी परेशानियाँ मुझे बताती। पिछली बार के हादसे के बाद उसने कई सबक सीखे थे और अपनी पूरी समझ और ताकत के साथ वह अपने आपको सुधारने की कोशिश कर रही थी। लेकिन उसका वह हमउम्र रिश्तेदार जिसके कारण वह बीमार पड़ी थी उसका पीछा नहीं छोड़ रहा था। कम्मो पहले तो सारी बात शायद शर्म के कारण घुमा-फिराकर मुझे बताती रही थी लेकिन जब मैंने जोर दिया तो उसने बताया कि उसके उस चचेरे भाई के पास कम्मो की कुछ ऐसी तस्वीरें थीं जिनके कारण वह उसे किसी बात के लिए भी मना नहीं कर सकती थी।

—गुड्डू—तेरी कसम—, कम्मो ने पूरी बात बताने के बाद मुझसे कहा था

—वो मुझे इस नरक से निकलने नही देगा—, और उसकी आँखें छलछला आयी थी। कम्मो की उस आवाज ने मुझे डरा दिया था—ऐसी आवाज थी वह मानो कोई पानी मे डूब रहा हो और हर तरह से निराश होकर अपने आपसे ही आखिरी बार कुछ कह रहा हो।

अगले दिन मैंने उसके चचेरे भाई को चौराहे से कुछ आगे बने ताँगा स्टैण्ड के पास पकड लिया। मुझे देखते ही वह सकपका गया और बोला—क्या बात है?

—मुझे कम्मो की तस्वीरें और उनके नैगेटिव्स चाहिए? मैंने बहुत ठण्डी आवाज मे कहा था।

—क्या मतलब? कौन-सी तस्वीरें? उसका चेहरा पीला पड़ गया।

—जो तुम्हारे पास हैं।

—मेरे पास— कौन-सी तस्वीरें—, उसने अटक-अटककर कहा लेकिन मैंने बीच मे ही उसकी बात काट दी।

—देखो···इतनी मार पड़ेगी कि हड्डी-पसली सब टूट जायेंगी, मैंने उसी ठण्डेपन से कहा था—और तुम इतने कमजोर हो कि शायद निपट ही जाओ, समझे?

वह चुप हो गया और कुछ क्षणों बाद गर्दन झुकाकर बोला—कल ला दूंगा और मैं, भाई साब। वो मेरे दोस्त के पास हैं।

—कल-वल नही, मुझे अभी चाहिए—इसी वक्त। मैंने कहा—चलो उस दोस्त के यहाँ।

—लेकिन भाईसाब—अभी तो वो होगा भी नही पर पर उसने उसी तरह नजरें झुकाये हुए कहा।

और उसके साथ ही मेरा हाथ चल गया। उस तमाचे ने फिर सब कुछ ठीक कर दिया। अपने आँसू, तमाचे की चोट और सरेबाजार उस बेइज्जती को भी भूल कर वह रोते हुए बोला—चलता हूँ भाईसाब···प्लीज मारिये मत।

अपने घर ले जाकर उसने मुझे अपने कमरे मे बिठाया और फिर मेरे ही सामने उसने सामने की दीवार पर लगी, जडी हुई 'लक्ष्मीजी' की तस्वीर के फ्रेम और उसके पीछे लगी प्लाई के बीच मे मे एक लिफाफा निकाला और चुपचाप मुझे देकर गर्दन झुकाकर खडा हो गया। मैंने लिफाफा अपनी जेब मे रखकर खड़े होते हुए पूछा—इसके प्रिन्टस वगैरा तो नही हैं अब तुम्हारे पास?

—नही भाईसाब!

मैं दीवार पर लगी उस तस्वीर के पास पहुँचा और उसे उतारकर फिर मैंने एक झटके के साथ वह प्लाई पूरी तरह उखाड दी। उसी तरह के चार-पाँच और लिफाफे उसमे से निकलकर फर्श पर जा पड़े। मैंने उन्हे उठाते हुए पूछा—ये किनके हैं?

—भाईसाब···ये आपके काम के नही हैं···प्लीज, इन्हें रहने दीजिए—, वह अपनी शर्म के बावजूद गिड़गिड़ाता हुआ बोला।

मैं उसके सामने आकर खड़ा हो गया और उसकी ठोढ़ी पकड़कर उसका चेहरा ऊपर करके बोला—तुम्हें मालूम है मैं तुम्हें जेल भिजवा सकता हूँ इस हरकत के लिए ?

—नहीं भाईसाब—मैं आपके पाँव पड़ता हूँ···प्लीज ऐसा मत कहिए, वह सचमुच मेरे पैरों पर गिर पड़ा था।

उसी समय बाहर किसी के कदमों की आहट सुनायी पड़ी और वह घबराकर खड़ा हो गया। उसी के साथ दरवाजा खुला और एक महिला कमरे में दाखिल हुई—आज तो बड़ी जल्दी आ गये लाला,—क्या···, और मुझे देखते ही वे ठिठक कर चुप हो गयीं। क्षण-भर के लिये कमरे में एक बेहद शर्मिन्दा-सी खामोशी छा गयी।

—आओ भाभी—आप—कम्मो दीदी—के मौहल्ले में रहते हैं, उसने अटक-अटककर कहा।

मैंने उन्हें नमस्ते की और बोला—मैं चलता हूँ अब, और मैं कमरे से बाहर निकल आया।

उस हवेलीनुमा मकान से जब मैं बाहर निकला तो वही शर्मिन्दा-सा सन्नाटा जैसे मेरे खून में मिल गया था।

जो कुछ भी हुआ था वह मेरे लिए न नया था, न उसने मुझे आश्चर्यचकित किया, न उसके कारण मुझे उबकाई आ रही थी और न ही मैं गुस्से से भीतर-ही-भीतर उबल रहा था। बेहोशी की किसी दवा की तरह उस घटना ने मुझे बिल्कुल सुन्न कर दिया था। कुछ महसूस नहीं हो रहा था मुझे—न दर्द, न तकलीफ, न चीर-फाड़ की आवाज, न कम्मो का रोना, न उस लड़के की गिड़गिड़ाहट और न उस महिला की शर्मिन्दा खामोशी—सब कुछ किसी ऑपरेशन की तरह था—उस मरीज का ऑपरेशन जो जानता है कि वह कभी अच्छा नहीं होगा।

बर्फ की वह चादर फिर कम्मो के आँसुओं से पिघली थी। घर जाकर मैंने उसके कमरे में बैठकर सारी बात उसे बताई थी। उसके सामने ही मैंने उस लिफाफे को जला दिया था। जब लिफाफा राख में तब्दील हो गया तो कम्मो अचानक किसी छोटी बच्ची की तरह बिलख पड़ी थी। वह पहली बार था कि मैंने उसे चुप नहीं कराया। जब उसके आँसू थमे तो मैंने खड़े होते हुए एक बिल्कुल ही नयी आवाज में कहा था—अब अगर वो यहाँ आये तो मुझे बताना और···एक क्षण के लिये मैं चुप हो गया लेकिन फिर अपने आपको रोक नहीं पाया—देख कम्मो, नादानी बहुत हो चुकी। अब अगर तूने जरा भी बेवकूफी की तो फिर मुझसे बुरा कोई नहीं होगा।

कम्मो कुछ क्षणों तक उसी तरह हारी हुई-सी बैठी रही। फिर धीरे-धीरे वह उठी और मेरे सामने खड़े होकर मेरे दोनों हाथों को पकड़कर जैसे बेहोशी में बड़-बड़ाई—नहीं गुड्डू···तुझे मेरी कसम है···अब अगर मैं गलती करूँ न, तो तू···, और फिर तो जैसे कोई बाँध-सा टूट गया—तो गुड्डू···तू इन्हीं हाथों से मेरा गला

घोंट देना''', उसकी हिचकियों ने फिर उसे कुछ और नहीं कहने दिया। रोते-रोते ही वह मुझसे चिपट गयी थी और कुछ देर बाद अचानक ही उसकी आवाज बदल गयी। एक पागलपन-सा उसके ऊपर सवार हो गया था जिसके तहत वह लगभग चीखने-सी लगी—मुझे मार क्यों नहीं देता तू गुड्डू—क्यों बचा लेता है मुझे बार-बार --हे भगवान, कौन-सा बदला ले रही हूँ मैं तुझसे गुड्डू'''तेरी कसम मुझे जहर ला दे कहीं से—तूने इतना किया है मेरे लिये'''ये काम नहीं कर सकता तू ? सच्ची—फिर मैं और कुछ नहीं कहूँगी तुझसे कभी।

वह हिस्टीरिक-सी हो चली थी। मुझे और कुछ नहीं सूझा। उसे बुरी तरह से झकझोरते हुए मैंने कई बार उसे आवाज दी लेकिन उस पर उसका कोई असर नहीं हुआ। आखिरकार मैंने काफी जोर से उसके मुँह पर एक तमाचा मारा और उससे वह होश में आयी। कोने में बिछे बिस्तर पर मैंने उसे ले जाकर लिटा दिया और फिर अलमारी में रक्खे दवाइयों के डिब्बे में से मैंने नींद की गोलियाँ निकालकर उसे खिलायीं। उस पागल उत्तेजना की जगह अब उसके ऊपर एक बहुत ही डरावनी-सी खामोशी छा गयी थी। उसकी आँखें छत की तरफ टिकी हुई थीं और न वह कुछ बोल रही थी और न सुन रही थी। दवा खिलाने के बाद मैं उसके सिरहाने बैठ उसका माथा और सिर सहलाने लगा। काफी देर तक वह उसी तरह लेटी रही और उसके बाद धीरे-धीरे उसकी पलकें मुँदने लगीं।

नीचे आकर मैंने उसकी मम्मी को बताया कि उसकी तबीयत ठीक नहीं थी और इसलिये मैंने उसे दवा खिलाकर सुला दिया है। और यह भी कि अगर वह जग जाये और कुछ परेशानी हो तो वो मुझे फौरन बुला लें।

''अम्माँ की तबियत अब तक काफी ठीक हो गयी थी। जब मैं घर पहुँचा तो वह रात के खाने की तैयारी कर रही थीं। मैं अपने लिये एक कप चाय बनवाकर जीने की ऊपरवाली सीढ़ी पर आकर बैठ गया।

यह थी वह जिन्दगी जिससे मैं फरार होना चाहता था? मैंने अपने आपसे पूछा था। होगा क्या? अगर मैं निकल भी गया यहाँ से? शायद एक दिन ऐसा आयेगा कि मोहल्ले के शर्माजी के पास भी कम्मो की ऐसी ही तसवीरें होंगी। तब तक वे बहुत बूढ़े हो चुके होंगे, उनके सब दाँत गिर चुके होंगे, उनमें एक तमाचा सहने का भी दम नहीं बचा होगा लेकिन कम्मो से फिर भी वो जो चाहे सो करवा लेंगे। शर्माजी न भी सही, मोहल्ले में अब मेरी उम्र के कई जवान लड़के थे। बावजूद इसके कि कम्मो की हालत और उसकी शक्ल-सूरत दिन-ब-दिन दयनीय होती जा रही थी, इस मोहल्ले के वो लड़के उसे छोड़ेंगे नहीं। कुत्तों की तरह वह उसकी बोटी-बोटी नोच डालेंगे। और मैं बैठा होऊँगा किसी अच्छे मोहल्ले के खूबसूरत मकान में—कुछ बुद्धिजीवियों के साथ! कहाँ भाग रहा हूँ मैं? मैं तो यहीं का यहीं हूँ। खुदगर्जी ही तो है आखिर जिसके तहत मैं यहाँ से फरार होना चाहता हूँ। तो फिर शिकायत क्या और उसकी जरूरत क्या? मोहल्ले के लोग भी खुदगर्ज हैं।

बहुत दिनो बाद मुझे सुधीर मेहता की वह बात याद आयी कि सिर्फ इक्का-दुक्का आदमियों के उस गढ्ढे को उलाँघ लेने से बात नही बनती ! बात बनती है उस आदमी से जो हर जगह मौजूद है।

उस रात मैंने पहली बार उन सब लोगो के बारे मे एक-एक करके सोचा जिनकी जीवनी मैंने स्कूल की किताबों मे अलग-अलग पाठों की शक्ल मे पढ़ी थी। उस रात मुझे पहली बार अहसास हुआ कि फरार होना दरअसल एक अपराध है। सुधीर मेहता के शब्दो मे 'एक सामाजिक अपराध'।

उस रात मैंने यह भी सोचा था कि इसके बारे मे मैं रवि से भी एक बार बात जरूर करूँगा। सुधीर मेहता बहुत अच्छे लेखक थे। उनका चिन्तन और उनकी समाज के प्रति चिन्ताएँ देश की प्रमुख पत्रिकाओ मे छपती थी। लेकिन उनका चिन्तन था तो उसी आदमी के बारे मे जो हर जगह मौजूद है। वह आदमी जो न सिर्फ हर जगह मौजूद है बल्कि हर जगह एक लाइन में खड़ा है—हर जगह उस लाइन को तोडने की कोशिश करता है—हर जगह बिना लाइन मे लगे अपना हिस्सा लेकर घर जाना चाहता है। मुझे लगा कि शायद रवि से बेहतर उदाहरण उस आदमी का कोई नही था। वे लोग जिनके बारे मे सुधीर मेहता आँसू बहाते हैं —वे तो अपनी लाइन तक मे नही खड़े होना चाहते। हर दिन गली के कुत्ते की तरह पिटते, दुत्कार खाते और अन्ततः किसी ट्रक के नीचे कुचले जाने की नियति लिये हुए वे लोग दुनिया-भर के चिन्तन के बावजूद अपने बाप-दादा की जगह उसी लाइन में खड़े रहते हैं जिसकी खिड़की 'तरक्की' कब की बन्द करके बहुत आगे बढ़ चुकी होती है। अपनी लाइन मे खड़े होना तो दूर उसे खोज-भर लेना एक कमाल है आज की दुनिया में।

वैसे भी इतिहास उन लोगो से नही बनता जो हर वक्त और हर जगह मौजूद रहते हैं। इतिहास तो उन लोगों से बनता है जो कमाल दिखाते हैं। वे लोग जो हर जगह मौजूद होते हैं, वे तो हीजड़ों की तरह उन कमाल दिखानेवालो के सामने ताली बजाते हैं। इतिहास की धूल फाँकते अपनी फटी हुई, बेसुरी आवाज में घो घूम-घूमकर नाचते हुए उन घुडसवारो का बखान-भर करते रहते हैं जो उनके माँ-बाप को अपनी टापो तले कुचलकर बहुत दूर जा चुके होते है।

लिखने से वितृष्णा भी हो सकती है। सुधीर ने ही मुझे ऐसे कई लेखको के बारे में बताया था जोकि बहुत महत्वपूर्ण थे लेकिन जिन्होने किसी एक हद के बाद लिखना छोड़ ही दिया।

—बुद्ध को तो जीवन से ही वितृष्णा हो गयी थी, सुधीर ने मुझसे एक बार कहा था—और आदित्य यह तो सच है कि कई बार लगता है कि सब कुछ झूठ है —माया है यह सब—मूल नही।

—अगर सब कुछ माया ही है तो फिर मूल की चिन्ता ही क्यो ? मैंने पूछा था। यह बात शुरू के दिनो की थी जब मैं कई बार सिर्फ पूछने के लिए ही बहुत-सी चीजें पूछ लेता था।

सुधीर कुछ देर चुप रहे थे फिर एक बहुत ही सुन्दर मुस्कराहट उनके चेहरे पर छा गयी थी—इसलिए आदित्य—कि अन्ततः मिलना हमें मूल ही से है''', उन्होंने बहुत धीमी, बहुत प्यार भरी और सहलाती-सी आवाज में कहा था जैसे किसी छोटे-से बच्चे को कुछ समझा रहे हों—हिन्दू धर्म में शरीर जब निष्प्राण हो जाता है तो उसे अग्नि को अर्पित कर देते हैं—अग्नि यानि मूल—पाँच मूल तत्वों में से एक।

उनकी उस बात के कारण मैं तब उनसे बहुत प्रभावित हुआ था। लेकिन बाद में धीरे-धीरे मुझे लगा था कि सुधीर के लिए वक्त का वह आधा पहिया घूम चुका था जो अपने साथ नीचे की जमीन से बहुत-सी कीचड़ भी उछालकर दूर फेंक देता है। और सुधीर एक सामान्य बुद्धिजीवी की तरह पहिये के उस घुमाव से घबरा रहे थे जो उन्हें उसी कीचड़ में फँसा सकता था, अटका सकता था।

बहरहाल सुधीर की बात दूसरी थी। मुझे कुछ भी लगता रहे लेकिन वे एक प्रतिष्ठित लेखक थे और अवश्य ही इन सब सवालों का उनके पास एक अपना जवाब होगा।

मेरी स्थिति अलग थी। न तो मैंने इतना लिखा ही था कि उसके बारे में गम्भीरता से सोचा जा सके और न ही उसके दबाव के कारण मेरे सामने लिखते रहने और लेखक बनने की कोई मजबूरी थी। यह बात समझने में दरअसल मुझे बहुत देर लग रही थी कि मेरा सरोकार कुछ और था। और अब यह बात भी मुझे पहले से कहीं ज्यादा साफ नजर आने लगी थी कि मैं दौड़-भर सकता हूँ, भाग जाने की कोशिश ही मेरे वश में थी—कहीं पहुँचना असम्भव था। शायद निरर्थक भी!

उन कुछ दिनों के दौरान एक हताशा जंगली घास की तरह मेरे भीतर उग आयी थी। आज तक मैं उसे पूरी तरह से काटकर फेंक नहीं सका हूँ। जब तक मैं अपने होशोहवास और चौकन्नेपन से काम लेता रहता हूँ, सब कुछ किसी सुन्दर लॉन की तरह सजा-बसा रहता है। चन्द दिनों की लापरवाही, आलस या बीमारी और वह जंगली घास सब कुछ उजाड़ देती है।

रवि ने फिर अचानक एक दिन वह खुशखबरी दी थी जिसका उसे बचपन से और मुझे भी उसी उतावली के साथ न जाने कब से इन्तजार रहा था। उस होटल की नौकरी उसे मिल गयी थी। जैसे ही उसे डाक में वह नियुक्ति पत्र मिला था वह सीधे कॉलिज में आकर मुझे मिला था। दूर से ही मुझे देखकर वह भागता हुआ किसी दीवाने की तरह चिल्ला रहा था—सेनापति'''अबे ओ सेनापति'''फतह हमारी हुई'''जीत गया भई जीत गया''', और वह मुझसे आकर लिपट गया।

याददाश्त का मिजाज भी किसी छोटे बच्चे की तरह होता है, कब क्या माँग बैठे और कब क्या दे दे कुछ पता नहीं। दस साल हो चुके थे मुझे रवि के साथ रहते। कितनी मुश्किलें आयी थीं उस दौरान लेकिन खराब-से-खराब दिनों में भी मुझे कभी ख्याल नहीं आया कि रवि अनाथ है। बेहिसाब खुशी के उन क्षणों में जब वह मुझसे लिपटा हुआ अपनी खुशी में न जाने क्या-क्या बड़बड़ा रहा था कि मुझे

शायद पहली बार ख्याल आया कि रवि के पास सचमुच मेरे सिवा और कोई नही था।

उसने फिर मुझे अपना नियुक्ति पत्र दिखाया और साथ ही एक चिट्ठी भी जो उस होटल चेन के मालिक की तरफ से थी और जिसमे उससे कहा गया था कि वह अपनी ड्यूटी जॉइन करने से पहले एक बार उनसे मिल ले। मिलने का समय और स्थान उस पत्र मे नीचे लिखा हुआ था।

—कमाल हो गया यार···, रवि की आवाज उत्तेजना के मारे हिचकोले-सी खा रही थी—इसका मतलब मालूम क्या···वो जो बुड्ढा बैठा सिगार पी रहा था ···वो इस चेन का मालिक था···ओ बॉय·· ही वाज मिस्टर सिंह हिमसैल्फ, गुड्डू! रवि का अन्दाजा सही निकला था। अगले दिन वह मिस्टर सिंह से मिलने गया था और तब उसे पता चला कि उसकी नियुक्ति खुद मिस्टर सिंह ने की थी, बावजूद इसके कि इण्टरव्यू पैनल ने उसका नाम अपनी लिस्ट मे नही दिया था। मिस्टर सिंह ने रवि से अंग्रेजी मे कहा था—मुझे इस बात की खुशी है कि तुममे न सिर्फ अपनी उम्र का पूरा आत्मविश्वास मौजूद है बल्कि तुम उससे पूरा काम भी लेते हो, कुछ रुककर उन्होने कहा था—मैंने तुम्हारा आवेदन पत्र देखा। तुमने उसमे सिर्फ अपने गार्जियन का नाम दिया है; और उनकी सवालिया नजरे रवि पर टिक गयी थी।

—इसलिए सर कि मुझे अपने माता-पिता का नाम मालूम नही है, रवि ने उसी आत्मविश्वास लेकिन एक दूसरी आवाज मे कहा था और संक्षेप में उनकी जानकारी के लिए जरूरी बातें बता दी थी।

मिस्टर सिंह कुछ क्षणों तक रवि की आँखो में कुछ देखते रहे थे जो उनकी नजर के पैनेपन के बावजूद झुकी नहीं थीं। फिर खड़े होकर वे रवि के पास आये और उनके कन्धे पर हाथ रखकर बोले—यू मेक मी प्राउड ऑव यू, सन! तुम जैसे लड़के को उनकी जरूरत भी नही है। अपना काम शुरू करो अब यहाँ। कोई दिक्कत हो तो मुझे बताना। और हर हफ्ते मुझसे एक बार मिलना जरूर है। समझ गये?

—जी सर! थैंक्यू, और वह उनके चैम्बर से बाहर आ गया था।

यह बात बताने के बाद रवि ने ही मुझे बताया था कि मिस्टर सिंह ने अपनी शुरुआत एक छोटे से होटल में डैस्क क्लर्क की तरह की थी और पन्द्रह-बीस साल में ही लोग उन्हें होटल मैगनेट कहने लगे थे।

—उन्ही जैसे आदमी की मुझे अब जरूरत थी गुड्डू···, रवि ने बाद मे कहा था जब हम लोग उसकी नौकरी का जश्न मनाते गेलॉर्ड मे खाना खा रहे थे। नीना भी हम लोगो के साथ थी और बेहद खुश थी।

—चुम्बक बनने के लिए चुम्बक से चिपकना जरूरी होता है यार, उसने अपनी बात का सिलसिला जारी रखते हुए हँसकर अंग्रेजी मे कहा था और फिर नीना की तरफ आँख मारकर बोला था—क्या समझी मेमसाब?

—ये कि कम-से-कम मैं तो चुम्बक नहीं बनना चाहूँगी, नीना ने एक शरारती मुस्कराहट के साथ कहा था और रवि के उस जबर्दस्त ठहाके में फिर हम सब शामिल हो गये थे।

यूँ तो जीवन का कोई क्षण कभी नहीं लौटता लेकिन कुछ ऐसे होते हैं जो आते ही किसी अजनबी मेहमान की तरह हैं और फिर जैसे अपना सामान छोड़कर चले जाते हैं। आपको जिन्दगी-भर उनका इन्तजार रहता है। खुशी के क्षण ऐसे ही होते हैं···

4

रवि से मिलना अब और भी कम हो गया था। उसने बताया था कि पहले छः महीने बहुत मेहनत करनी होगी क्योंकि उस दौरान उसे अपने काम के अलग-अलग हिस्सों की काफी गहन ट्रेनिंग लेनी थी। वह अलग-अलग शिफ्टों में काम करता, कभी-कभार उसी चेन के दूसरों होटलों में उसे भेज दिया जाता। पिछले दो महीनों के दौरान वह दो-तीन बार शहर से बाहर भी रहा था—अपने काम ही के सिलसिले में। मिस्टर सिंह उसमें खासी दिलचस्पी लेने लगे थे क्योंकि जिस रफ्तार और मेहनत से रवि ने अपने आपको प्रशिक्षित करना शुरू किया था, उसे देखकर वे भी थोड़े आश्चर्यचकित हुए थे।

सर्दियों के वे दिन थे जो अकेलापन और गहरा देते हैं। सर्दी भी इस साल कुछ तेज ही थी। अमूमन यह मौसम दो-ढाई महीने बाद होनेवाले इम्तहानों की तैयारी शुरू करने का होता था। मैं हालांकि उस तरह का विद्यार्थी कभी नहीं रहा जो सिर्फ इम्तहान से पहले ही पढ़ाई करने बैठते हैं और फिर घबराहट के मारे उन्हें कुछ और नहीं सूझता, लेकिन फिर भी कॉलिज में पढ़ाई का तरीका कुछ ऐसा था कि सारे साल का वजन बस एक ही बार तोला जाता था और इसलिए एक खास ढंग की फिक्र दबोच ही लेती थी।

मेघना से इस बीच कॉलिज में तो मुलाकात होती ही रहती, उसके पिता भी कई बार उसके जरिये घर आने का बुलावा भेज देते। वे शामें और उन लोगों के साथ बिताया हुआ वक्त ही एक खास ढंग की तसल्ली मेरे लिए साबित होते। वर्ना सब कुछ एक ऐसे दृश्य की तरह था जिसमें यूँ तो सब कुछ मौजूद था लेकिन बर्फ-सी गिर रही थी। मेघना के साथ कॉलिज और घर के अलावा भी कुछ वक्त बीता था। उसे ऐतिहासिक इमारतें देखने का बहुत शौक था और क्योंकि मैं एक अर्से तक

टूरिस्ट गाइड का काम कर चुका था इसलिए उसे बहुत मजा आता था जब मैं बिल्कुल पेशेवर गाइड की तरह उसे उन इमारतों के बारे में बताता। धीरे-धीरे वह एक ऐसा सिलसिला बनता जा रहा था कि हम दोनों ही बड़े अनायास ढंग से किसी ऐसे छुट्टी के दिन का इन्तजार-सा करने लगे थे जब हमें डूबते हुए सूरज को एक-साथ देखने का वह मौका मिल जाता।

ऐतिहासिक इमारतों की मौजूदगी आदमी के भीतर बहुत कुछ बदल देती है। बीते हुए वक्त की एक सफेद चादर-सी जैसे कोई ढक देता है—कितनी ही ऐसी बातों पर जो पिंजड़े में बन्द चिड़ियों की तरह चहचहाती रहती है और जिनके लिए किसी भी तरह के अँधेरे का मतलब होता है—रात हो गयी। मेघना के ऊपर उन पुरानी इमारतों का असर कुछ ऐसा होता था कि वह अपनी निजी जिन्दगी के अकेलेपन को बिल्कुल भूल जाती थी। उन इमारतों के सूने कोनों और गलियारों में हम दोनों घण्टों बैठे और घूमते रहते थे। बीच-बीच में मेघना धीमी आवाज में मेरी आँखों में झाँक-झाँककर बहुत-से सवाल पूछती। बहुत-से जवाब भी देती उन सवालों के जो मैं उससे पूछते हमेशा हिचक जाता था या बिल्कुल ही नहीं पूछ पाता था।

यह एक और बात हुई थी इस बीच कि मैं बहुत-से लोगों से बहुत-सी बातें पूछ नहीं पाता था। जबकि वो सवाल अक्सर इतने पैने होते थे कि फिर मैं भीतर ही-भीतर उनमें लहू-लुहान होता रहता था। सुधीर मेहता अब शायद अकेले ऐसे व्यक्ति मेरे आस-पास बचे थे जिनसे मैं हालांकि मिलता काफी कम था लेकिन जब मिलता तो काफी बातचीत करता था। सुधीर बातचीत के दौरान अक्सर ऐसी-ऐसी किताबों और कृतियों की याद करते और मुझसे उन्हें पढ़ने के लिए कहते जिनके मैंने नाम तक नहीं सुने थे। उनकी खास बात यह थी कि उन किताबों को उन्होंने सचमुच पढ़ा होता था। अन्य बहुत-से लेखकों की तरह वे सिर्फ उनका नाम ही नहीं उछाल देते थे। लॉरेंस, दॉस्तोवस्की और फॉस्टर सुधीर के प्रिय लेखक थे। मुझे आज भी याद है जब सुधीर मुझसे ब्रदर्स कर्माजोव या पैसेज टु इण्डिया या वोमेन इन रोड अवे के बारे में बात करते तो मुझे लगता था जैसे मैं उनके साथ उस घर के किसी कमरे में बैठा हुआ हूँ जहाँ उन किताबों के पात्र रहते थे। हालांकि यह मुझे बहुत अटपटा लगता था कि वे हिन्दी के लेखकों – नये और पुराने भी, के बारे में इस तरह की बातचीत कभी नहीं करते थे। उनके बारे में वे सिर्फ कभी-कभार किसी गोष्ठी या सेमिनार में भाषण दे देते थे।

कुछ बातें सुधीर में सचमुच अजीब थीं। लेखन प्रक्रिया, लेखकीय व्यक्तित्व, उसकी विशिष्ट मन:स्थितियाँ और चेतना के बारे में वे अक्सर बड़ी ईमानदारी से बेहद सूक्ष्म और सुन्दर बातें करते थे, लेकिन अन्त में जैसे उन्हें एकदम कुछ याद आ जाता और जैसे पूरी रफ्तार से भागती हुई रेलगाड़ी को कोई लाल झण्डी दिखा देता। अपने समकालीनों के प्रति भी उनका रवैय्या कुछ अलग ही था। शायद ही कभी उन्होंने उनमें से किसी के बारे में कुछ बात की थी। कभी-कभी मुझे लगता

कि वे अपने ही लेखन पर कुछ मुग्ध-सा रहते थे लेकिन इस संदर्भ में सन्तोषजनक बात यह थी कि अपने कई समकालीनों की तरह उनकी मुद्रा कभी शहादत की नहीं रही। एक खास ढंग का साफ-सुथरापन उनके व्यक्तित्व को बहुत अलग और काफी हद तक विश्वसनीय बना देता था।

—तुम्हारी कुछ बातें सुनकर मुझे बहुत खुशी होती है आदित्य, उस दिन उन्होंने कहा था। हम लोग कनॉट प्लेस में अचानक मिल गये थे और सुधीर बहुत इसरार करके मुझे अपने घर ले गये थे। घर जाकर उन्होंने मुस्कराते हुए मुझे बताया था—दरअसल मेरे पास दुनिया की सबसे अच्छी व्हिस्की की एक बोतल बहुत दिनों से रखी हुई है। उसे मैंने किसी खास मौके के लिए बचा रखा था। नहीं तो अपने साहित्यिक पण्डे भला कहाँ छोड़नेवाले हैं···, और उनका ठहाका कमरे को झकझोरने लगा।

—लेकिन आज कौन-सा खास मौका है? मैंने मुस्कराते हुए पूछा।

बोतल खोलकर, ग्लासों में भरी बड़ी-बड़ी बर्फ की क्यूब्स के ऊपर व्हिस्की डालते हुए उन्होंने मुस्कराकर जवाब दिया—इसीलिए तो ले आया तुम्हें! और कुछ क्षणों बाद एक ग्लास उठाकर मुझे देते हुए उन्होंने कहा—आज मैंने अपनी नौकरी छोड़ दी। चियर्स टु माई लिबरेशन, चियर्स!

एकबारगी तो मैं हतप्रभ-सा रह गया। फिर ग्लास उठाकर मैंने कहा—चियर्स!

—लेकिन ''नौकरी क्यों छोड़ दी आपने? इतनी अच्छी निकल रही थी। पत्रिका''', कुछ क्षणों बाद मैंने पूछा।

—यूँ ही···असल में कुछ जम नहीं रहा था मामला, उन्होंने एक लम्बा-सा घूँट लेकर कहा और उसके बाद हाथ हिलाते हुए बोले—खैर छोड़ो उसे, बहुत डल टॉपिक है। तुम सुनाओ, कहाँ रहते हो तुम आजकल?

—कहीं नहीं, मैंने मुस्कराहट के सहारे कहा—असल में ये टॉपिक भी उतना ही डल है।

सुधीर ने फिर एक ठहाका लगाया और उसके बाद एक लम्बी साँस छोड़ते हुए बोले—हाँआँ, यही तो चक्कर है···, और सोफे के अन्दर धँसते हुए मैं आराम से लेट-सा गये।

—तुमसे मिले तो जमाना हो गया···,कुछ देर बाद एक सिगरेट जलाते हुए उन्होंने कहा—क्या कुछ लिख-विख रहे हो?

—नहीं। अभी तो इरादा भी नहीं है कुछ, मैंने जवाब दिया—और फिर अब इम्तहान भी आ रहे हैं! फाउण्टेन पेन में उन्हीं की स्याही है आजकल···

वे मुस्करा पड़े।

—आप बताइये? आप क्या लिख रहे हैं आजकल? मैंने पूछा।

—अब लिखूँगा···, उन्होंने कुछ सोचते हुए कहा—नौकरी छोड़ने के पीछे एक कारण यह भी है।

—यह तो बहुत अच्छा कारण है !

—हाँ, सचमुच, उनकी नजरें मुझ पर लौट आयी—इस बीच शायद मैं उसी वजह से भी नहीं लिख पाया कुछ···

—यह बात आप अपने आप से ही कह रहे हैं, मुझसे नहीं ! मैं मुस्कराया।

ठहाका लगाते हुए उन्होंने मेज पर से अपना ग्लास उठाया और एक घूँट भर-कर फिर वैसे ही लेट गये।

—पढ़ क्या रहे हो आजकल ? कुछ देर बाद उन्होंने पूछा।

—खास तो कुछ भी नहीं !

—यह तो बहुत अच्छी खबर नहीं है !

—हाँ। नहीं है।

बातचीत उखड़ी-उखड़ी-सी चल रही थी। सुधीर रह-रहकर बीच में कुछ सोचने लगते, फिर शायद उन्हें याद आता था कि मैं सामने बैठा हूँ और यह व्यक्तिगत सवालों का सहारा लेते बातचीत के लिए। मुझे लगा कि शायद नौकरी छोड़ने की बात को लेकर ये उद्वेलित हैं। अपनी व्यक्तिगत बातों को वे वैसे भी सामने नहीं लाते थे।

हम लोगों के गिलास खाली हो चुके थे। उन्होंने बोतल उठायी और उसके साथ ही मैं बोला—मेरे लिए नहीं अब !

—क्यों ? उन्होंने अपने गिलास में व्हिस्की डालते हुए पूछा।

—मैं दरअसल पीता नहीं···, मैंने कहा और फिर मुस्करा पड़ा—इसी से कान गर्म हो गये !

ठहाका लगाते हुए अपना गिलास लेकर वो किचन में चले गये और कुछ देर बाद उसमें बर्फ डालकर लौटे और मुस्कराते हुए बोले—मुझे लगता है कि उस चांडाल चौकड़ी के बजाय अगर मैं तुम्हारी सोहबत में रहूँ तो थोड़े दिनों में सुधर जाऊँगा मैं भी ! ये तोंद वगैरा भी कम हो जायेगी। और फिर हिन्दी की इस जनरेशन में तो खेलनेवाले लेखक हैं ही नहीं—सब खिलाते ही रहते हैं···

उनके इस कहकहे के साथ ही मैं खड़ा हो गया और अनजाने ही मेरे मुँह से निकल गया—आपका सुधरना ज़रा मुश्किल ही लगता है···अदिति ही कोशिश करें तो···, और मैं चुप हो गया क्योंकि अदिति का नाम आते ही उनके चेहरे की वह मुस्कराहट बुझ-सी गयी। क्षण-भर के लिए एक अटपटी-सी खामोशी छा गयी।

—अच्छा तो फिर होगी मुलाकात, मैंने हड़बड़ी में कहा।

—ओके···एण्ड थैंक्स, उन्होंने फिर अपनी उसी गर्मजोशी से कहा—मिलते रहा करो यार, वैसे अब सम्पादक तो नहीं रहा लेकिन प्रशंसक तो हूँ ही तुम्हारा ! और उन्होंने एक और कहकहे के साथ मुझे बिदा किया।

उनके घर से मैं काफी दूर तक पैदल आया। उसी अटपटी-सी खामोशी को अपने भीतर समेटे हुए जिसमें अब अदिति का नाम रह-रहकर गूँज रहा था। सुधीर के चेहरे के उस भाव ने जैसे किसी गहरी बावड़ी में ढेला-सा फेंक दिया था। हिलते

हुए पानी के दायरे फैलते जा रहे थे—एक के बाद एक। क्या···? और उसके आगे का सवाल मैं अपने-आपसे ही नहीं पूछ पा रहा था।

यह तो मैंने देखा ही था कि अदिति घर में नहीं थी। लेकिन क्या सचमुच वे अब वहाँ···नहीं, नहीं, ···। शायद दोनों में कुछ कहा-सुनी वगैरा हो गयी होगी। सुधीर वैसे भी जरा ज्यादा ही सैन्सेटिव है कुछ बातों को लेकर। लेकिन फिर भी अदिति है कहाँ ? अपने माता-पिता के पास ? क्या वे दिल्ली में ही रहते हैं ? हो सकता है यही हो क्योंकि मुझे याद था कि जब उनसे 'लाँ बोहीम' में पहली बार मुलाकात हुई थी तो उन्होंने घर की चाबी देते हुए कहा था—मैं बीजी के यहाँ जा रही हूँ···लेकिन यदि उनके माता पिता यहीं रहते हैं तो फिर अदिति उनके सामने बिना शादी किये इस तरह सुधीर के साथ··? न जाने कितने सवाल थे जो बादलों की तरह एक-दूसरे से रह-रहकर टकरा रहे थे। मेरे पास उनमें से एक का भी जवाब नहीं था। जानता ही क्या था मैं अदिति के बारे में।

कोई-कोई दिन ऐसा होता है कि आदमी अपने पूरे दिमाग, सारे हिसाब और जमाने-भर की समझ के बावजूद उससे हार जाता है। कोई तर्क नहीं होता उन चीजों के एक खास सिलसिले में जो उस दिन किसी बारात या जनाजे की शक्ल में आ सकती हैं।

उन्हीं सब बातों को सोचता मैं फुटपाथ पर चला जा रहा था। बस स्टैण्ड कब का पीछे छूट चुका था। अचानक एक मोटर साइकिल मेरे बराबर सड़क पर आकर रुकी और रवि की आवाज मेरे कानों में पड़ी—सेनापति ! कहाँ अवारागर्दी कर रहे हो ? मुस्कराता हुआ मैं मोटर साइकिल की पिछली सीट पर बैठ गया—सुधीर के पास से आ रहा था। तू कहाँ से आ रहा है ?

—अरे यार, वो नीना की बड़ी बहन है न—, उसने गाड़ी स्टार्ट करते हुए कहा और फिर अचानक चुप हो गया।

—क्या हुआ ?

—बताता हूँ। पहले ये बता तुझे अदिति के बारे में मालूम है ?

—नहीं तो, क्या बात है ? मैं घबरा-सा गया।

—कमाल है यार—, उसने खीझते हुए कहा—तू साले करता क्या रहता है ? या सुधीर मेहता ही बन के रहेगा पूरा ?

—बात तो बता न—, मैंने उलझते हुए कहा।

—अदिति बीमार पड़ी हुई है। दो हफ्ते हो गये। शायद टॉयफाइड है। तुझे जाना चाहिये था। मैं समझा तुझे मालूम होगा ? उसने फिक्रमंद आवाज में एक ही साँस में सब बातें कह दीं।

—असल में मेरा मिलना नहीं हुआ इस बीच—, मैंने धीरे से कहा और फिर पूछा—तुझे कैसे मालूम हुआ ?

—चक्कर ये हुआ कि नीना की बड़ी बहन की डिलीवरी होनेवाली है। उसने मुझसे कहा तो मुझे लगा कि अदिति को कन्सल्ट कर लें। वहाँ गये हम लोग तो

फिर नर्स ने बतायी सारी बात···, और वह चुप हो गया। काफी दूर तक फिर हम दोनों में से कोई कुछ नही बोला। इसी बीच हम लोग कनॉट प्लेस पहुँच गये थे।

—तुझे होटल नही जाना? मैंने पूछा।

—नही, आज तो ऑफ है मेरा। चल चाय पी लें कही। शाम की चाय आज मिस हो गयी, उसने गाड़ी गेलॉर्ड की तरफ मोड़ते हुए कहा।

—जाना मुझे भी चाहिए उनके यहाँ लेकिन आज टाइम ही नही मिला बिल्कुल···, रेस्ट्राँ के अन्दर आकर दीवार के सहारे लगे सोफे मे उसने धँसते हुए कहा।

जब चाय आ गयी तो मैंने धीमी आवाज मे कहा—मुझे तो उनका घर भी नही मालूम···

—पता तो मैं ले आया हूँ उनकी नर्स से, उसने सीधे बैठकर चाय बनाते हुए कहा—बाराखम्बा रोड पर है उनकी कोठी···, उसकी आवाज अचानक फिर सख्त हो गयी—लेकिन यार माफ करना, वाट काइन्ड ऑव अ—आखिर किस नस्ल का आदमी है ये *सुधीर मेहता? या कि ये साले लेखक लोग होते ही ऐसे है*—! नफरत और हैरत ने मिलकर उसकी आवाज को एक अजीब धार-सी दे दी थी—यू मीन टू टैल मी दैट—सुधीर मेहता ने तुझे इस बारे में कुछ नही बताया?

—नही। मैंने शर्मिन्दा होकर कहा।

कुछ क्षणों तक वह खामोशी से अपने चाय के प्याले को घूरता रहा। फिर उसके होठों पर एक बेहद कडवी मुस्कराहट छा गयी—ठीक है—, उसने साँस छोडते हुए कहा—उन्हे तो मिल गया होगा न एक कहानी का मसाला·· अदिति जाये अब भाड मे। और फिर हिन्दुस्तान मे ऐसी सहूलियत कितनी औरतें देती हैं। मान गये यार सच्ची। तुम्हारा लेखक ही कर सकता है ऐसा···

मेरे पास कहने के लिए कुछ नही था। रवि का गुस्सा मैं पूरी तरह से समझ सकता था। यह ठीक है कि किसी भी प्रकार के पारिवारिक सम्बन्धो की अनुपस्थिति ने उसके जीवन मे अपने आप बनाये गये सम्बन्धों और रिश्तों के प्रति कुछ ज्यादा ही महत्व देने की स्थिति को पैदा कर दिया था लेकिन यह भी सच है कि रवि किसी भी तरह के सम्बन्ध में एक बुनियादी ईमानदारी और शराफत का कायल था। जहाँ भी उसे ये चीजें गैरहाजिर लगती उसका खून खौलने लगता था।

—खैर···, कुछ देर बाद उसने अपने आप को उबारते हुए कहा—उनकी बात तो वो जाने लेकिन तुझे तो वहाँ जाना चाहिए। मैं तो आज अभी निकल नही सकता। नीना की बहन को नर्सिग होम शिफ्ट करना है। कल कोशिश करूँगा···

—हूँअअ, मैंने चाय का आखिरी घूँट लेते हुए कहा।

अपनी जेब से रवि ने एक कागज निकाला और मुझे देते हुए बोला—ये पता है उनका। और अगर कोई एमर्जेन्सी हो या मेरी जरूरत हो तो नीना के यहाँ फोन कर देना।

मैंने उस कागज पर लिखे पते को पढ़ा और फिर उसे अपनी जेब में रख लिया। वेटर बिल ले आया था। उसके पैसे देने के बाद रवि उठते हुए बोला—चल फिर। मुझे नीना के यहाँ पहुँचना है अभी ·

हम दोनों रेस्ट्राँ से जब बाहर निकले तो चार बज रहे थे। रवि ने मुझसे पूछा—क्या प्रोग्राम है अब तेरा?

—सोचता हूँ फिर निकल ही जाऊँ ··अदिति के यहाँ, मैंने कहा।

—गुड। रवि खुश-सा हो गया—उसने कहा कि मैं कल आऊँगा। तू निकल जायेगा या मैं छोड़ दूँ तुझे?

—नहीं तू जा, मैंने कहा मैं स्कूटर ले लेता हूँ।

रवि के जाने के बाद मैंने स्कूटर लिया और उससे बाराखम्बा रोड चलने के लिए कहा।

एक गहरा सन्नाटा छा गया था मेरे भीतर। अब न कोई सवाल था न दुविधा। न कोई डर ना घबराहट। न कोई सोच न समझ। सब कुछ सहज था और स्वाभाविक—अदिति बीमार थी और मैं उनके पास जा रहा था क्योंकि इस वक्त मुझे उनके पास होना चाहिए।

बाराखम्बा रोड पर लगभग बीचोंबीच ही वह कोठी थी जिसके दरवाजे पर नेम प्लेट लगी हुई थी—डा. अदिति दयाल। मैंने स्कूटर बाहर ही रुकवा लिया और पैदल ही कोठी में दाखिल हुआ। पुरानी लेकिन काफी बड़ी-सी कोठी थी। लाल बजरी से ढके हुए गोल-से ड्राइव वे के बीचोंबीच काफी ऊँचा और बड़ा पोर्च था जिसमें अदिति की सफेद फियाट खड़ी थी। चारों तरफ सन्नाटा था। सामने लॉन में काफी दूर पर एक माली क्यारियों में पानी दे रहा था। बरामदे में खड़ा कुछ देर तक मैं इन्तजार करता रहा कि शायद कोई नजर आ जाये लेकिन लग रहा था जैसे कोठी में कोई है ही नहीं। आखिरकार मैंने बरामदे में खुलनेवाले बड़े दरवाजे पर लगी कॉल बैल को बजाया।

कुछ क्षणों बाद दरवाजा खुला और एक काफी साफ-सुथरी-सी नौकरानी ने मुझसे पूछा—किससे मिलना है आपको?

—डाक्टर अदिति···

—मेमसाब तो बीमार हैं। क्या काम है आपको?

—मुझे मालूम है ··, मैंने कहा—मैं उनसे मिलने आया हूँ।

—आपका नाम क्या है साब? मैं बोल देती हूँ मेमसाब को।

—कहिये कि आदित्य मिलने आया है।

—आदित्य? उसने कुछ हैरत से मेरी तरफ देखकर कहा—अच्छा आप बैठो साब। मैं बोलती मेमसाब को।

मैं बरामदे में पड़ी बेंत की कुर्सियों में से एक पर बैठ गया। कुछ क्षणों बाद दरवाजा खुला और उस नौकरानी ने बाहर निकलकर मेरे लिये दरवाजा खोलते हुए कहा—आइये साब? मेमसाब बोलती कि ऊपर ही आ जाइये। अभी उठती

नईं न वो।

उस नौकरानी के पीछे-पीछे मैं एक काफी बड़े और सादगी से सजे हुए ड्राइंग हॉल से गुजरकर, एक गलियारा पार करके उस कमरे तक पहुँचा जिसके बाहर उस नौकरानी ने रुककर मुझे अन्दर जाने का इशारा किया और लौट गयी।

काफी ऊँचाई से लटकते हुए भारी-भरकम पर्दे को हटाकर मैं कमरे मे दाखिल हुआ। सामने एक बडे से पलंग पर बहुत-से तकियो के सहारे टिकी हुई अदिति बैठी थी। मुझे देखकर वे मुस्करा पडी—आओ आदित्य ''तुम कहाँ से आ गये भई ? उनकी आवाज इतनी कमजोर थी कि मैं एकाएक उसे पहचान नही पाया।

मैं उनके पास जाकर खड़ा हो गया और धीरे से बोला—नमस्ते ! ऐसे ही''' मुझे तो आज पता चला'''

—बैठो न, वो कुर्सी खीच लो इधर, उन्होने कहा और फिर मुस्करा पड़ी—मतलब कि अब लौट आये तुम दीन-दुनिया मे—हैंएए ?

—अब अगर डॉक्टर खुद ही बीमार पडने लगें तब तो फिक्र हो ही जाती है दीन-दुनिया की, मैंने बैठते हुए कहा और फिर पूछा—कैसी तबियत है अब ? बीमार कैसे पड़ गयी आप ?

—जैसे सब पड़ते है वैसे ही पड गये, उन्होंने मेरी तरफ देखा—अब तो ठीक-सी लग रही हूँ। बुखार तो नही है अब, लेकिन अभी उठने-बैठने की हिम्मत नही है। सच्ची, बोर हो गये इस बार तो।

मेरी नजरें उनके चेहरे पर ठहर गयी। गुलाबी-सा वह रंग बिल्कुल सफेद हो गया था—उनीदी और भारी आँखें, बिल्कुल रुखे बाल और इकहरा नाक-नक्शा जो और भी दुबला हो गया था। मैंने उन्हें इतनी कमजोर और खूबसूरत पहले कभी नही देखा था।

—आपने खबर भी नही की ? कुछ क्षणों बाद मैने धीरे-से कहा।

—हाँआँ''', उन्होने नजरें झुकाये कुछ सोचते हुए जवाब दिया—कुछ सूझा ही नही। फिर बीमारी मे न—सबसे अच्छा यही रहता है कि चुपचाप पड़े रहो। ऐसे मे ठीक भी जल्दी हो जाता है आदमी, फिर हल्के-से अपने बालो को झटकते हुए मुस्कराकर बोली—मिजाजपुर्सी करनेवाले कई बार बीमारी बढ़ा देते हैं। और वैसे भी न'''ठीक नही रहता यो सब'''बिना बात परेशान करने से फायदा क्या ?

मैं चुप रह गया।

वे मेरी तरफ देख रही थी लेकिन मुझमे हिम्मत नही थी उनसे नजरें मिलाने की।

—फिर भी'''आपको खबर तो करनी चाहिए थी, मैंने आखिरकार कहा।

—क्यों ? शरारत अब भी उनकी आवाज मे मौजूद थी लेकिन घडी-भर थी, चुपचाप—क्यों खबर करते ? और कहाँ खबर करते तुम्हे ? एक चिट्ठी तुमको लिखी थी—पता नही तुम्हे मिली या नही। पता भी तो था नही मेरे पास। फिर

उस मैगजीन में मिला जिसमें तुम्हारी कहानी छपी थी। मिली वो चिट्ठी या नही?

—मिली थी।

—तो फिर बोलो अब? जवाब दिया तुमने उस चिट्ठी का? क्यों खबर करते फिर हम?

—आइ एम सॉरी।

कुछ देर के लिए खामोशी छा गयी। फिर उन्होंने बिल्कुल नये सिरे से कहा—खैर छोडो···मै तो मजाक कर रही थी। लेकिन तुम्हे पता कैसे चल गया?

—रवि ने बताया, मैंने कहा और फिर पूरी बात उन्हें बताकर बोला—रवि कल आयेगा···आज असल में वो उसी चक्कर में फँसा हुआ है।

—तुम लोगों के स्कूल भी काफी ढीले पड़े है, धीरे से हँसते हुए उन्होंने कहा—वैसे तो महीनों पता नही रहता और अब पता चल गया तो जमीन-आसमान एक हो जायेगा। कुछ और करने-धरने को नही है क्या तुम लोगों के पास? और अब तो मैं ठीक हो गयी हूँ।

मैंने कुछ नही कहा।

—वैसे क्या हाल हैं उसके, उन्होंने पूछा—क्या कर रहा है आजकल?

—उसे बहुत बढ़िया नौकरी मिल गयी है, और मैंने उन्हें रवि के बारे में वो सब बातें बतायी जो इस बीच हुई थी—नीना को मिलाकर।

—ये नीना—वो ही लडकी है न जो उस पार्टी पर थी उसके साथ?

—हाँ—,मैंने थोडे आश्चर्य से पूछा—लेकिन आपको कैसे लगा कि नीना वो ही लडकी है?

—अब इतना तो पता चल ही जाता है लड़कियों को देखकर कि कौन सिर्फ दोस्त है और कौन कुछ और···नही क्या? वो मेरी तरफ देखकर मुस्कराईं।

—पता नही।

—अच्छा···? उन्होने बनावटी आश्चर्य से अपनी आँखें घुमाते हुए कहा—और ये आप कह रहे है। सुना है कि जनाब के पीछे-पीछे यूनीवर्सिटी में आजकल एम्बुलैन्स चलती है, बिचारी बेहोश लडकियो को अस्पताल पहुँचाने के लिए।

मैं चुप रहा। पूरी कोशिश के बावजूद मैं उनकी इस छेड़-छाड में शामिल नहीं हो पा रहा था।

—मेमसाब···चाय! कमरे के बाहर से नौकरानी की आवाज आयी।

—अच्छा। ले आओ, उन्होने कहा लेकिन जैसे ही नौकरानी ट्रॉली के साथ कमरे में दाखिल हुई उन्होने सीधे होकर बैठते हुए कहा—देखो, ऐसा करो लीला···बरामदे में ले चलो। वहाँ बैठेंगे आज, मन भर गया इस कमरे से···

—जी मेमसाब! लेकिन फिर ठहर जाइये—मैं वो पहियेवाली कुर्सी ले आती हूँ।

—अरे नही—आज तो अब अच्छा लग रहा है। और फिर अब तो ये

आदित्य हैं···तू चल, हम लोग आते हैं, उन्होंने कहा और फिर एक बहुत कच्ची-सी मुस्कराहट के सहारे मुझसे बोली—चलो, बरामदे मे चलें।

मैं खड़ा हो गया और फिर पलँग के किनारे की तरफ बढकर मैंने अपना हाथ बढ़ाया। हाथ पकड़कर वह पलँग से उतरी और फिर खडी रही।

—चक्कर आ रहा है ?

उन्होंने आँखें मूँदकर गर्दन हिलायी और फिर मेरे कन्धे पर अपना दायाँ हाथ रखकर सहारा लेते हुए बोली—अजीब-सा लग रहा है, चलो।

—ठीक नही लग रहा हो तो यही मँगवा लें, मैंने आहिस्ता-आहिस्ता कदम रखते हुए पूछा।

—नही, वही चलो।

धीरे-धीरे चलते हुए हम लोग बरामदे मे पहुँचे और उन्हे एक बैंत की कुर्सी मे बैठाकर मैंने दूसरी कुर्सी उनके पास खीच ली और बैठ गया।

—थैंक्यू आदित्य, उन्होने कुर्सी मे पीछे की तरफ अपनी गर्दन टिकाकर धीरे से कहा। इतनी दूर चलने ने ही इन्हें थका दिया था।

मैंने बिना कुछ कहे ट्रॉली अपनी तरफ खीची और चाय बनाने लगा। बाहर शाम घिर आयी थी। दिन की रोशनी सोचती-सी खडी थी—खामोश।

उनका प्याला उठाकर मैंने आगे बढाते हुए कहा—लीजिए···चाय···उन्होने गर्दन उठायी और आँखें खोलकर मेरी तरफ देखा। फिर चाय का प्याला लेकर धीरे से बोली—तुम आ गये तो बहुत अच्छा लग रहा है आज।

मैंने बिस्किट्स की प्लेट उनकी तरफ बढायी। उन्होंने उसमे से दो बिस्किट्स उठाकर अपनी प्लेट मे रख लिए और बोली—तुम्हारे लिए कुछ और बनवाये—सैन्डविच वगैरा ?

—नही, मैंने चाय का घूँट लेकर कहा—बस चाय काफी है।

हम लोग खामोशी से चाय पीने लगे। बीच-बीच मे मेरी नजरे उन पर टिक जाती, जब उनका ध्यान कही और होता।

वे कुछ सोच रही थी। रह-रहकर उनकी आँखें बहुत दूर कुछ देखने लगती। मैं पहली बार उनका चेहरा इतने नजदीक से देख रहा था। कमजोरी के कारण वह चेहरा बेहद नाजुक-सा हो गया था—काँच की तरह नाजुक और बिल्कुल साँचे मे ढले हुए से उनके नाक-नक्श बिल्कुल किसी गुड़िया के चेहरे की तरह लग रहे थे। और वैसा ही भाव इस वक्त उनके चेहरे पर था—भोला, आश्चर्यमिश्रित उतावली का-सा भाव। अभी तक मैंने हमेशा उन्हे साड़ी और ब्लाउज पहने ही देखा था, जिसमे, अब मुझे लगा कि वे अपनी उम्र से कुछ और बड़ी दिखती थी। इस समय उन्होंने आसमानी सिल्क का, आधी, ढीली आस्तीनोवाला एक लम्बा-सा गाउन पहन रक्खा था और उसके कारण उनका व्यक्तित्व बिल्कुल ही बदल गया था। इस वक्त उन्हे देखकर यह कहना मुश्किल था कि वे एक इतनी पढ़ी-लिखी डॉक्टर और बीच की उम्र की महिला थी। लग रहा था जैसे मैं कॉलिज

की किसी सीनियर लड़की के पास बैठा था जो बहुत कमजोर थी और अकेली। और उदास।

अचानक उनकी नजरें लौट आयीं और उन्होंने मेरी तरफ देखा। एक क्षण के लिए मैं सकपका-सा गया और फिर मैंने अपनी नजरें झुका लीं।

—क्या बात है, आदित्य? कुछ देर बाद उन्होंने बहुत ही धीमी आवाज में पूछा।

—क्या · ? मैंने चाय के प्याले पर नजरें जमाये हुए कहा—कुछ नहीं।

—क्या सोच रहे हो?

—कुछ भी नहीं ··, मैंने प्याला रखते हुए कहा और फिर मुस्कराकर बोला —सोच तो आप रही थीं कुछ, इसलिए मैं चुपचाप बैठा था?

—हाँ···। मालूम है, मैं क्या सोच रही थी?

—क्या?

—कि आखिर तुम इतने दिनों तक मुझसे मिलने क्यों नहीं आये, उनकी आवाज अब बदल गयी थी। शाम का अँधेरा चारों तरफ छा गया था।

—मैं कुछ क्षणों तक खामोश बैठा रहा, उसके बाद उनके हाथ से खाली प्याला लेते हुए बोला—आपको न अभी कुछ सोचना चाहिए और न ज्यादा बातचीत करनी चाहिए। चाय और बनाऊँ?

—तो फिर तुम क्यों नहीं बोलते कुछ? उन्होंने फौरन कहा—नहीं, चाय नहीं अब···कुछ बताते ही नहीं तुम तो···

—इतनी बातें तो बतायीं आपको!

—हाँ, लेकिन वो सब रवि और नीना के बारे में थीं। अपने बारे में तुमने कुछ नहीं बताया।

—जब एम्बुलेन्स तक के बारे में आपको मालूम है तो फिर बचा क्या? मैंने जान-बूझकर बातचीत का रुख मोड़ने के लिए मुस्कराते हुए कहा।

इसके पहले कि वे कुछ कहतीं नौकरानी एक शॉल लेकर आयी और उन्हें देकर ट्रॉली पर रखी चीजें समेटते हुए बोली—मेमसाब खाना?

—मुझे तो बस सूप चाहिए और एक टोस्ट। लेकिन ऐसा करो कि पनीर होगा न, उसका साग बना लो, दाल, चावल और परांठे। साब यहीं खाना खायेंगे।

—जी मेमसाब। और ट्रॉली लेकर वह चली गयी।

—कहो तो अण्डे भी बनवा दें? उसके जाने के बाद उन्होंने कुछ सोच कर मुझसे पूछा।

—मतलब? किसके लिए? मैंने चौंककर पूछा।

उन्होंने हँसते हुए कहा—तुम्हारे लिए भई और किसके लिए? और कौन है साहब यहाँ? खाना यहीं खा लो आज।

—लेकिन···

—लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। बताओ अण्डे बनवायें?

—नहीं, ठीक है।

उन्होंने अपनी गोद से पड़े शॉल को खोला और मैंने उठकर उसे पूरा खोलकर उन्हें अच्छी तरह से ओढ़ा दिया।

—थैंक्यू···उन्होंने धीरे-से कहा और फिर पूछा—तुम्हें नहीं लग रही सर्दी? सिर्फ स्वेटर पहने हुए हो।

—नहीं।

कुछ देर तक वे चुपचाप मेरी तरफ देखती रहीं। फिर बहुत सहज ढंग से बोलीं—हाँ, अब बताओ, क्या करते रहे इस बीच तुम? कुछ लिखा?

—नहीं, नया तो कुछ नहीं लिखा। बस दो पुरानी कहानियाँ ठीक की थीं, वे छप गयीं।

—वो तो कई महीने पहले छपी थीं न?

—हाँ, काफी दिन हो गये।

—मैंने पढ़ी थी वो। वो जो उस लड़कीवाली कहानी थी न जो उस आफिस में काम करती है···बहुत अच्छी कहानी थी वो, उन्होंने शॉल के सिरे को अपनी पतली-पतली उँगलियों में लपेटते हुए कहा—मैंने सोचा था कि उसके बारे में भी तुम्हें चिट्ठी लिखूँगी।

— ···

—तुमने पूछा नहीं कि लिखी क्यों नहीं मैंने?

—मुझे मालूम है।

—नहीं, तुम्हें नहीं मालूम। वह बात नहीं है। हालाँकि मुझे अजीब बहुत लगा कि तुमने जवाब तक नहीं दिया उस चिट्ठी का।

— ······

—अब भी नहीं पूछोगे?

—फायदा क्या पूछने का? मेरे मुँह से निकल गया—आप लिखती भी हैं तो मैं जवाब नहीं दे पाता···, मेरी आवाज मेरा साथ नहीं दे पायी।

उनकी नजरें मुझ पर रुक गयी थीं। कुछ क्षणों बाद वो कुर्सी में आगे की तरफ सरक आयीं और मेरी तरफ झुकते हुए उन्होंने बहुत ही महीन और धीमी आवाज में कहा—क्यों नहीं दे पाते? अरविन्द···। क्या बात है आखिर? तुम्हें मेरी कोई बात बुरी लग गयी? उस रोज पार्टी में भी तुम्हें देखकर मुझे बहुत तकलीफ हुई थी। कम-से-कम तुम्हें मुझे तो बताना चाहिए न···ऐसी आखिर कौन-सी बात है जो तुम मुझे नहीं बता सकते···और उन्होंने अपने दोनों हाथ बढ़ाकर मेरी हथेलियों को पकड़ लिया।

उनकी छोटी-छोटी हथेलियों के ठण्डेपन से मैं चौंक पड़ा। अनायास ही मैंने उन्हें अपनी हथेलियों से ढककर दबा लिया।

—है···, जब उनकी हथेलियों में कुछ गरमाहट लौटी तो मैंने पहली बार उनकी आँखों में देखकर बहुत सीधे ढंग से कहा—है, ऐसी एक बात!

क्षण-भर के लिए उनकी हथेलियाँ मेरे हाथों में कबूतरों की तरह आहिस्ता से फड़फड़ाईं और उनकी आँखों में एक अजीब-सी वीरानी छा गयी। अब वे मुझे नहीं देख रही थी। उनकी आँखें दूर आसमान तक फैल गयी थी और बाहर अब गहरा अँधेरा था।

बरामदे के एक दूसरे हिस्से में जलती हुई ट्यूबलाईट की दूधिया रोशनी की हल्की-सी उजास में हम दोनों बैठे थे।

—इसलिए···, उन्होंने पूछा—तुम मिलने नहीं आये मुझसे ?

मैंने नजरें झुका लीं।

—फिर अब—, कुछ देर बाद उन्होंने पूछा—एक हैरान-सी आवाज में—अब क्यों आ गये फिर ?

—मालूम नहीं।

खामोशी छा गयी।

मैं अब बिल्कुल खाली हो चुका था। वह आँधी जिसने महीनों बल्कि सालों, दिन-रात मुझे थपेड़े मार-मारकर बिल्कुल तोड़ दिया था अब रुक गयी थी और मेरी खाली साँसों की आवाज सुनती वहीं खड़ी थी। वह गन्ध जिसने पहले दिन से ही किसी हिरण की तरह मुझे बेचैन कर दिया था अब उस खाली वीरान सन्नाटे में भटक रही थी क्योंकि मेरे कदमों को उस थकान ने अब इस बुरी तरह से जकड़ लिया था कि मैं उसके पीछे अब और नहीं भाग सकता था—वह थकान जिसे भूल कर मैं अदिति से दूर भागता रहा था। अब कहीं कुछ नहीं था। मैं संज्ञाहीन-सा उनके सामने बैठा था। और वे चुप थीं।

बहुत देर बाद उनकी हथेलियाँ आहिस्ता से हिलीं और फिर उन्होंने मेरे हाथों को धीरे से सहलाया।

—मुझसे कहोगे नहीं वो बात ?

—नहीं अदिति···, मैंने बहुत सपाट स्वर में कहा—आइ एम रियली सॉरी ! तुम्हें दरअसल बीमार नहीं पड़ना चाहिए था।

उन्होंने कुछ नहीं कहा। बस उसी तरह अँधेरे में वो कबूतर मेरी हथेलियों में पता नहीं क्या ढूँढ़ते रहे। ठण्ड अब काफी बढ़ गयी थी। मैंने फिर खड़े होते हुए कहा—चलो, अब अन्दर चलो। बहुत ठण्ड हो गयी, और उसी तरह उनकी हथेलियों को थाम कर मैंने उन्हें उठाया। पहले की तरह ही मेरे कन्धे पर हाथ रखकर वो धीरे-धीरे आगे बढ़ीं। कमरे में आकर मैंने लाइट्स जलायीं और उन्हें बिस्तर पर बैठाकर बोला—अब आराम करो। बहुत थक गयी आज। मैं चलता हूँ अब।

—नहीं···, उन्होंने अभी तक मेरे हाथ छोड़े नहीं थे—बैठ जाओ।

उनकी आवाज में अब शाम-भर की सारी थकान उतर आयी थी।

मैंने कुर्सी पलँग के पास खींचते हुए कहा—अच्छा···लेकिन अब लेट जाओ। यू रियली नीड सम रेस्ट नाउ।

—हूँअअ···, उन्होने खोई हुई-सी आवाज मे कहा और फिर एक हाथ से अपना माथा सहलाते हुए बोली···आई ड्—, और वह लेट गयी।

मैंने उठकर उनकी शॉल हटाकर पैरों के पास पड़ी सफ़ेद फ़र की रजाई उन्हे ओढा दी।

इसके पहले कि मैं वापिस कुर्सी पर बैठता उन्होंने कहा—यहाँ बैठो···मेरे पास···और रजाई मे से अपनी बाँहें निकालकर उन्होंने मेरा हाथ अपनी हथेली मे ले लिया।

कुछ देर वे खामोशी से लेटी हुई छत की तरफ देखती रही। फिर धीरे-से उनके होंठ हिले—तुम तो पागल हो बिल्कुल···

मैं उसी तरह गर्दन झुकाये बैठा रहा।

यह अहसास मुझे बहुत देर बाद हुआ कि वे रो रही थी। जैसे ही मैंने गर्दन उठाकर उनकी तरफ देखा—एक क्षण के लिए मेरी आँखो मे उनका चेहरा धुँधला-सा गया, क्योंकि वह बिल्कुल गीला हो चुका था। बेशुमार आँसुओ के बावजूद वे बिल्कुल चुपचाप पड़ी थीं।

मुझे एकाएक कुछ नही सूझा। फिर जेब से रूमाल निकालकर मैंने उनके चेहरे को पोछा और धीरे-से बोला—रोओ मत···तुम्हारी तबियत ठीक नही है देखो—तुम···तुम···, उन्होने कुछ कहना चाहा लेकिन हिचकियो ने उनकी आवाज को परे धकेल दिया। करवट लेकर उन्होने अपना चेहरा दूसरी तरफ कर लिया और फिर किसी बच्ची की तरह सिसकने लगी।

मेरे भीतर कोई चीज बहुत ऊपर से गिरकर जैसे बिल्कुल चकनाचूर हो गयी। मैंने कभी सोचा भी नही था कि अदिति रो भी सकती हैं—इस तरह से बिलख सकती हैं। और वह भी मेरे कारण···?

औरत जब रोती है तो बहुत कुछ टूटता है—उसके भीतर और बाहर भी। एक दीवार-सी ढह जाती है जिसके एक तरफ वह सब होता है जिसे हम कब का अपनी जिन्दगी से निकालकर किसी बेकार चीज की तरह दीवार के उस तरफ फेंकते जाते हैं और दूसरी तरफ वह सब जिसे हम सीने से लगाये खड़े होते हैं—किसी बच्चे की तरह। और दीवार होती है औरत की वह शक्ति जिसे हम यूँ तो देवी के रूप मे पूजते है लेकिन हकीकतन उस शक्ति का इस्तेमाल हम बिजली के कुछ खटको की तरह करना चाहते हैं। अदिति के भीतर उस शाम उसी तरह की एक दीवार भरभरा कर ढह गयी थी लेकिन इसका पता मुझे बाद मे चला था।

अलबत्ता उस समय मैंने हर तरह से कोशिश की थी उन्हें समझाने की, चुप करने की, किसी भी तरह उन्हे सँभालने की लेकिन नतीजा कुछ नही निकला था। बिना कुछ कहे वे उसी तरह से रोती रही थीं। मैं पलंग के दूसरी तरफ जाकर उनके पास बैठ गया था और चुपचाप उनके आँसू पोछता रहा था।

आखिरकार उनकी हिचकियाँ बन्द हुईं और उन्होने मेरी तरफ देखा।

—कहाँ से आ गये तुम? बिल्कुल ठहरी हुई आवाज मे उन्होने पूछा और मेरे

चेहरे को अपने सीने पर झुकाकर मेरे बालों को सहलाते हुए जैसे अपने-आपमें कहने लगी—और ''हमारे पास अब है क्या ? अब तो सब छीन लिया हमसे''' एक बहाना-भर है अब तो जिन्दगी का, आदित्य'''और तुम वो भी छीन रहे हो हमसे ? और क्यों, आदित्य ? तुम्हें किस बात की कमी है ? हैंएए ? तुम जैसे लड़के के पीछे तो दुनिया भागेगी। और'''और क्या-क्या ढूँढने निकले हो तुम तो दुनिया मे'' वो सब चीज़ें ' सारी दुनिया तुम्हारा इन्तजार कर रही है आदित्य'''और तुम यहाँ खड़े हो ''? पागल कहीं के'''

मैंने कुछ नहीं कहा क्योंकि मैं कुछ नहीं सुन रहा था—सिवाय उन धड़कनों के जो मुझसे कुछ और कह रही थी। वह गन्ध जिसकी भीनी महक अभी तक मैं दूर से ही महसूस करता रहा था अब इतनी भारी और भरपूर होकर मेरे भीतर फैल गयी थी कि मैं बेहोश-सा पड़ा था।

बहुत घना-सा जंगल था। मैं एक टीले पर गहरी थकान की तन्द्रा में पड़ा था। एक गन्ध हवा की तरह बह रही थी। उस नीम-बेहोशी में मुझे रह-रहकर याद आता कि मुझे कुछ कहना है'' उस उदास, अकेली आवाज़ से जो कहीं आस-पास ही भटक रही है'' मुझे पुकारती हुई, मुझसे कुछ कहती हुई'' मैं तो सोचती थी कि तुम बहुत समझदार हो ' इतना कुछ किया है तुमने अपने बूते पर और ईश्वर ने तुम्हें क्या नहीं दिया' ऐसी-ऐसी बातों का मेल तुम में है कि कोई सोच भी नहीं सकता। फिर ''? क्या हो गया तुम्हें ये ? बोलो ? उन्होंने दोनों हाथों से मेरा चेहरा पकड़कर ऊपर उठाया और माथे पर झुक आये मेरे बालों को सहेजते हुए बोली—क्या हो गया ये आदित्य ?

—' ''

—तुम्हारे दिमाग मे कैसे आयी ये बात ?

—'''''

—कभी सोचा तुमने'''कि तुम्हारी अम्मां और बाबा को कितना बड़ा धक्का लगेगा ऐसी बात से ? उनके क्या-क्या सपने होंगे तुम्हें लेकर !

—'''

—तुम्हें यह भी नहीं लगा कि सब लोग क्या कहेंगे तुम्हारे बारे में'''और मेरे बारे में ?

—'''

—कभी सुनी है तुमने इस तरह की बात ?

—'''

—तुम्हें मालूम है कि मैं तुमसे कितनी बड़ी हूँ उम्र में ?

—'''

—लड़कियाँ कितनी दीवानी होंगी तुम पर। कोई लड़की नहीं मिली तुम्हें यह सब कहने को ?

—'''

—और मुझ मे तुमने क्या देख लिया ऐसा आदित्य—जो अपने आपको तबाह करने को तैयार हो?···, उनकी आवाज मे एक विवशता झुँझलाने लगी थी।

—···

—कोई बात हुई ये भला··? कुछ तुम्हें मेरे बारे मे मालूम नही है। कुछ भी तुम नही जानते अभी जिन्दगी के बारे मे। और यूँ तकलीफ दे रहे हो अपने आप-को! मुझसे कहा तक नही तुमने कभी?···और मै सोच रही थी कि तुम जिन्दगी की अच्छी-अच्छी चीजें चुनकर···मेरे पास आया करोगे कभी-कभी···और तुम आये इस तरह···, और काँपती हुई वह आवाज फिर भीग गयी।

आँसुओं के कारण उनकी आँखें हीरों की तरह झिलझिला रही थी। थकान और तनाव ने उस दुबले चेहरे को बिल्कुल पिघला दिया था और उसके कारण एक गहरे अपराध-बोध के सीखचे मेरे चारो तरफ खड़े हो गये।

आँसुओं की उन बूँदो को मैंने आहिस्ता से पोछा और उसके बाद अपनी नजरें झुकाकर यथासम्भव अपने आपको सम्हालते हुए कहा—आइ एम सॉरी। मैंने कभी नही सोचा था कि अब तुमसे मिलना होगा। तुम बीमार पड़ गयी और मैं अपने आपको रोक नही पाया। पता नही क्यों निकल आयी ये बात? लेकिन तुम्हें इतना रोना नही चाहिए। मैं क्या यहाँ इसलिए आया था? शायद मुझे नही आना चाहिए था। लेकिन अब तो गलती हो गयी। सच···मुझे माफ कर दो। और अब आराम करो तुम। मैं जाऊँगा अब।

उन्होंने अपने होठ भीचकर गर्दन हिलाई और मेरे कन्धों को पूरी ताकत से पकड़ लिया।

—प्लीज ··अदिति! तुम्हारी तबियत ठीक नही है, मैंने उनके माथे को सहलाते हुए कहा।

वे उसी तरह लेटी अपने आपको संयत करने की कोशिश कर रही थी। छट-पटाती हुई-सी।

—खाना खाकर जाना···ऐसे नही। कुछ देर बाद उन्होंने कहा। उनकी आवाज अभी तक काँप रही थी।

—···लेकिन एक शर्त है फिर? मैंने उनकी पलकों को सहलाते हुए कहा।

—क्या?

—अब रोने की नही होगी···बस चुपचाप लेटी रहो।

उन्होंने गर्दन हिलाई और अपनी आँखें मूँदते हुए कहा—हमें दवा दे दो··· वहाँ टेबिल पर रक्खी है। लाल वाला कैप्सूल है। मैंने उठकर पलंग के दूसरी तरफ रक्खी टेबिल पर से दवा उठायी और गिलास मे पानी लेकर उनके पास पहुँचा। गिलास उन्हें देकर उनकी गर्दन के नीचे हाथ डालकर मैंने उठाया और कैप्सूल खिलाकर फिर लिटा दिया।

कुछ देर तक वे चुपचाप अपनी बाँह मोड़कर अपनी आँखों को ढके पड़ी रहीं। फिर लगभग कराहते हुए बेहद लाचार-सी आवाज मे बोली—हमारा सिर दबा

दो ज़रा—मैं फिर से उनके पास बैठ गया और उनका सिर दबाने लगा।

क्या होता है वह जो जिन्दगी में नाउम्मीदी के घने जंगल के पार हमेशा बर्फ की चोटियों की तरह चमकता रहता है। घर-घर में वो सस्ते, रंगीन पोस्टर देखने को मिल जायेंगे जिनमें सामने एक बहुत ही खूबसूरत दरख्त खड़ा होता है—कचकचाकर फूला हुआ लाल—नारंगी या पीले रंग के फूल-पत्तियों का फैलाव। पीछे दूर तक फैला हुआ एक घना जगल होता है और उसके पीछे खड़े होते हैं पहाड़ और उनकी बर्फीली चोटियाँ। सिर्फ कारण ही नही कोई और चीज भी जरूर होती है उस पोस्टर के लिए लोगो की ललक के पीछे। कारण-के-कारण तो लोग अक्सर शिव-पार्वती या माँ-बाप, गाँधी या लेनिन, या दोस्तों या बच्चो की तस्वीरें अपने कमरों में टाँगते हैं। उस सस्ते पोस्टर को बहुत से ऐसे लोग भी यूँ ही, बिल्कुल अकारण खरीद लेते है जिनके पास घर तो छोड़िए एक कमरा तक नही होता। दूसरी तरफ वे लोग जो महलो या कोठियों में रहते हैं—उनके पास भी कोई कारण नहीं होता दुनिया-भर के मशहूर चित्रकारो में से सिर्फ सेजाँ या वॉन गॉफ को ही चुनने का। वह दरअसल एक रहस्य है—एक बहुत सूक्ष्म रहस्य आदमी की असलियत के एक अंश का। एक नामालूम-सा चोर दरवाजा है आदमी के भीतर उतरने का, उस तहखाने तक पहुँचने का जहाँ हर आदमी अपनी जिन्दगी का पूरा नक्शा उस तहखाने के फर्श पर खोदकर रखता है। पत्थर में खुदी होती है यह बात कई बार कि आदमी जिन्दगी भी ठीक उस सस्ते पोस्टरवाली तस्वीर की तरह चाहता है। बर्फ या उन खूबसूरत चोटियो से उसे कोई मतलब नही होता। ज्यादातर लोग जिन्दगी का पूरा सफर तय कर लेते है बिना बर्फ देखे और बिना किसी चोटी पर पहुँचे। पीछे फैले हुए जंगल से उन्हे डर लगता है क्योंकि उन्हे बताया जाता है कि जंगल मे एक-से-एक खूँखार जानवर रहते हैं। उनका सारा सरोकार बस सामने खड़ा वह कचकचाकर फूला हुआ, खूबसूरत दरख्त होता है···हालाँकि उसे भी वे किसी दूसरे मौसम मे बिल्कुल भूल जाते हैं। लेकिन तस्वीर में सब चीजें मौजूद होनी चाहिए वर्ना वह खूबसूरत नही लगेगी। और क्या पता कभी हिम्मत आ ही जाये जगल में घुसने की। बर्फ और चोटियो को छूने की। उनमें नही तो घर के किसी बच्चे में···। मन-ही-मन वे सब जानते है कि खूबसूरत क्या है। शायद चाहते भी हैं उसी नक्शे के हिसाब से जीना। लेकिन नाउम्मीदी का वह जगल···

यह ठीक है, अदिति से मेरी मुलाकात इसी जंगल में हुई थी। यह भी ठीक है कि एक समझदार और अनुभवी व्यक्ति की तरह वे मुझे रास्ता बता रही थी, इस जगल से निकलने का···उस तरफ जहाँ लोग थे, बस्ती थी, रोशनी थी और तरह-तरह की सुविधाएँ थीं। प्रकृति और तर्क के विधान में सम्बन्धो का अमृत था। और यह भी ठीक है जो वे मुझसे कह रही थी कि उन चोटियों पर बर्फ थी और वहाँ जाने का कोई फायदा नही था और यह भी कि वहाँ पहुँचना असम्भव था। लेकिन वह जंगल तो मुझे पार करना ही था। लोग, बस्ती, रोशनी और सुविधाएँ मेरे लिए अभी तक अजनबी रहे थे ···मैं रहाजिर। अब उनमें मेरी दिलचस्पी इसलिए भी

नही थी कि मैंने उनके बिना भी जीना सीख लिया था—एक बहुत छोटे-से घेरे मे। इस दौरान मैं यह भी अच्छी तरह से देख चुका था कि उन सब चीजो के पीछे भागना वक्त बरबाद करना था। वे सब-की-सब चीजें कही नही भागती, वही-की-वही रहती हैं—इस इन्तजार मे कि कब आप उनमे जरा-सी भी दिलचस्पी लें।

मैं दरअसल उस रास्ते से अब वापिस नही लौट सकता था क्योंकि रास्ता मुझे मालूम नहीं था और अदिति के साथ आगे बढ़ना तो दूर, लौटना भी सम्भव नही था।

मेरी उँगलियाँ अब जैसे अपने मन से उनके रूखे बालो मे घूम रही थी। उनके चेहरे पर अब तनाव नही था बल्कि उसकी जगह एक ऐसे निरीह भोलेपन का भाव था जो मैंने पहले कभी नही देखा था। सूखे-से होंठ थोड़ा-सा खुले हुए थे—साँसो की धीमी लय से बेखबर। यह कहना मुश्किल था कि वे सो रही थी या नही। मैंने पहली बार अब उस चेहरे को गौर से देखा जो अभी तक बस मेरी याददाश्त में झिलमिलाता-भर रहा था और जिसे मैंने आज अकारण ही इतना रुलाया था।

मुझे पहली बार लगा कि उन्होंने जो कुछ भी मुझसे कहा था वह न सिर्फ ठीक ही था बल्कि एक ऐसा सच था जिससे कोई भी इन्कार नही कर सकता। मुझे इस बात का भी अब पहली बार अहसास हुआ कि अपनी बेवकूफी के कारण मैंने उन पर आज बहुत ज्यादती की थी।

उसी क्षण अचानक उनकी आँखें खुल गयी। कुछ पल वे मेरी तरफ अवाक्-सी देखती रही और फिर उन्होने मुझे अपने ऊपर झुका लिया। उनके सूखे-से होंठो ने भी फिर उसी तरह के आवेश मे न जाने मुझसे क्या-क्या कहा। फर्क बस यह था कि इस बार वे रोयी नही।

मेरे होंठ बार-बार उन्हें चुप कराने की कोशिश करते लेकिन साँसों का एक तूफान-सा था जिसमे उनके होंठ सूखे पत्तो की तरह फड़फड़ा रहे थे। और वह जंगल···हैरान था इस अप्रत्याशित तूफान से···

उस आँधी ने उन्हें फिर से बेदम कर दिया। काफी देर तक वे हाँफती-सी पड़ी रही और मैं उनके हाथों को सहलाता वही बैठा रहा।

कमरे के बाहर से नौकरानी की आवाज आयी—मेमसाब खाना तैयार है।

—कह दो यही ले आयेगी, उन्होंने मुझसे कहा और मैंने उठकर दरवाजे के पास जाकर नौकरानी को वह बताया। लौटकर मैंने उन्हे उठाकर तकियो के सहारे बैठाया और फिर कुर्सी पर आकर बैठ गया। उसी बीच नौकरानी खाने की ट्रॉली ले आयी। पलंग के पीछे रखी प्लास्टिक की एक छोटी डेस्कनुमा टेबिल उसने पलंग पर ही अदिति के सामने रख दी और फिर हम दोनों का खाना लगाकर वह चली गयी।

खाने के दौरान बस उन्होंने एक बार मुझसे पूछा—ठीक बना है सबकुछ?

—हाँ।

नौकरानी जब ट्रॉली वापिस ले जाने को आयी तो उन्होंने कहा—अब तू भी

खा लो, लीला। और कोई काम नहीं है अब। दूध रख दिया न मेरा?

—हाँ मेमसाब···ये रखा थर्मस और ये पानी भी रख दिया है, और वह कमरे से बाहर चली गयी।

—तुम्हें कॉफी तो नहीं चाहिए? उसके जाते ही जैसे उन्हें याद आया।

—नहीं।

—अब तो तुम आओगे नहीं···। कुछ देर बाद उन्होंने कहा।

—हाँ·· यही ठीक होगा।

—···

—तुमने भी तो यही समझाया है। है न?

—···

—मैं तुम्हें परेशान नहीं करना चाहता।

—···

—सच है कि मुझे तुम्हारे बारे में कुछ नहीं मालूम और इसलिए क्या हक है मुझे कि···, और मैं चुप हो गया। अचानक मुझे लगा कि क्या मतलब था कुछ भी कहने का। कुछ भी बताने का उन्हें।

वे अपलक मेरी तरफ देख रही थीं। जब मैं चुप हो गया तो उन्होंने रुक-रुककर कहा—तुम समझते हो कि ··तुम मुझे परेशान नहीं करोगे तो···और फिर तुम? तुम जो तकलीफ उठाओगे?

—देखेंगे·· शायद थोड़े दिनों में आ ही जायें अक्ल।

वे चुप हो गयीं और फिर पलँग के सिरहाने से टिककर बैठ गयीं।—अब सो जाओ तुम, आखिरकार मैंने उठते हुए कहा—मैं अब चलता हूँ।—हाँओ···, कुछ देर बाद उन्होंने गर्दन झुकाकर कहा—तुम जाओ अब।···अब हम ठीक हैं।

मैं मुड़कर दरवाजे की तरफ बढ़ा। दरवाजे पर आकर मेरे कदम एकबारगी रुक गये। मैंने मुड़कर देखा अदिति वहीं बैठी थीं—पलँग के सिरहाने। गर्दन झुकाये वे रो रही थीं।

मैं कमरे से बाहर निकल आया।

कोठी से बाहर निकलकर मैं धीरे-धीरे फुटपाथ पर चलने लगा। फुटपाथ के किनारे लगे बड़े-बड़े जामुन के दरख्त चुपचाप खड़े थे मानो उन्होंने भी सबकुछ सुना था। ओस गिर रही थी—भीतर तक···सब चीजों को नम-सा करती हुई।

घर जाने का बिल्कुल भी मन नहीं था। कहीं भी जाने को मन नहीं था। और जब ऐसा होता है तो पैर आवारा हो जाते हैं। देर रात तक मेरा ध्यान नहीं गया कि मेरे पैर मुझे कहाँ-कहाँ भटका रहे थे। रह-रहकर मेरी आँखों के सामने अदिति की आकृति घूम जाती। बार-बार मुझे लगता कि मुझे वापिस उनके पास चले जाना चाहिए। वे रो रही होंगी। लेकिन शरीर और उसका एक-एक अंग यदि डरता है तो सिर्फ मन से। और वह खयाल आते ही मेरे पैर घबराहट में भागने-सा लगते।

वह सिलसिला फिर हफ्तों चला था। यूँ मैंने अगले ही दिन से अपने-आपको न जाने किन-किन चीजों से बाँध लिया था। घण्टो मैं कॉलिज लायब्रेरी मे बैठा रहता। पढता भी था लेकिन ज्यादातर वक्त किताब के पन्नो पर से अदिति का चेहरा मिटाने की कोशिश करता रहता। इतवार और दूसरी छुट्टियों के दिन टूरिस्ट गाइड का काम मैंने फिर करना शुरू कर दिया था। उन्ही दिनो प्रगति मैदान मे बहुत बडी प्रदर्शनी शुरू हो गयी थी। एक विदेशी फर्म के स्टाल मे महीने भर के लिए मैंने स्टाल गाइड का भी काम ले लिया था जिसके कारण शाम चार बजे से रात दस बजे तक का वक्त उस भीड-भड़क्के मे ही खो जाता था। प्रदर्शनी से छूटकर रात को मैं अक्सर मथुरा रोड से घर तक पैदल ही आता था क्योंकि धीरे-धीरे मैं उस स्थिति से अब घबरा गया था कि घर आकर जब मुझे अगला दिन सम्हालने के लिए नीद की सख्त जरूरत होती थी तो नीद बिस्तर के सिरहाने गर्दन झुकाये रोती बैठी होती और मैं उसे विवश और असहाय-सा देखता रहता। उससे बचने का बस एक यही तरीका मेरे पास बचा था कि अपना शरीर थकान के हवाले कर दूँ।

कुछ दिनो बाद रवि से जब मुलाकात हुई तो उसने बताया कि वह अगले दिन ही अदिति से मिलने गया था। बुखार तो उन्हें नही था लेकिन बेहद कमजोर लग रही थीं वे।

उसके बाद भी रवि कई बार उनके यहाँ गया था। वही मुझे बताता कि उनकी तबियत धीरे-धीरे सुधर रही है'''उन्होंने अब क्लीनिक जाना शुरू कर दिया है'''अब वे बिल्कुल ठीक है। हर बार मुझे लगता कि रवि मुझसे कहेगा कि उन्होंने मुझे बुलाया है, कोई सन्देशा भेजा है, टेलीफोन पर बात करने को कहा है '''लेकिन रवि ने किसी बार भी ऐसा कुछ नही कहा। उसके बाद वे खबरें मिलनी भी बन्द हो गयी क्योंकि वे ठीक हो गयी थी और रवि ने जाना छोड दिया था।

कई बार मुझे लगा कि रवि जान-बूझकर मुझसे उनके बारे मे कोई बात नही करता। शायद उसे कुछ अन्दाजा है उस सबका जो इस बीच हुआ है। लेकिन मेरे लिए भी उस बात को निकालने का कोई मौका नही था।

सुधीर अलबत्ता एक दिन प्रदर्शनी मे नजर आये थे किसी लडकी के साथ। मैं जान-बूझकर उनके सामने नही पडा। पता नही क्यो मुझे उनसे नफरत-सी हो गयी थी। अदिति से उस मुलाकात की तकलीफ इस बात से और असहनीय हो जाती थी कि उस दिन मे सुधीर भी शामिल थे। इस बीच कितनी ही बार मैंने सोचा था इस बात को कि न तो सुधीर ने मुझे यह बताया था कि अदिति बीमार थी—शायद उन्हें खुद भी मालूम नही था और न उस सारी शाम मेरे और अदिति के बीच सुधीर का नाम एक बार भी आया। किसी के लिए भी यह सोचना स्वाभाविक होता कि उन दोनो के बीच कुछ भी ऐसा नही बचा था जिसके सहारे एक दूसरे का नाम भी ले सकें। सुधीर के बारे मे मैंने अक्सर सुना था कि औरतें उनकी कमजोरी थी। उनके साहित्यकार मित्र भी बातचीत के दौरान इस विषय पर बहुत घटिया

लतीफों और फिकरों के जरिये उन्हें छेड़ा करते थे। यूनीवर्सिटी में भी उनको और कुछ हिन्दी प्राध्यापिकाओं व शोधछात्राओं को लेकर लोग तरह-तरह के मजाक करते थे। स्वयं मेघना ने मुझे अपनी एक दोस्त से मिलवाया था जो सुधीर मेहता की पहली पत्नी की भान्जी थी और उसने उसके बारे मे कुछ ऐसी बातें बतायी थी कि मेरा सिर शर्म से झुक गया था। हालाँकि उस लड़की से भी अन्ततः मैंने वही कहा था जो अपने आपसे—किन्ही भी दो लोगो के बीच आपसी सम्बन्धो के बारे में कुछ भी कहना मुश्किल है क्योंकि हम दरअसल न तो व्यक्तियों को ही जान पाते हैं और न उन सम्बन्धो की पृष्ठभूमि को। अलबत्ता यह जरूर है कि खराब से खराब सम्बन्धो मे भी सामान्य शिष्टाचार तो बरता ही जा सकता है। हो सकता है सुधीर के पास कुछ ऐसे कारण हो और किसी स्थिति में वे अपने आप पर काबू खो बैठे हो।

—हाँ ''लेकिन, सुधीर एक लेखक हैं'''ही इज एन इन्टैलैक्चुअल आर्टिस्ट''' ही इज नो रिक्शावाला और ताँगेवाला! मेघना ने कहा था—आखिर कोई तो डिगनिटी होती है एक आर्टिस्ट मे।

—जरूर होती है मेघना लेकिन हम लोग आखिर सुधीर के बारे मे क्या जानते हैं? मैं उनका बचाव नही कर रहा, उसका कोई कारण भी नही है मेरे पास लेकिन बिना पूरी बात जाने मुझे कुछ कहना ज्यादती लगती है। और लेखक या इन्टैलैक्चुअल से उम्मीद जरूर हम कर सकते हैं डिगनिटी की लेकिन वह सिविक्स का टीचर हो यह तो जरूरी नही। आखिर आदमी ही होता है वह भी। टॉलस्टाय थे तो बाल्जाक भी थे। ऐसा कोई नियम तो नही हो सकता—वह बहस काफी देर तक चली थी। मेघना और उसकी दोस्त काफी उत्तेजित हो गयी थी और आखिरकार मुझे लगा था कि मै नाहक ही सुधीर की पैरवी कर रहा था—क्योंकि मेघना की दोस्त के पास शायद सबूत थे ही और मेघना को किसी व्यवहारकुशल जज की तरह उन सबूतो पर पूरा विश्वास था।

बहरहाल, सुधीर से मिलने का न तो मन ही था और न ही उसका कोई औचित्य फिलहाल मुझे दिखता था। इस बीच मैंने कुछ नही लिखा था।

मेघना अपनी पढाई मे लग गयी थी इसलिए उससे मिलना भी बहुत कम हो गया था और यह अच्छा ही था।

जिन्दगी भाग तो पूरी रफ्तार से रही थी लेकिन रेल जैसे बोगदे मे थी। कुछ सूझ नही रहा था।

इसी उलझन में इम्तहान आ गये और खत्म भी हो गये। बस वही वक्त एक ऐसा था जिसने बाकी सब चीजो की एक पोटली-सी बाँधकर अलग रख दी। उसका एक और फायदा हुआ। जैसे ही इम्तहानो का दबाव खत्म हुआ मैंने पाया कि मेरे पास एक ऐसी मोहलत थी कि मैं कुछ दिनों के लिए दिल्ली से बाहर जा सकता था। इत्तफाक से उन्ही दिनों मुझे रवि ने बताया कि मिसेज रॉड्रिग्स को किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश थी जो कल्चरल लीग के मेहमान एक विदेशी डेलीगेशन का

उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और राजस्थान का पर्यटन कार्यक्रम सँभाल सकें।

—जोरदार असाइन्मेण्ट है सेनापति, रवि ने अपनी शोख मुस्कराहट के साथ आँख मारते हुए कहा था—जौहर दिखलाने का इससे बढ़िया मौका जिन्दगी में फिर नहीं मिलेगा। और अगर नाकामयाब रहो तो चित्तौड़गढ़ तो जाओगे ही—बहादुर मर्द न सही बहादुर औरतों की तरह चिता में कूदने का जौहर तो दिखला ही सकते हो।

—उसका मौका भी शायद ही मिले···मिसेज रॉड्रिग्स के रहते, मैंने हँसते हुए कहा।

—बकवास मत कर यार! देख तीन हफ्ते का टूर है। कुल मिलाकर दो-तीन हजार रुपये का काम है। दुनिया देखने को मिलेगी सो अलग। ऐतिहासिक इमारतों के चमगादड़ तो तुम हो ही। डेलीगेशन से मैं मिल चुका हूँ—हमारे ही होटल में ठहराया गया है। मजेदार लोग हैं। तू तो बस अपना बिस्तर बाँध और हनुमानजी का नाम लेकर चढ़ जा बस पर···

मुझे भी लगा कि वह एक ऐसा मौका था—जिसकी सचमुच मुझे तलाश थी और जरूरत भी। मिसेज रॉड्रिग्स से जब मैंने टेलीफोन पर बात की तो वह इतनी खुश हो गयी कि उसी शाम उन्होंने मुझे उस डिनर पर आमन्त्रित कर लिया जो डेलीगेशन के स्वागत में एक सदस्य देश के दूतावास द्वारा दिया जा रहा था।

डेलीगेशन में कई लोग बड़े दिलचस्प थे। एक अमरीकन समाजशास्त्री थे जो काफी पहले कई साल राजस्थान में काम कर चुके थे—एक अंग्रेज लेखिका थी जिनकी पहली किताब हाल ही में छपी थी। एक पेण्टर लड़की थी जो दस लोगों के उस डेलीगेशन में शायद सबसे कम उम्र की थी। लोग सचमुच दिलचस्प थे। मिसेज रॉड्रिग्स को शायद रवि ने मेरे कहानियाँ लिखने के बारे में भी बता दिया था क्योंकि उन्होंने सब लोगों से परिचय करवाते वक्त उस बात को काफी प्राथमिकता देते हुए बताया था। उसके कारण फायदा यह हुआ कि मैं सिर्फ गाइड की बाहरी हैसियत से बचकर उन लोगों में शामिल-सा कर लिया गया। अमरीकी समाजशास्त्री डा. ब्राउन खासतौर पर मुझसे काफी देर तक बड़ी दिलचस्प बातें करते रहे।

तीसरे दिन हम लोग एक एअर कन्डीशंड बस में सवार हो उस टूर पर निकल पड़े।

तीन हफ्ते फिर बहुत अच्छे बीते थे और बेहद व्यस्त भी। विदेशी लोगों के साथ रहने का वह मेरा पहला अनुभव था। मुझे पहली बार यह भी महसूस हुआ कि सिर्फ उन लोगों को छोड़कर, जो हिन्दुस्तान रह चुके हैं, अधिकांश विदेशियों की इस मुल्क के बारे में अजीबो-गरीब धारणाएँ थीं। इतनी बेतुकी लगती थी यह बात कि एक तरफ तो वे यह मानते थे कि वह देश दुनिया की शायद प्राचीनतम और अत्यन्त विकसित सभ्यता का अंश था और सारी दुनिया इसकी तरफ आध्यात्मिक प्रेरणा के लिए ललक से देखती थी। संस्कृत भाषा, वेद, उपनिषद्, तन्त्र,

ज्योतिष—इन सब बातों के बारे में उन्होंने सुन रखा था। लेकिन दूसरी तरफ व्यावहारिक स्तर पर उनमें से ज्यादातर लोगों का दृष्टिकोण इस मुल्क के प्रति एक सस्ते कौतूहल-भर का था। न उन्हें यहाँ की गरीबी समझ में आती थी और न ही यह हकीकत कि जिस मुल्क में अधिकांश लोग जानवरों से भी बदतर हालत में रहते हैं उसमें संस्कृति और कला—विशेष रूप से स्थापत्य कला के ऐसे दुर्लभ उदाहरण क्यों और कैसे सम्भव हुए। दिल्ली और उसके आसपास-भर घूमनेवाले लोग इससे एक दिलचस्प नतीजा यह भी निकाल लेते थे कि यहाँ जो कुछ भी महत्वपूर्ण और दर्शनीय है वह उन विदेशी शासकों की देन है जो बाहर से आये थे। अंग्रेज लेखिका ने पहले हफ्ते के दौरान कुछ-कुछ ऐसा ही नतीजा निकाला था। बातचीत के दौरान डा. ब्राउन उन्हें अक्सर अपनी बुजुर्ग मुस्कराहट के साथ यह समझाने की कोशिश करते कि ऐसा नहीं है और वास्तव में वे सारी चीज को एक कमजोर टेलिस्कोप से देख रही हैं जिसकी पहुँच सिर्फ अंग्रेजों और मुगलों के इतिहास तक ही है। डा. ब्राउन का एक बहुत प्रिय वाक्य था जिसे वे बहुत भोलेपन से सोचते हुए अंग्रेजी में कहते थे—सभ्यताएँ दरख्तों की तरह होती हैं—पुराने और बूढ़े दरख्त ही बता सकते हैं कि उनके नन्हें पौधों की सही जरूरतें क्या हैं।…लेकिन अफसोस कि हर मौसम में बहुत से पुराने दरख्त खत्म हो जाते हैं और कई बार कुछ नन्हें पौधों को दोहरा काम करना पड़ता है…

उनकी बात सुनकर मुझे अनायास ही रवि का खयाल आ जाता…

मेरा बहुत मन होता डा. ब्राउन से बात करने का लेकिन वह लेखिका उन्हें छोड़ती ही नहीं थी। उस आदमी की बातें सुनकर मुझे लगता कि मुझे विज्ञान के बजाय समाजशास्त्र का विद्यार्थी होना चाहिए था। बचपन में अगर कोई होता यह सब चीजें मेरे सामने रखकर मुझे सुझानेवाला तो शायद मैं यही करता। लेकिन बचपन में तो सिर्फ बाबा थे और उन्हें कभी यह भी मालूम नहीं रहा कि मैं स्कूल में क्या-क्या विषय पढ़ रहा हूँ। स्कूलों का हिसाब इतना अनपढ़ और मूर्खतापूर्ण होता है कि बच्चों की प्रवृत्तियों का उसके सामने कोई मतलब नहीं होता। यह नियम कि यदि स्कूल में आपके नम्बर अच्छे आते हैं तो आप साइंस पढ़ेंगे और यदि आप कमजोर विद्यार्थी हैं तो आर्ट्स इत्यादि, न सिर्फ एक बड़ा सामाजिक अपराध ही है बल्कि शायद एक ऐसी कुल्हाड़ी है जो स्कूल के दिनों की उस कच्ची उम्र में ही हर बच्चे के हाथ में थमा दी जाती है। वे ही बच्चे बड़े होकर उस कुल्हाड़ी से जंगल काटते हैं, इमारतें तोड़ते हैं, जानवरों की निर्मम हत्या करते हैं और यहाँ तक कि आदमी तक को हलाल कर देते हैं।

कितनी ही चीजें बिल्कुल नये सिरे से समझ में आयी थीं इन तीन हफ्तों के दौरान। वह पेन्टर लड़की मुझे आज भी याद है।

आज भी दोस्तों के नाम पर जो लोग मेरी जिन्दगी में हैं उनमें शायद सबसे पहला नाम उसी का है। हालाँकि सालों हो जाते हैं उससे मिले हुए, ऐसी कोई ख़तो-किताबत भी नहीं चलती हम दोनों के बीच और न ही एक दूसरे के सुख-दुख

मे हम शरीक हो पाते लेकिन दोस्ती चीज भी ऐसी ही होती है—किसी पुराने घर की तरह, जिसे आप किसी नये और बेहतर मकान के लिए छोड भी दें, कोई दूसरा भी उसमे आकर रहने लगे लेकिन उस घर के बारे में जो आपको याद है वह किसी और को नहीं हो सकता।

—मेरा नाम विल्मा है, उसने अपने बारे में पहली बात बताते हुए कहा था —'डब्लू' से शुरू होनेवाला नहीं बल्कि 'वी' से'''।

यह बातचीत बस में हुई थी—टूर शुरू होते ही। हम लोग दिल्ली से बाहर निकले ही थे कि वह बस के अगले हिस्से से उठकर पीछे निकल आयी व मेरे बराबरवाली खाली सीट पर आकर बैठ गयी और बातें करने लगी।

अपनी टूटी-फूटी और बेहद मजेदार अंग्रेजी में उसने बातचीत के दौरान बताया—मेरे पिता जर्मन थे और माँ स्पेनिश। दूसरे महायुद्ध मे बस एक यही अच्छी बात हुई थी कि नरक जैसे माहौल में भी दो बहुत सुन्दर और प्यार करनेवाले लोग एक दूसरे से मिल गये थे—मेरी माँ और डैडी। डैडी युद्ध में बम गिरानेवाले हवाई जहाज चलाते थे और माँ प्यानो बजाती थी। और मुझे न हवाई जहाज अच्छा लगता न प्यानो। ये एक बहुत बडी अजीब बात है लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ता। हालांकि इससे भी कोई फर्क नहीं पडता कि मैं चित्र बनाती हूँ। डैडी कहते थे कि फर्क बस एक बात से पड़ता है—प्यार करने से। माँ और डैडी एक दूसरे से इतना प्यार करते थे कि दोनों एक साथ ही खत्म हो गये—एक हवाई जहाज के एक्सीडेण्ट में। मैं तब दस साल की थी। असल में वे दोनों हैम्बर्ग से मुझे लेने ही आ रहे थे स्पेन—जहाँ मैं अपनी दादी के पास छुट्टियाँ मना रही थी। फिर मैं दादी के पास ही रह गयी। जर्मनी जाने का मेरा मन ही नहीं होता।

मैं अवाक्-सा उसकी बातें सुन रहा था। एक अजनबी से वे सब बातें करते वक्त उसके चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी। और ऐसा भी नहीं था कि वह बिलकुल ही असम्पृक्त भाव से यह सब कह रही थी। जिस बात ने अपनी सुन्दरता की तरफ मेरा ध्यान बरबस ही खींच लिया था वह यह थी कि विल्मा वह सबकुछ एक बहुत ही पवित्र विश्वास के साथ एक अजनबी को बता रही थी—यह विश्वास कि इन्सानों के बीच और कुछ हो या न हो एक दूसरे को एक ईमानदार, सहज और स्वाभाविक ढंग से जानने की उत्सुकता जरूर होती है। वह एक दूसरे देश मे अजनबी लोगों के बीच थी। इससे सुन्दर और बहादुर तरीका और क्या हो सकता है ऐसी स्थिति में लोगों का विश्वास प्राप्त करने का कि आदमी पहले खुद अपने बारे में सहज ढंग से सबकुछ बता दे।

—तुम्हारा नाम मैं कई बार सुन चुकी हूँ लोगो से लेकिन मैं उसे बोल ही नहीं पाती, अपनी बात खत्म करने के बाद उसने मुझसे कहा।

—आदित्य'''आदित्य कुमार।

—ऐदित'''एदिट'''एदिता''', वह बार-बार बोलते हुए उसके सही उच्चारण की कोशिश करती रही। कुछ ही क्षणों में ठीक-ठीक तरीके से उसे कई

बार बोलने के बाद उसने कहा—यैस आइ गैट इट नाउ···एदित्या। (अब आ गया मुझे !)

—दैट्स नॉट बैड, मैं मुस्करा पड़ा।

—गुड ! उसने खुश होकर पूछा—लेकिन हिन्दू नामों का तो मतलब भी होता है न। तुम्हारे नाम का क्या अर्थ है ?

—सूर्य···द सन, मैंने बताया।

—ओह···एक्सीलैण्ट। और कुमार का मतलब ?

—कुमार कहते हैं बेटे को।

—ओह···मतलब कि सूरज का बेटा। बहुत अच्छा नाम है तुम्हारा तो, वह मुस्कराकर बोली—मेरे नाम का तो कोई मतलब ही नहीं है।

—क्यों ? तो फिर नाम कैसे बना ?

—क्या पता ? लेकिन विल्मा का कोई मतलब नहीं है यह मैं अच्छी तरह से जानती हूँ, उसने कहा और कुछ रुककर बोली—शायद ऐसा होता होगा कि पहले जब आदमी का ज्ञान-विज्ञान बहुत विकसित नहीं था तो शब्दों के अर्थ के बजाय उनकी आवाज और लय महत्वपूर्ण होती होगी। तुम्हें नहीं लगता ऐसा ?

—हो सकता है···, मैंने कहा—लेकिन तब तो तुम्हारा नाम बहुत अच्छा है। एक लय है इसमें।

—तुम्हें लगता है ऐसा ? उसने बहुत भोलेपन और उतावली से पूछा और फिर मेरी 'हाँ' सुनने के बाद हसने लगी—ओह···यू आर सो नाइस···अच्छा हुआ जो मैं तुमसे बात करने आ गयी यहाँ, और उसके बाद उसने मेरे कान के पास अपना मुँह रखकर धीरे-से कहा—सच, मैं तो बिल्कुल फँस गयी हूँ इन तरह-तरह के नमूनों में···सिवाय उस बूढ़े अमरीकन के सब लंगूर हैं और वह अंग्रेज बन्दरिया ···बेचारी औरत !

मैं अपनी हँसी नहीं रोक पाया और नतीजा यह हुआ कि हम दोनों इतने ज़ोर से खिलखिला पड़े कि आगे बैठे लोग और मिसेज रॉड्रिग्स ने हमें मुड़कर किंचित् आश्चर्य से देखा।

—मालूम है कल रात मैंने एक ड्रॉइंग बनायी ? हँसी खत्म होने के बाद मुझसे धीमी आवाज में कहा—तुम्हें दिखाऊँगी बाद में···बहुत मजेदार है हालांकि तुम शायद कहोगे कि मैं एक गन्दे दिमागवाली लड़की हूँ लेकिन सच, मैं अपने आपको रोक ही नहीं पायी उसे बनाने से !

कुछ लोग होते हैं जिनसे मिलकर लगता है कि जैसे हम किसी बहुत ही सुव्यवस्थित लायब्रेरी में मौजूद हों। दुनिया-भर की बातों, चीजों और मुद्दों को एक सुनिश्चित और साफ-सुथरे ढंग से देखा जा सकता है, उन पर सोचा जा सकता है, बातचीत की जा सकती है। उलझन, अनिश्चय और हिचक जैसे शब्द यदि उन लोगों में मौजूद भी होते हैं तो कहीं बहुत भीतर, बहुत गहरे जहाँ शायद ही कभी कोई पहुँचता है।

मथुरा पहुँचने तक हम दोनों लगातार बातें करते रहे···सब लोगों से बेखबर। विल्मा में कुछ ऐसा था, जिसके कारण मुझे स्कूल के दिनों की याद आ गयी थी। साथ ही बहुत दिनों बाद मुझे कोई ऐसा व्यक्ति मिला था जो सहज था, उन्मुक्त और जिन्दादिल। ऊपर से एक तो उसकी जर्मन, स्पेनिश और फ्रेंच शब्दों से मिली-जुली अंग्रेजी और दूसरे बड़े अचानक और बेतुके ढंग से बातचीत के विषय को बदल देने की आदत मुझे बिल्कुल बांधे-सा रहती थी।

मथुरा पहुँचकर हम लोग दोपहर तक मन्दिर इत्यादि देखते रहे। उस बीच क्योंकि मुझे ग्रुप को गाइड करने के साथ ही और भी कई काम—मसलन खाने इत्यादि का इन्तजाम, अगले पड़ाव यानी आगरा से टेलीफोन द्वारा सम्पर्क इत्यादि—करने थे इसलिए मैं उनमें व्यस्त हो गया और डेलीगेशन के सदस्य अपने-अपने ध्यान में।

सबसे आरामदेह और पुरसकून बात इस टूर पर यह थी कि मिसेज रॉड्रिग्स शुरू से ही साम ह्यू ज नामक एक लम्बे-चौड़े अफ्रीकी राजनयिक में काफी दिलचस्पी से ले रही थी। पूरे टूर के दौरान ये दो जोड़े ऐसे थे—डा. ब्राउन और अंग्रेज लेखिका व मिसेज रॉड्रिग्स और साम जो ग्रुप में रहते हुए भी शायद ही कभी उसमें शामिल रहे हों। मौका मिलते ही ये लोग एक-दूसरे के साथ जाकर अलग बैठ जाते। विल्मा का हाल उल्टा था। उन दो जोड़ों को छोड़कर वह डेलीगेशन के बाकी सभी सदस्यों के साथ हँसती-बोलती रहती। अलबत्ता जैसे ही मैं अपने काम निबटा लेता वह मेरे पास आकर बड़े मजेदार ढंग से गाने-सा लगती—अप एंड अबाउट···राइज एंड शाइन···द सन इज शाइन···। (जागो और चलो···उठो और चमको···सूर्य तुम्हारा है।)

उसने बताया था कि वह छोटे बच्चों को सुबह जगानेवाली एक कविता थी जो बचपन में उसकी एक अंग्रेज गवर्नेस उसे उठाने के लिए गाती थी। उसका मजाक मैंने फिर समझ लिया था और जब वह उन लाइनों को गाती तो उसके बाद मैं मुस्कराकर कह देता—द सन इज शाइन! और हम लोग फिर साथ हो जाते। मथुरा से जब हम लोग अगले दिन आगरा के लिए रवाना हुए तो विल्मा ने पूछा —यू मेड नो वर्शिप हियर? (तुमने यहाँ पूजा नहीं की?)

—नहीं। मैं पूजा नहीं करता, मैंने जवाब दिया।

—क्यों?

—पता नहीं!

—हू वाज राधा? (राधा कौन थी?)

—राधा कृष्ण से प्रेम करती थी।

—और कृष्ण?

—वे भी राधा से प्रेम करते थे।

—लेकिन वे तो बहुत-सी लड़कियों के साथ रहते थे। तुमने वहाँ बताया था न कि कृष्ण गोपियों को बहुत सताते थे और उनके साथ रासलीला रचाते थे।

विल्मा ने बहुत मुश्किल से शब्दों को ढूँढकर अपना सवाल बनाया।

—हाँ, वह सब भी था लेकिन वे प्रेम राधा से ही करते थे।

—फिर?

—फिर क्या?

—फिर क्या हुआ? उन्होंने विवाह···

—नहीं विवाह कैसे···, मैंने कहा—कृष्ण तो विवाहित थे। रुक्मणि उनकी रानी थी। और राधा भी किसी और की पत्नी थी।

—दैट्स वेरी इन्ट्रेस्टिंग···(यह तो बहुत मजेदार बात है) तुम्हारा मतलब है कि वे दोनों अलग-अलग लोगों से विवाहित थे और फिर भी···

—हाँ उन दोनों के बारे में ऐसी कई दिलचस्प बातें हैं। मालूम है राधा उम्र में कृष्ण से काफी बड़ी थी। वास्तव में इस प्रेम कथा का मूल धरातल आध्यात्मिक है। राधा आत्मा है, कृष्ण परमात्मा। राधा साधन हैं, कृष्ण साध्य। राधा इच्छा है, कृष्ण इष्ट। यह दरअसल एक बहुत गहरी आध्यात्मिक प्रेम की कहानी है।

—इट्स इन्क्रेडिबल! जीसस···इट्स सिम्पली इन्क्रेडिबल···(यह अद्भुत है···हे ईश्वर···यह तो सचमुच अद्भुत है!) मुझे किसी ने नहीं बताया आज तक! उसने अपनी आँखें गोल करके घुमाते हुए कहा और फिर एकदम बोली—वह पेंटिंग कितनी अच्छी थी न वहाँ—राधा और कृष्ण की—जिसमें वो राधा को झूला झुला रहे हैं।

—हाँ, बहुत सुन्दर थी!

कुछ क्षणों तक वह चुप रही फिर मुस्कराते हुए बोली—और तुम फिर भी उनकी पूजा नहीं करते! मुझे तो ये बातें सुनकर माँ और डैडी की याद आ गयी। मेरे पास उन दोनों के फोटो हमेशा रहते हैं। तुम्हें दिखाऊँगी मैं। अभी तो मैंने तुम्हें वह ड्राइंग भी नहीं दिखायी न? वो भी दिखाऊँगी आज।

—ठीक है।

—राधा लेकिन बहुत ही सुन्दर स्त्री रही होगी, उसने अपने बैग में से च्यूइंग गम निकालकर अपने मुँह में डालते हुए कहा—तुम्हें खानी है? सच मेरी बहुत इच्छा है उनकी एक पेंटिंग बनाने की। मालूम है किस स्टाइल में—रैम्ब्रां, और मारे उत्तेजना के वह चीख-सी उठी—ओओह···कमाल होगा न···उस तरह की लाइट···और राधा का प्रेम में डूबा चेहरा···समझे तुम?

मैंने मुस्कराकर गर्दन हिलायी।

—तुम बुद्धू हो बिल्कुल···न तो उनकी पूजा करते और न ये पेंटिंग आ रही है तुम्हारी समझ में···, उसने उसी उतावली आवाज में कहा—रैम्ब्रां का नाम तो सुना है न तुमने? उनकी खासियत यह थी कि उनके चित्रों में प्रकाश सिर्फ प्रकाश ही नहीं होता था—वह एक आलोक होता है—एक ऐसा आलोक जो उनके चरित्रों को एक विशेष आयाम दे देता था। उसे मैं आध्यात्मिक आलोक तो नहीं कह सकती, लेकिन है वैसी ही कोई चीज जो सादे प्रकाश में कभी नहीं हो सकती।

अब सोचो जरा राधा के पोर्ट्रेट के बारे में—उस स्टाइल मे···गॉड, आइ मस्ट डू इट। (हे भगवान, यह तो मुझे जरूर बनानी चाहिए!)

सृजनात्मक उत्तेजना अगर परिन्दों की तरह उड़नेवाली कोई चीज होती है तो विल्मा के चेहरे पर इस वक्त हजारों परिन्दे उड़ रहे थे···। मुझे याद आया कि मैं इतनी बार सुधीर व कई अन्य लेखकों के साथ उन क्षणो मे भी मौजूद रहा था जब किसी लिखी जानेवाली कृति के बारे मे बातचीत हुई थी लेकिन मुझे कभी इस तरह की कोई उत्तेजना नजर नही आयी थी। लगता था जैसे किसी इंजीनियर या ठेकेदार की तरह वे लोग अपने सामने नक्शा फैलाये किसी बाँध या गोदाम बनाने की बात कर रहे हैं। यह उबाल, यह उड़ान और यह आँधी जो विल्मा के चेहरे पर मौजूद थी मैंने बहुत कम चेहरो पर देखी है।

—अच्छा, अब तुम मुझे महल के बारे में तो बताओ। अचानक उसने पूछा और मुस्कराकर बोली—मैं पहले से ही उसके बारे मे जानकारी ले लेना चाहती हूँ क्योंकि जब तुम सब लोगों के सामने इन मौन्यूमेण्ट्स (स्मारकों) के बारे में बात करते हो तो मुझे मजा नही आता। ताजमहल भी प्रेम का ही चक्कर था न?

—हाँ, मुझे हँसी आ गयी।

—डैडी वाज सो राइट! (डैडी कितना ठीक कहते थे।) वह खुशी से गाती हुई-सी बोली—बताओ, बताओ।

जब तक हम लोग आगरा पहुँचे विल्मा को ताजमहल के बारे में उतना ही मालूम था जितना कि मुझे, बल्कि शायद कुछ ज्यादा ही क्योंकि खोद-खोदकर सवाल पूछने की उसकी आदत कई बार ऐसी चीजें भी उघाड़ देती थी जिन्हें आप खुद ही दबाकर भूल जाते हैं।

उससे ज्यादा बातूनी लड़की मैंने आज तक नही देखी। हैरत की बात यह है कि मैं, जो बातूनी लोगों को बिल्कुल भी बर्दाश्त नही कर पाता, विल्मा की बातें इतने ध्यान से सुनता रहता था कि अन्ततः जब हम लोग अलग होते तो मैं थका-सा जाता था।

ताजमहल देखने का कार्यक्रम कुछ इस तरह से बना था कि एक बार तो आगरा पहुँचकर हम लोग सीधे वही जाकर उतरे और कुछ समय वहाँ बिताकर लंच के लिए होटल आ गये थे। आज पूर्णिमा के बाद दूसरा दिन था। और इसलिए तय हुआ था कि रात को जो लोग वहाँ दोबारा जाना चाहें वे अपना कार्यक्रम स्वयं बना लें। लंच के दौरान कुछ बात निकल आयी तो मिसेज रॉड्रिग्स ने और लोगों के सामने इस बात पर अफ़सोस जाहिर किया कि 'ताजमहल की पूर्णिमा की रात' हम लोग दुर्भाग्य से नही देख पा रहे हैं जो कि इस इमारत का असली जादू है। अंग्रेज लेखिका ने फौरन अपने कन्धे उचकाकर कहा—फिर तो बेकार है जाना···। लगा ऐसा कि सास्कृतिक डेलीगेशन के बाकी सदस्य भी मिसेज रॉड्रिग्स को शाहजहाँ से कम नही मानते थे। विल्मा ने लंच के बाद अपने कमरे मे जाते हुए मुझसे कहा—देख लेना, उन लगूरो मे से कोई नही जायेगा। और इस बन्दरिया की अगली

किताब का शीर्षक मैं तुम्हें अभी बता सकती हूँ।

मैं अपनी हँसी नहीं रोक पाया।

जैसे ही हम लोग पहली मंजिल पर लिफ्ट से उतरे, उसने कहा—तुम मेरे कमरे में क्यों नहीं चलते। मैं वादा करती हूँ कि तुम्हें वह ड्राइंग दिखाने के बाद फिर मैं घण्टे-भर तक कुछ नहीं बोलूँगी। ठीक है?

कमरे में आकर उसने अपने सूटकेस में से एक स्कैचबुक निकाली और वह ड्राइंग मुझे दिखायी।

हँसी के मारे मेरा बुरा हाल हो गया। बहुत सधे हुए हाथ और पूरी संजीदगी के साथ बनायी गयी उस कार्टूननुमा ड्राइंग में नेपथ्य में लाल किला था। एक कोने में बाबा हरे-भरे का मजार और उसके बराबर कई रंगरेज कपड़े के लम्बे-लम्बे थान ताने उन्हें सुखा रहे थे। उनसे कुछ हटकर सामने की तरफ एक मदारी तमाशा दिखा रहा था—लंगूरों के एक समूह को। तमाशा कर रहे थे—एक बड़ा लंगूर और एक बन्दरिया। बन्दरिया ने एक छोटा-सा लहँगा पहन रखा था और उसका चेहरा उस अंग्रेज लेखिका जैसा था और बड़ावाला लंगूर अपनी लम्बी पूँछ उठाये उस बन्दरिया के साथ सम्भोगरत था। उसकी पूँछ बिल्कुल किसी झण्डे के डण्डे की तरह तनी हुई थी और उसके ऊपरी हिस्से में अमरीकी झण्डा फहरा रहा था। डमरू बजानेवाला मदारी मिसेज रॉड्रिग्स थी और दर्शक लंगूरों की पूँछों से अलग-अलग सदस्य राष्ट्रों के बिल्ले लटक रहे थे।

जब मेरी हँसी रुकी तो वह बहुत मजेदार आवाज में बोली—अभी मुझे इसमें रंग भरने हैं!

और इस बार हम दोनों पागलों की तरह हँसने लगे।

कुछ देर बाद मैंने कहा—लेकिन इसमें मैं तो हूँ ही नहीं विल्मा!

—तुम्हारा स्कैच मैं अलग से बनाऊँगी, उसने पलँग के ऊपर छलाँग लगाते हुए कहा—और अब वह एक घण्टा शुरू हो रहा है। चुपचाप इधर आकर लेट जाओ और थोड़ा आराम कर लो!

बड़े से डबल बैड पर वह दूसरी तरफ करवट लेकर लेट गयी। मुझे काफी देर तक रह-रहकर उस ड्राइंग पर हँसी आती रही लेकिन विल्मा सचमुच फिर कुछ नहीं बोली। पता नहीं कब मेरी आँख लग गयी और जब मैं सोकर उठा तो साढ़े-पाँच बज रहे थे। विल्मा कमरे में नहीं थी। मैं उठकर बैठ गया और फोन उठाकर चाय के लिए कह ही रहा था कि बाथरूम का दरवाजा खुला और विल्मा एक टर्किश गाउन पहने बाहर निकली।

—चाय? मैंने पूछा।

—हाँ, अभी नहीं पी मैंने भी, उसने कहा और फिर अपने सूटकेस में से कुछ कपड़े निकालकर फिर बाथरूम में घुस गयी।

उसकी वह स्कैच बुक साइड टेबिल पर ही पड़ी थी। मैंने उसे उठा लिया और देखने लगा। पहले पेज पर खूब बड़े-बड़े अक्षरों में बिल्कुल बच्चों की तरह

उसने अपना नाम लिख रखा था। दूसरे पेज पर एक ड्रॉइंग थी जिसमे एक निर्वस्त्र आदमी एक खिड़की के पास खड़ा खिड़की के बाहर रखे एक गमले मे पानी दे रहा है और एक बिल्ली कमरे मे उसके बिस्तर पर बैठी उसे देख रही है। अगले पेज पर किसी वृद्ध महिला के चेहरे का स्कैच था जिसकी लाड-भरी मुस्कान ने मुझे एक क्षण के लिए बांध-सा लिया। उसके बाद एक पेज था जिस पर शायद उसने किसी ड्रॉइंग को बीच मे ही छोड़कर उस पर कई तरह की लाइने खीच रखी थी और जगह-जगह स्पेनिश मे कुछ लिखा हुआ था। इसके बादवाले पेज पर दिल्ली के कनॉट प्लेस का एक रफ-सा स्कैच था और अन्तिम ड्रॉइंग वह थी जिसमे उसे रंग भरने थे। मुझे फिर हँसी आ गयी। दरअसल इस तरह की सैन्स ऑव ह्यूमर मैंने आस-पास के लोगो मे कभी नही देखी थी। विल्मा ने न सिर्फ मुझे हैरत मे डाल दिया था बल्कि पहली बार मुझे यह अहसास हुआ कि एक कलाकार के पास सबसे बड़ी सहूलियत यह होती है कि अगर वह चाहे तो रोजमर्रा की जिन्दगी की बहुत-सी अप्रिय और कचोटनेवाली चीजों का इस्तेमाल एक ऐसे ढंग से कर सकता है कि वे बजाय दीमक की तरह उसके व्यक्तित्व को खत्म करने के उसे एक ऐसी ताकत और समझ दे सकती हैं जो उसे सही मायनों मे सहिष्णु और हँसमुख बना सकती है।

मैं पूरी ईमानदारी से यह कहना चाहता हूँ कि विल्मा नाम की उस लड़की ने उस तीन हफ्ते की मुलाकात में ही मुझे कई महत्वपूर्ण अर्थों मे जीवन-भर के लिए बदल दिया। ऐसा चमत्कार बहुत कम लोगों के सान्निध्य में होता है।

रूम सर्विस का वेटर चाय रखकर चला गया था। कुछ क्षणों बाद विल्मा बाथरूम से निकली और मैं उसकी तरह देखता रह गया। मुझे पहली बार अब यह अहसास हुआ कि वह एक सुन्दर और ललचानेवाली-सी लड़की थी। उसने गुलाबी रंग की एक स्पेनिश फ्रॉक पहन रखी थी जो उसके सीने के निचले हिस्से तक ही आकर खत्म हो गयी थी। सीने के ऊपर चेहरे और भूरे घुंघराले बालों तक वह किसी मोम की गुड़िया की तरह लग रही थी।

मुझे उस तरह देखते हुए देखकर वह बड़ी शोख मुस्कराहट के साथ बोली—बहुत अच्छी लग रही हूँ न मैं ?

—हाँ, मैं मुस्करा पड़ा—लेकिन मैं सोच रहा था कि यह बात मैं कहूँगा तुमसे !

—वह तो तुम अब भी कह सकते हो, चाहो तो ! उसने उसी शोखी से कहा—लेकिन बस ये है कि उसके आगे फिर और कुछ मत कहना या करना—, और वह हँसती हुई पलंग पर आकर बैठ गयी और अपने जूते पहनते हुए बोली—मालूम है ? जब मैं पैरिस मे थी तो शुरू में पेण्टर्स के लिए मॉडलिंग करती थी। वहाँ एक बहुत खराब पेण्टर था लेकिन उसके पास पैसा बहुत था और था भी वो काफी रंगीन तबियत। एक बार मैं यही फ्रॉक पहनकर उसके स्टूडियो में सिटिंग दे रही थी। मुझे मालूम था कि उस दिन मुझे देखते ही उसके होशो-हवास गुम हो गये थे। थोड़ी देर तो वह अपनी इजिल के पास खड़ा शायद कोशिश करता रहा काम

करने की लेकिन फिर सबकुछ छोड़-छाडकर वह मेरे पास आ गया और मुझे अपनी मजबूत बाँहों में भरकर चूमते हुए बोला—तुम बहुत सुन्दर लग रही हो आज। मैं तुम्हे प्यार करना चाहता हूँ—और वह हँसती हुई उठकर खड़ी हो गयी और मेरे सामने किसी फैशन मॉडल की तरह टहलते हुए बोली—चाय बनाओ न। और हुआ यह कि हालाँकि मुझे एक बार तो लगा कि यह गलत बात है लेकिन उसके अन्दर वह 'पुरुष' या 'जानवर'—जो भी कहो उसे, जो उस वक्त जाग गया था वह मुझे बहुत आकर्षक लगा। और हुआ आखिरकार यह कि उसने फिर इतना प्यार किया मुझे उस रात कि नौबत पुलिस बुलाने की आ गयी थी। बहरहाल, इस कहानी से शिक्षा जो मिलती है वह यह कि जो आदमी लड़की की जवानी की तारीफ उसे सुन्दर कहके करे उसे कभी प्यार नही करने देना चाहिए। समझे कुछ? लाओ चाय—, और वह मेरे सामने पडी कुर्सी पर बैठकर हँसने लगी।

—मैं मुस्कराते हुए चाय बनाता रहा और फिर चाय का प्याला उसे देते हुए बोला—इसलिए तो मैं तुम्हारी तारीफ नही कर रहा। दुनिया मे सभी मर्द तो बेवकूफ नही होते।

—हाँ, लेकिन ज्यादातर बेवकूफ हाँ नही बिल्कुल कुत्ते के पिल्ले होते हैं, उसकी आवाज अचानक बदल गयी—कुत्ते का पिल्ला तो वैसे बहुत भोला होता है—मेरा मतलब लगूरों से था। लेकिन तुम्हारे बारे में असल मे मैंने अभी तक कुछ तय नही किया है और इसलिए मैं चाहती हूँ कि आज शाम तुम मुझको एक सुन्दर लड़की की तरह प्रेम का सबसे महान् स्मारक दिखलाओ। मुझे तुम्हारे बारे में सबसे अच्छी बात यह लगती है कि तुम अपनी समझदारी और बुद्धूपने के कपड़े अलग-अलग रखते हो। आदमियों की सबसे बड़ी समस्या मालूम है, क्या है? जहाँ उन्हें समझदारी का कोट पहनना चाहिए वहाँ वे अपनी बेवकूफी का जाँघिया पहने खड़े होते हैं। ठीक कहती हूँ न मैं? वह हँसने लगी।

—तुम्हारे बारे मे तो मैं शायद कभी कुछ तय नही कर पाऊँगा, मुझे खुद हैरत हुई कि जिन्दगी में इस तरह की बात मैं पहली बार इतने सहज ढंग से एक ऐसी लडकी से कह रहा था जिसे न मैं जानता था और न जिसकी कोई सम्भावना ही थी।

—उसके लिए तो दुनिया-भर का वक्त है हम दोनों के पास, वह मुस्कराई—तुम तो ये बताओ कि मैं अपने आपको थोप तो नही रही न तुम्हारे ऊपर? मुझे असल में मिसेज रॉड्रिग्स से डर लगता है। माफ करना, वह एक ऐसी कुतिया है जिसे देखकर मुझे दया आती है क्योंकि उसे वाकई जो चीज चाहिए वह इस रास्ते पर उसे जिन्दगी-भर नही मिल सकती। वह सचमुच एक दयनीय औरत है। मैंने कभी नही सोचा था कि भारत में भी ऐसी औरतें होंगी। यह दरअसल उस बीमारी का नतीजा है जो सिफलिस से भी ज्यादा भयंकर है और जो, मुझे डर है कि यहाँ भी बुरी तरह से फैल रही है। पश्चिम में तो सूर्य अस्त होता है—एदित्या! है न? तो फिर क्या तुम्हारे देश के लोगों को यह कभी नही सूझता कि उनकी जगह,

उनका काम और उनकी सारी पहचान—समय चक्र में एक खास और बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान पर है ? ओओहह—थैंक गॉड—कि मेरी तुम जैसे कुछ लोगों से मुलाकात हो गयी इस ट्रिप पर। नही तो—सच, मैं बहुत ही दुखी और निराश होकर लौटती अपनी दादी के पास—बोलते-बोलते वह काफी उत्तेजित हो गयी थी जिसके सारे सबूत उसने फिर एक शोख मुस्कराहट से धो दिये—खैर छोड़ो, तुमने यह नहीं बताया कि तुम्हें कोई ऐतराज तो नही न अगर मैं शाम तुम्हारे साथ गुजारूँ !

पूर्णिमा के बाद अगले दो दिनों के दौरान ताजमहल के पास कुछ खास मेहमान आते हैं—वो पीली, कमजोर रातें जो फिर इतनी उदास हो जाती हैं कि उनकी रोशनी ज्यादा देर तक वहाँ नही ठहर पाती।

उस रात वहाँ हम दोनो काफी देर तक रहे थे। विल्मा कुछ भी नही बोली थी। यहाँ तक कि वहाँ से लौटने के बाद खाने के दौरान भी उसने कुछ नहीं कहा। उसके बाद भी वह चुपचाप-सी हो बैठी रही, जब हम दोनों उसके कमरे मे बैठे ब्राण्डी पी रहे थे। उस दौरान उसने मुझे अपनी 'माँ और डैडी' की तस्वीरें जरूर दिखायी थी, जिन्हें मैं बहुत ध्यान से देखता रहा था—ऐसे दो अजनबी लोगों की तस्वीरें जिनकी जिन्दगी का एक हिस्सा अनायास ही मेरे पास बहते-बहते आ गया था गोकि वे अब मौजूद नही थे।

उस रात विल्मा एक दूसरी ही लड़की थी। खामोश, उदास और ठहरी हुई-सी। अपनी ब्राण्डी खत्म करके वह मेरे पास आकर लेट गयी और धीरे-से बोली—यू आर सो मच लाइक डैडी, यू नो ? (तुम बिल्कुल डैडी की तरह हो, तुम्हें मालूम है ?) और अचानक उठकर वह मुझसे बुरी तरह चिपट गयी और बेतहाशा मुझे चूमने लगी।

फिर क्या हुआ मुझे पता नही। बस यह जरूर याद है कि उस रात मुझे कई बार अदिति का ख्याल आया। हर बार जैसे एक घण्टा-सा बजता था—बहुत दूर कही वीराने में—जहाँ अब कोई नही था जिसे वक्त से कोई सरोकार न हो। लेकिन रह-रहकर वे घण्टे बज उठते—वक्त बीत रहा था। शायद कुछ और भी···

उस रात के बाद हम दोनों के सम्बन्ध बदल गये थे···किसी बहुत बड़े अर्थ में नही लेकिन विश्वास के उस पौधे में जो विल्मा ने लगाया था उसमें एक नयी पत्ती उग आयी थी।

टूर के बाकी दिनों के दौरान वह पौधा बढ़ता ही गया। कितना कुछ एक साथ देखा और जिया था हम दोनों ने उन तीन हफ्तों के दौरान। विल्मा, जैसी कि उसकी आदत थी, बिना पूछे ही जैसे मेरे भीतर उस तहखाने तक पहुँच जाती जिसके फर्श पर जिन्दगी का वह नक्शा धूल से ढँका पड़ा था। जब भी उसे मौका और वक्त मिलता वह वहाँ पड़ी उन सब चीजों को साफ करके सहेजती-सी रहती। खोलकर वह कुछ नही देखती थी क्योंकि उसका कहना था—एक-दूसरे के भीतर जाकर हमें बहुत सावधान रहना चाहिए। बिना पूछे हमें कुछ भी खोलने की

कोशिश नही करनी चाहिए क्योंकि हर व्यक्ति का चीजों की पोटली बाँधने का अन्दाज बिल्कुल अलग होता है।

दिल्ली वापिस लौटने के बाद वह दो दिन और रुकी थी और उस दौरान उसी के शब्दों मे वह भारत सरकार या कल्चरल लोग की नही, बल्कि मेरी मेहमान थी। उसने जिद पकड ली थी घर चलने की। आखिरकार आखिरी दिन मैं उसे घर ले गया था। घर पर उस समय अम्माँ ही थी जो उसे देखकर एक अजीब-से धर्मसकट मे पड़ गयी थी। क्योकि उन दोनो के बीच किसी भी तरह की बातचीत सम्भव नही थी। मैं ही उन दोनों के बीच दुभाषिये का काम करता रहा और उसके कारण ही वे दोनो दो-चार औपचारिक-सी बातें एक-दूसरे से कर सकीं। अम्माँ फिर स्टोव जलाकर चाय बनाने लगी और विल्मा चारपाई पर बैठकर मुझसे बातें करती रही। उसी बीच आँगन मे मोहल्ले के लोगों की भीड़ इकट्ठा हो गयी—मेम को देखने की उत्सुकता। विल्मा ने जब यह देखा तो वह उछल कर बाहर आँगन मे पहुँच गयी और कुछ ही क्षणो बाद यह बताना मुश्किल था कि पड़ोस की औरतें व बच्चो की वह भीड़ ज्यादा उत्तेजित थी या विल्मा। उसे हालाँकि कुछ समझ मे नही आ रहा था लेकिन वह स्पेनिश और अंग्रेजी मे कुछ बडबडाते हुए और हँसते हुए उन औरतो के कपड़े, चोटियाँ, चुटीले, जेवर और न जाने क्या-क्या देखती आश्चर्यचकित-सी खड़ी थी। अपने गले मे पड़े कैमरे से बीच-बीच मे वह फोटो खीचने लगी। करीब आधे घण्टे तक यह ऊधम चलता रहा।

आखिरकार हम लोग नीचे चौराहे पर आये और उसने कहा कि वह पीतल के बर्तनो का बाजार देखना चाहती है। हम लोग चावडी बाजार होते हुए जामा मस्जिद तक आये। रास्ते भर वह दुकानों पर रुक-रुककर तस्वीरें खीचती रही और छोटी-छोटी चीजें खरीदती रही।

जामा मस्जिद पहुँचते-पहुँचते शाम हो चली थी। शायद नमाज का वक्त था इसलिए नीचे चहल-पहल कुछ कम थी। मस्जिद के चारों तरफ लगी हुई कबाब-पराठों की दुकानो की पूरी छान-बीन करने के बाद वह मुस्कराकर बोली—थक गये? चलो थोड़ी देर यहाँ बैठें—, उसने मस्जिद की सीढ़ियो की तरफ इशारा किया।

हम लोग कुछ ऊपर जाकर सीढियों पर बैठकर नीचे बाजार की हलचल देखने लगे।

—बहुत पुराना शहर है न दिल्ली! उसने कुछ देर बाद पूछा।

—हाँ।

—यह नजारा देखकर कोई भी यह बता सकता है। इट्स लाइक अ लिवली ओल्ड वोमॅन—आलमोस्ट लाइक माई ग्रैनी और योर मदर—नो? (किसी बहुत जिन्दादिल बूढ़ी औरत की तरह है ये शहर—बिल्कुल मेरी दादी की तरह या तुम्हारी माँ जैसा—नहीं?) उसने अपने खास ढग से कहा और फिर खड़ी हो

गयी—अब मुझे तुम्हारी एक तस्वीर खींचनी है—यहीं बैठे रहो ! और वह कूदती हुई नीचे की तरफ चली गयी। पलक झपकते ही सबकुछ सालों पीछे लौट गया—

मैं स्तब्ध-सा बैठा रहा।

तस्वीर खींचने के बाद वह दौड़ती हुई वापिस आयी और फिर मुझसे लिपटकर हँसने लगी—नाउ आई हैव गॉट यू फॉर एवर ! (अब मैंने तुम्हें हमेशा के लिए पा लिया है !)

उस रात जब मैं उसे वापिस छोड़ने गया तो काफी देर तक हम होटल के बाहरवाली सड़क के फुटपाथ पर टहलते रहे। एक उदासी-सी मुझ पर घिर आयी थी लेकिन विल्मा की बातों की रफ्तार और भी बढ़ गयी थी। आखिर तक वह बेहिसाब बातें करती रही थी और फिर अचानक चुप होकर उसने मुझे अपनी बाँहों में भर लिया और देर तक चूमती रही।

—गुड बाइ एदित्या—एण्ड टेक केयर—, और वह होटल की तरफ भाग गयी। ऊपर एक दरख्त की बेशुमार पत्तियाँ धीरे-से कसमसायी और हवा के उसी झोंके के साथ मैं भी धीरे-धीरे चलने लगा।

एक पूरा मौसम जैसे बीत गया था। वह उदास बेचैनी काफी दिनों तक मुझे खामोश किये रही। अगला मौसम अभी दूर था और मुझे यह भी नहीं पता था कि वह क्या था, कैसा और कौन-सा मौसम था वह जिसका मेरी दुनिया, उसकी जमीन और आसमान को इन्तजार था, जिसकी उसे जरूरत थी और जिसके विधान में अब उसकी बारी थी।

इम्तहानों का रिजल्ट आने में अभी देर थी। लेकिन कम-से-कम यह फैसला तो मुझे करना ही था कि मैं आगे पढ़ाई करूँगा या किसी नौकरी की तलाश। यूँ आगे पढ़ने के लिए किसी तरह की कोई कठिनाई नहीं थी। पिछले तीन साल के दौरान में मुझे समझ में आया था कि यूनिवर्सिटी में पढ़ने और मेरे व्यक्तिगत खर्चों के लिए मुझे साधारण तौर पर लगभग दो-तीन सौ रुपये महीने की जरूरत होती थी और उतना मैं बड़ी आसानी से कमाता रहा था। जिस चीज ने दरअसल मुझे उलझा दिया था वह यह थी कि एम. एस-सी. करने का मतलब फिर पी-एच. डी. करना भी होगा क्योंकि टीचिंग या रिसर्च की अच्छी नौकरी तभी मिल सकती थी। दूसरी सूरत यह थी कि सैल्स या एक्जीक्यूटिव कैरियर को चुनता और उसके लिए बी. एस-सी. तक पढ़ाई काफी थी। बाबा वैसे अभी तक नौकरी कर रहे थे और घर का खर्च उन्हीं की तनख्वाह से चलता था। पिछले साल के दौरान एक सुखद बात यह हुई थी कि गाँव से उनके तीसरे और सबसे बड़े चचेरे भाई दोनों फसलों पर बाबा के हिस्से के पैसे भेजने लगे थे। दरअसल ताऊजी के दोनों लड़के अब बड़े हो गये थे और खेती-बाड़ी का काम पूरी तरह अब वे ही सँभालते थे और दूसरे ताऊजी का बाबा से हमेशा एक खास स्नेह रहा था। बाबा जब उस झगड़े के बाद गाँव छोड़कर शहर आये थे तो ताऊजी वहाँ नहीं थे। उनकी

गैरमौजूदगी में ही वह झगड़ा हुआ था। वे जब लौटे तो उन्हें सारी बात पता चली थी। सालों फिर उन्होंने बाबा को समझाया था और शायद उन्हीं की कोशिशों का नतीजा था कि बाबा का गुस्सा धीरे-धीरे घुलता गया था। धीरे-धीरे वे गाँव से फिर जुड़ने लगे थे। हालाँकि इसके पीछे मुझे हमेशा लगा है, कि एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि बाबा पूरी कोशिशों के बाद भी कभी शहर की अपनी जिन्दगी को स्वीकार नहीं कर पाये। बाबा को मैंने कभी किसी भी तरह के मनोरंजन में दिलचस्पी लेते नहीं देखा—सिवाय शतरंज के जो उनका एक अकेला और पुराना शौक था। छुट्टी के दिन बाबा दिन-भर सीताराम बाजार में लाल दरवाजे के पास एक धर्मशाला के बाहर शतरंज खेलते रहते। कभी-कभी रात हो जाती और फिर अम्माँ मुझे उन्हें बुलाने को भेजती। मैं जब पहुँचता तो बाबा बाजी पर झुके होते और मुझे देखकर कहते—अभी चलते हैं! उस दौरान मैं बाबा के चेहरे को देखता रहता जिसमें शतरंज की चालों के अलावा भी मुझे बहुत कुछ उलझा हुआ नजर आता।

आखिरकार मैंने अपनी उलझन रवि के सामने रखी। उसका जवाब और मुस्कराहट वही थी जो हमेशा मैं सुनता और देखता आया था—सेनापति जी! आपके साथ मुश्किल ये है कि आप खुद ही तलवार लेकर मैदान में उतर जाते हो! लड़ने का काम फौज का होता है—सेनापति तो बस प्लान बनाता है। लेकिन अगर खुद ही लड़ने लगोगे तो फिर उसका वक्त कहाँ मिलेगा। मेरी मानो, थोड़े दिन कोई सेल्स का जॉब ले लो—सब समझ में आ जायेगा तुम्हें! और थोड़ी चर्बी भी छँट जायेगी तुम्हारी! लगता है मिसेज रॉड्रिग्स ने इस बार अच्छी खातिर की है अपने हीरो की!

—तुझसे तो यार बात करना गुनाह है—, मैंने बनावटी झल्लाहट के साथ कहा।

—वाह बेटा! रवि मुस्कराया—ये खूब हैं—स्साले गुनाह तो करो किसी और के साथ और तोहमत हमारे ऊपर—हाँआँ, यही तो फायदा है बचपन की दोस्ती का!

और हम दोनों हँसने लगे।

बाबा से जब मैंने पूछा कि मैं नौकरी कर लूँ या आगे की पढ़ाई जारी रखूँ तो उन्होंने भी बिना कुछ सोचे वही कहा जो मैं जानता था।

—तुम्हारा जैसा मन है वैसा करो। नौकरी की जरूरत वैसे कोई है नहीं अभी—, उन्होंने कहा—हम तो बस यह जानते हैं कि तुम खुद समझदार हो और इसलिए अपनी जिन्दगी खुद बनाने के काबिल जरूर बन जाओगे। और बेटे, हमारी खुशी भी उसी में है!

आखिरकार मुझे लगा कि शायद रवि ठीक ही कह रहा है और मैंने उन्हीं दिनों दवाइयों की एक कम्पनी द्वारा विज्ञापित मैडिकल सैल्स रिप्रजेंटेटिव के लिए आवेदन भेज दिया। दो हफ्ते बाद ही उसका इण्टरव्यू कॉल आ गया।

इण्टरव्यू अच्छा हुआ था लेकिन बस एक ही बात जरा गड़बड़ थी और वह यह कि कम्पनी को यह नया स्टाफ कानपुर और आगरावाले क्षेत्र मे चाहिए था। मेरे सामने यह स्पष्ट करने के अलावा और कोई चारा नही था कि मैं दिल्ली नही छोड़ सकता था।

कई हफ्ते गुजर गये। उस कम्पनी की तरफ से कोई जवाब नही आया। उस बीच मैं अखबारो मे दूसरी नौकरियाँ तलाश करता और उनके लिए आवेदन भेजता रहा। लगभग महीना-भर उसी तरह बीता था। उस बीच एक नयी बात मुझे यह पता चली कि दिल्ली मे और शायद पूरे मुल्क मे भी पैसा कमाना आसान, लेकिन नौकरी पा लेना खासा मुश्किल था। नौकरियाँ कम थी—लोग बहुत-बहुत ज्यादा और ऊपर से सरकारी नौकरियों मे भाई-भतीजावाद अब खुलकर सामने आने लगा था। अच्छी सरकारी नौकरियो के बारे मे सिर्फ उन्ही लोगो को मालूम होता था जिन्हे कि वे मिलनेवाली होती थी। जिस बात पर मुझे धीरे-धीरे थोड़ा गुस्सा आने लगा था वह यह थी कि आसपास ऐसे लोगों की भरमार ही नही बल्कि एक जबर्दस्त धक्कमपेल-सी थी जो डिग्री हाथ मे लिये नौकरी की खिड़की के सामने जूझ रहे थे, ठीक उसी तरह से जैसे मेलो इत्यादि मे 'जिन्दा नाच-गाने' वाले तम्बू के सामने वह हंगामा होता था। हर तरह की बेईमानी, लूट-खसोट और गुण्डा-गर्दी मे वे सिर्फ इसलिए शामिल हो जाते थे कि उन्हे किसी भी तरह बस एक बार सरकारी नौकरी मिल जाये—क्योंकि उसका मतलब था कि फिर वे जिन्दगी-भर आराम से हरामखोरी करते हुए हर महीने तन्खा लेते रहेगे और मौत के बाद पैन्शन भी सरकारी खजाने से निकलती रहेगी। अधिकाश लोग नौकरी चाहते थे—पैसा नही, जबकि पैसे के स्तर पर उनकी स्थिति बिल्कुल भिखारियो जैसी थी। फिर भी उन्हे पैसा नही चाहिए था क्योकि उसके लिए मेहनत करनी पड़ती थी। यह अहसास कि मैं अभी तक बिना नौकरी किये कई सालो से हर महीने इतना कमाता रहा था जितने की नौकरी ढूँढते हुए मुझे अब लगभग दो महीने हो रहे थे, मुझे रह-रहकर अपनी ही नजरो मे जलील-सा करता रहा।

कई बार मुझे लगता कि जिन्दगी को लेकर शायद रवि का ही दृष्टिकोण सही था—चीजो को अपनी शर्तों पर जीतने या हारने का। लेकिन यह भी मुझे अब धीरे-धीरे समझ मे आता जा रहा था कि किसी भी दूसरे व्यक्ति मे हम देख और समझ तो बहुत कुछ सकते हैं लेकिन उसमे से कुछ भी हम अपना नही सकते क्योकि हर व्यक्ति का स्वभाव एक ऐसा पालतू जानवर होता है जो सिवाय अपने मालिक के किसी की नही सुनता।

वह नया मौसम भी आखिरकार आ ही गया। उसकी खबर मुझे इम्तहानों के नतीजे ने दी। मैं फर्स्ट डिवीजन मे काफी अच्छे नम्बरो से पास हो गया था। उसी हफ्ते के अन्त मे मुझे दवाइयों की उस विदेशी कम्पनी का नियुक्ति पत्र भी मिला जिसमे उन्होने मेरी दिल्ली मे ही रहने की शर्तं मान ली थी।

ठीक उसी दिन मुझे रवि ने खबर दी कि उसका प्रमोशन हो गया है—पता नहीं खुशियाँ भी कभी-कभी क्यों बिल्कुल दुखों की तरह एक साथ ही आ जाती हैं। बहुत अजीब अहसास होता है वह। लगता है जैसे किसी दूसरे के हिस्से की खुशियाँ भी गलती से हमारी झोली में आ गयी हों। दुःख और खुशियों में यह एक बहुत बड़ा फर्क है—दु ख हमेशा अपने होते हैं, अपने लगते हैं और अपनों की तरह ही जिन्दगी-भर साथ रहते हैं। खुशी वह लड़की है जिसका नाम विल्मा है। थोड़े दिन के साथ में ही सबकुछ भुला सकती है वह। कितना कुछ देकर जाती है, लेकिन चली जाती है आखिरकार। यूँ भरोसा रहता है उस पर पूरी उम्र के लिए। लगता है शायद फिर उससे मुलाकात होगी, फिर आयेगी वह एक बार।

और दुःख ? खुशियों के जाते ही कोने से उठकर सामने खड़ा हो जाता है मुक्ति की भीख माँगते हुए और यह अच्छी तरह जानते हुए कि हम उसे कुछ नहीं दे पायेंगे, ताउम्र हमारे सामने रहता है। वीरान सन्नाटे में कैद, जेल के घण्टे गिनता रहता है। रोता रहता है पलँग के सिरहाने अकेला बैठा। कोई नहीं रुकता उसके पास—वह भी नहीं—जो उसे प्यार करता है…

5

अम्माँ और बाबा ने कहा तो कुछ नहीं लेकिन उन्हें पढ़ाई छोड़कर मेरा नौकरी करना पसन्द नहीं आया। सबसे बड़ी मुश्किल फर्स्ट डिवीजन की वजह से थी क्योंकि बाबा के ख्याल से वही एक अकेला कारण काफी था आगे की पढ़ाई के लिए। वास्तव में पढ़ाई-लिखाई के लिए बाबा की वह गहरी ललक इसलिए भी थी कि एक तो वे स्वयं नहीं पढ़ पाये थे और दूसरे राजपूतों के यहाँ लिखने-पढ़ने को लेकर जो दृष्टिकोण आमतौर पर पाया जाता था बाबा को उससे धीरे-धीरे चिढ़-सी होती गयी थी। अपनी जाति के बारे में वे अक्सर कहते थे—यह कौम आपस में ही लड़-मर जायेगी। एक तो गरूर कि हमेशा राज किया है और दूसरे पढ़ाई-लिखाई का नामो-निशान नहीं ! पता नहीं कब आयेगी अक्ल…

अलबत्ता जिस दिन मैंने अपनी पहली तनख्वाह के आठ-सौ रुपये अम्माँ को लाकर दिये, खुशी के मारे उनकी आँखों में आँसू आ गये। बाबा भी जब शाम को ड्यूटी से लौटे तो मुझे पास बिठाकर बहुत देर तक मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए तरह-तरह की बातें पूछते रहे। अन्त में उन्होंने कहा—चलो नाव किनारे तो लगी। हालांकि तुमने बहुत जल्दी शुरू कर दी कमाई ! और वे हँसने लगे। सालों

बाद मैंने बाबा को हँसते हुए देखा था उस दिन और मुझे लगा कि जैसे बाबा मेरी ही फिक्र मे इतने खामोश रहा करते थे।

सबसे ज्यादा खुश रवि हुआ था। बकौल उसके, सुबह का भूला शाम को तो नही लेकिन दरवाजे बन्द होने से पहले ही घर लौट आया था।

—जिन्दगी मे पहली बार तुमने सबूत दिया है कि राजपूती खून तुम्हारी नसों में है सेनापति! उसने अपना डायलॉग बोलते हुए कहा था—मावदौलत खुश हुए! इजहार करो कि ख्वाहिशे-इनाम क्या है? नीना को छोड़कर तुम जो माँगोगे, अता किया जायेगा।

हम दोनों उसके नये घर मे बैठे हुए थे। प्रमोशन मिलते ही उसने करौल-बाग का मकान छोड़कर डिफेन्स कॉलोनी मे यह छोटा-सा लेकिन बहुत सुन्दर फ्लैट किराये पर ले लिया था। जिस ढग से उसने लिविंग रूम को फर्निश किया था वह सिर्फ वही कर सकता था। पूरे फर्श पर बिछे गहरे नीले रंग के सादे कालीन पर कमरे के बीचोबीच एक काफी बड़ी ग्लास टॉप टेबिल थी जिसका फ्रेम पीतल का था। उसके चारो तरफ स्लेटी कॉर्डरॉय का एक बहुत आरामदेह सोफा और बाकी सब चीजे पीतल की। एक कोने मे छत से लटकती डोरी के सिरे पर एक बड़ा-सा शख था जिसमे हल्की रोशनीवाला एक बल्ब जल रहा था। उसके नीचे रक्खे रिकार्ड प्लेयर पर एक डिस्क थी लुई आर्मस्टॉग की और ट्रम्पैट की जश्न मनाती-सी आवाज कमरे मे घूम रही थी। रवि ने मेरी नौकरी की खुशी में शैम्पेन की बोतल खोली थी जो अब सामनेवाली टेबल पर एक चाँदी की बाल्टी मे बर्फ की गोद मे बैठी थी।

रवि जब खुश होता था तो उसे देखकर मुझे एक-दूसरे ही ढंग की हैरत होती थी। कहाँ-कहाँ से जमाने-भर की चीजे जुटाकर किसी खानदानी नवाबजादे की तरह वह इतने इत्मीनान से खुशी की अगवानी करता था जैसे जिन्दगी-भर उसने कुछ और किया ही न हो। जाहिर है कि खुशियाँ भी ऐसे ही आदमी के सामने फिर तवायफों की तरह नाचती हैं। ऐसे मौकों पर उसकी एक-एक मुस्कान, हर अन्दाज और बेफिक्र शोखियाँ एक मामूली-सी शाम को भी जश्न मे तबदील कर देती थी। ऐसी ही थी वह शाम भी।

—मजाक नही गुड्डू, रवि ने दूसरी बार हम दोनों के गॉब्लेट्स मे शैम्पेन डालते हुए संजीदगी से कहा था—अब मैं सचमुच बहुत खुश हूँ। देख, मेरा तो खैर ठीक है। यू नो, आइ हैव ऑलवेज बीन वेरी क्लीयर 'बाउट थिंग्स (तू जानता है, मैं तो हमेशा बहुत साफ रहा हूँ चीजों के बारे मे) लेकिन तू ''तेरा मामला न थोड़ा गड़बड रहता है। यह बात नही कि मैं तेरी पोजीशन और तेरा स्वभाव जानता नही। लेकिन कई बार मुझे लगता है कि तू बिना बात हिचक जाता है कुछ बातों मे। लेकिन अब सब फिट हो गया। अब न तुझे सोचने का वक्त मिलेगा और न तू भटकेगा, और वह मुस्करा पड़ा—हिन्दुस्तान मे ये ही तो साली मुश्किल है कि कमान तो साले सब खीचे रखते हैं लेकिन तीर चलाने मे नानी मरती है।

खैर तूने तो अब चला दिया प्यारे ! अब क्या है''' अब तो बस दशहरा मनेगा'''
देर रात तक हम दोनों उसके कमरे में बैठे बातें करते रहे थे। बीते दिनों की। उस सब की—जो पीछे जरूर छूट गया था लेकिन अब भी नजरों के सामने था। और अब उसे देखकर बजाय घबराहट के एक नयी हिम्मत महसूस हो रही थी।

रवि ने उस दिन खाना खुद ही बनाया था। होटलिंग के धन्धे में आने के बाद यह उसका नया शौक था। खाने की पसन्द उसकी बहुत सादी थी लेकिन उन्हीं मामूली चीजों को वह इस ढंग से पकाता था कि उन चीजों को देखना और खाना बिल्कुल अलग-अलग अनुभव होते थे। उस दिन उसने मेरे लिए खासतौर से आलू, मटर और प्याज का पुलाव बनाया था और अपने लिए स्पेनिश ऑमलेट। बड़ी-सी राइस प्लेट में सजे हुए उस पुलाव को मैं देखता रह गया था। सबसे नीचे सादे उबले हुए चावलों की एक तह थी, उसके ऊपर अच्छी तरह भुनी हुई, करारी प्याज की एक तह, फिर सादे चावल, उसके ऊपर तली हुई मटर, फिर सादे चावल और उनके ऊपर सफेद तले हुए आलू और सबसे ऊपर सफेद मक्खन की एक गोल टिकिया। सारा कमरा उस पुलाव की महक से भर गया था।

उस रात जब वह मुझे घर छोड़ने आया तो दो बज रहे थे। सुनसान चौराहे पर उसने अपनी मोटर साइकिल खड़ी की और उस पर बैठकर वह कुछ क्षणों तक चुपचाप चौराहे के आसपास चारों तरफ खड़ी बिल्डिंगों को देखता रहा। बहुत दिनों बाद मैंने फिर उसकी बचपनवाली, खिंची हुई-सी आवाज सुनी—कितनी ऊँची-ऊँची लगती थीं न ये बिल्डिंगें गुड्डू ? मालूम है जब मैं यतीमखाने से भागने की सोचता था तो मुझे लगता था कि मेरे बाहर निकलते ही ये बिल्डिंगें मेरे ऊपर गिर जायेंगी'''. वह चुप हो गया और गर्दन झुकाकर कुछ पल बाद बोला —जिस रोज तू मुझसे मिलने आया था न वहाँ'''याद है ? छुट्टी का दिन था वह ! हम दोनों ऊपर आकर बैठे थे'''तूने वो चॉकलेट खिलायी थी मुझे जो उस मेम ने तुझे दी थी'''। उस दिन मेरा सारा डर खत्म हो गया था''', और मेरी तरफ देखकर फिर वह बहुत भोलेपन से मुस्कराया था—अब देख' 'कितने आराम से बैठा हुआ हूँ मैं चौराहे पर'''।

—छोड़ भी 'अब क्यों सोचता है तू वो सब बातें, मैंने धीरे-से कहा—तूने जो कुछ किया है'''सच मुझे खुद यकीन नहीं आता अब कि कोई ऐसा कर सकता है।

—नहीं'''सोचता-वोचता नहीं मैं ! उसने फौरन कहा—सोचना काहे का ! दिक्कत असल में यह है कि लोगों को भी यकीन नहीं होता न ऐसी अफलातूनी कहानी पर। फिर लगता है चुप रहो—क्या फायदा कहने का ? और चुप हो जाओ तो'''नीना को लगता है कि मैं उसे कुछ बताना ही नहीं चाहता !

—लेकिन उसे तो अब मालूम होगा सबकुछ !

—हाँ, वो तो है लेकिन उस सबकुछ में यतीमखाना शामिल नहीं है, उसने धीरे-से कहा—गलती असल में मेरी ही है। मुझे शुरू से ही बता देना चाहिए था।

—लेकिन नीना तो काफी समझदार है। आइ एम श्योर शी कैन अण्डरस्टैण्ड इट। (मुझे विश्वास है कि वह इसे समझ सकती है)।

—अण्डरस्टैण्ड शी कैन ··बट ··, (समझ तो सकती है···लेकिन···,) और वह खड़ा हो गया—खैर देखेंगे···छोड़। अब चल तू, मुझे भी नीद आ रही है, और उसने मोटर साइकिल स्टार्ट कर दी।

देर तक मैं वही मोटर साइकिल की गूँजती हुई आवाज सुनता खडा रहा। उसके बाद चौराहे के उस सन्नाटे ने मुझसे एक ऐसी बात कही कि मैं सहम-सा गया। उस रात मुझे फिर नीद नही आयी। कई बार मैंने सोचा था कि उस सम्बन्ध मे रवि से पूरी स्थिति समझकर यदि जरूरत हुई तो नीना से बात करूँगा लेकिन रवि अगले दिन ही कुछ दिनो के लिए बम्बई चला गया और उसके बाद मैं कुछ ऐसा फँसा कि वक्त ही नही मिल पाया।

नौकरी शुरू मे तो सचमुच मेरे लिए काफी सख्त इम्तहान साबित हुई। यूँ बहुदेशीय कम्पनी थी और अच्छी तनख्वाह के अलावा भी बहुत-सी सुविधाएँ थी। लेकिन खेल पूँजी का था और मुझ जैसे लडको की हैसियत उसमे बैडमिण्टन की शटल कॉक से ज्यादा नही थी—बेलेंस बिगडने का अँदेशा-भर काफी था बदलने के लिए। कम्पनी की ट्रेनिंग ने वैसे मेरी बहुत मदद की थी अपने काम को समझने और करने मे। ट्रेनिंग के उन दो महीनों मे एक और बहुत दिलचस्प आदमी से मिलना हुआ था—मिस्टर मुलगाँवकर, ट्रेनिंग डिवीजन के चीफ।

हम करीब दस-बारह लडके उस दिन ट्रेनिंग के उस पहले सैशन मे मौजूद थे। काफी आक्रामक ढंग के आत्मविश्वास से भरा हुआ वह साधारण-से डील-डौल का आदमी कमरे मे दाखिल हुआ और बहुत बढिया अंग्रेजी मे उसने कुछ औपचारिक बातों के बाद एक ऐसी बात कही कि क्लास मे सन्नाटा छा गया।

— आप लोगो की ट्रेनिंग के सिलसिले मे पहली बात जो मैं आपको बताना चाहता हूँ वह यह है कि अच्छा सेल्समैन वह होता है जो अपने-आपको भी बेच दे क्योकि अगर बिक्री करनी है तो सिवाय उसके और कुछ महत्वपूर्ण नही होता—न माँ बाप, न खानदान, न यार-दोस्त और न आप खुद! दुनिया मे सबकुछ बिकाऊ है और उसे ऐसे लोगो की जरूरत है जो सब बिकाऊ माल बेच दें।

बुरा मुझे भी उतना ही लगा था जितना और सब लड़को को लेकिन बस यह था कि मैंने किसी भी तरह का भाव अपने चेहरे पर नही आने दिया। क्षण-भर के लिए मुझे देबू राय का खयाल जरूर आया था। कई लडको की प्रतिक्रिया उनके चेहरे पर साफ पढी जा सकती थी और मिस्टर मुलगाँवकर की चील जैसी नजर हम सब लोगो को चूजों की तरह देख रही थी।

—केयर फॉर अ कप ऑव कॉफी, आदित्य? (एक कप कॉफी हो जाये, आदित्य?) सैशन के बाद बाहर निकलते हुए उन्होने मुझसे इस तरह कहा कि मैं चौंक-सा पड़ा। लग रहा था जैसे मैं सालो उनके साथ काम कर चुका हूँ। दूसरे लड़को को लगा कि वे मुझे पहले से ही जानते थे और शायद इसी कारण मुझे

नौकरी मिली थी।

अपने कमरे में जाते ही उन्होंने एक थर्मस में से कॉफी निकालकर डाली और प्याले के साथ-साथ एक किताब मेरी तरफ सरकाते हुए कहा—इसे पढ़ लो, कल इसके बारे में बात करेंगे।

मैंने देखा—वह मार्केटिंग और सेल्स की एक किताब थी। इसके पहले कि मैं कोई जवाब देता उन्होंने कॉफी का घूँट लेकर मुस्कराते हुए कहा—यू गॉट थिंग्स कमिंग इन लाइफ आदित्य। आइ एम हैप्पी यू आर हियर। (बहुत-सी अच्छी चीजें तुम्हारी जिन्दगी में आनेवाली हैं, आदित्य। मुझे खुशी है कि तुम यहाँ आ गये।)

उसके बाद वे लगभग आधे-घण्टे तक मुझे उन सब चीजों के बारे में बताते रहे जिनकी तैयारी मुझे पहले हफ्ते के दौरान करनी थी। अपनी बात खत्म करने के बाद उन्होंने मुस्कराकर मुझसे पूछा—तुम्हें कुछ पूछना है?

—जी नहीं।

—गुड, दैन सी यू टुमॉरो (बहुत अच्छे, तो फिर कल मिलेंगे), उन्होंने हाथ बढ़ाते हुए कहा और हाथ मिलाकर मैं कमरे से बाहर आ गया।

पहले हफ्ते के दौरान ही यह साफ हो गया था कि मिस्टर मुलगांवकर मेरा इम्तहान ले रहे हैं। जरूरत से कहीं ज्यादा वजन वे मेरे ऊपर लादते जा रहे थे यह देखने के लिए कि मैं कहाँ तक उसे बर्दाश्त कर सकता हूँ। चार हफ्ते बाद फिर वे मुझे एक दिन अपने साथ लंच के लिए ओबेरायज में ले गये थे और उस दिन से हम लोगों के बीच, बकौल उनके, दोस्ती शुरू हो रही थी।

—हर बैच में एक-दो लोग ऐसे जरूर निकलते हैं जिनसे मेरी दोस्ती हो जाती है''', उन्होंने ठण्डी बियर के पहले घूँट को मुँह में काफी देर तक घुमाते हुए कहा था—बट आइ मस्ट से (मुझे जरूर कहना चाहिए) कि तुम उन सबमें काफी अलग हो। मैं तुम्हारा बायो-डाटा देख रहा था'''यह सचमुच प्रभावशाली है। इस बार तुम्हारी कहानी छपे तो मुझे जरूर देना पढ़ने को।

—अगर अब लिख पाया तो ''', मैंने मुस्कराकर कहा।

—नहीं, नहीं, ऐसा मत कहो, उन्होंने हाथ हिलाते हुए कहा—देखो तुम तो साइंस के विद्यार्थी हो इसलिए यह समझ सकते हो। सेल्स में भी सफलता के लिए बुनियादी नियम वही है जो तुम फिजिक्स में पढ़ चुके हो। हवा ऊपर तभी उठती है जब वह गर्म हो जाती है।'''जिस बात से मैं बहुत खुश हूँ वह यह है कि तुम बहुत थोड़े वक्त में ही बिल्कुल ठीक तरह से गर्म हो चुके हो। अब यह नौकरी तुम्हें इतनी मुश्किल नहीं लगेगी।

—यह सब आपके कारण है, मैंने धीरे-से कहा।

—ओह नो'''दैट्स नॉट टू एट ऑल (यह बिल्कुल सच नहीं है) अगर ये बात होती तो इस बैच में बारह लड़के हैं और वे सब इस वक्त यहाँ मौजूद होते, उन्होंने हँसते हुए कहा और फिर मेज पर आगे की तरफ झुकते हुए बोले—मैं तुम्हें

अभी बता सकता हूँ कि इन लडकों मे से आधे तो कम्पनी में टिक नही पायेंगे और बाकी जो रहेंगे वे जिन्दगी-भर सैम्पल बैग हाथ मे उठाये घूमते रहेंगे, सिवाय तुम्हारे। मेरे खयाल से तुम्हे फील्ड मे दो-तीन साल से ज्यादा अपना और कम्पनी का वक्त बरबाद नही करना चाहिए।

मैंने पाया था कि मिस्टर मुलगांवकर का अन्दाजा ठीक साबित होता गया था। उनकी बातचीत मुझे कई मुश्किलों का हल अपने-आप सुझा देती और उनमे से एक यह भी थी कि सब चीजों और सुविधाओं के बावजूद मुझे भीतर कही उस तरह से टाई बाँधकर वह भारी सैम्पल बैग उठाये घूमना अच्छा नही लगता था। उससे छुटकारा पाने का बकौल मिस्टर मुलगांवकर एक ही तरीका था कि मैं अपने आप को और गर्म कर लूं, बुरी तरह तपा लूं—ऊपर उठने के लिए। मेघना को भी मैडिकल सेल्समैन की यह नौकरी पसन्द नही आयी थी। उसे सबसे ज्यादा आश्चर्य और अफसोस इस बात से हुआ था कि इतने अच्छे नम्बर आने के बाद भी मैंने पढ़ाई छोड़ दी थी।

—ये कोई नौकरी है कि बैग उठाये घूमते रहो सारे दिन, उसने झुंझलाते हुए कहा था—अगर करनी ही है नौकरी तुम्हें तो फिर काम्पीटिशन्स मे बैठो। उस हालत मे पढाई भी जारी रख सकते हो!

मेघना के पिता का यही सुझाव था कि मैं आई.ए. एस. और आई. एफ. एस. की तैयारी करूँ और जब तक उनमे मौका न मिल जाये अपनी पढ़ाई करता रहूँ।

—डैडी, असल में बात यह है···, मैंने उनसे कहा था—कि इन सर्विसिज मे मेरी कोई रुचि नही है।

—क्यों भई···ऐसी क्या बात है कि तुम्हे देश की सेवा करने मे दिलचस्पी नही है। मेरा तो खयाल है कि तुम क्योंकि लेखक भी हो, तो और भी अच्छे ऑफिसर बन सकते हो। हमारी ब्यूरोक्रेसी धीरे-धीरे इसीलिए खराब होती जा रही है कि उसमें बजाय अच्छे आफिसर्स के धीरे-धीरे क्लर्क लोग घुसते जा रहे हैं जिनमे न समझ होती, न संवेदना! उन्होने अपने पाइप में तम्बाकू भरते हुए अंग्रेजी मे कहा था।

एकबारगी तो मुझे लगा कि उनकी बात का जवाब न देना ही बेहतर होगा लेकिन फिर मैं अपने-आपको रोक नही पाया—इतना तो आप भी मानेंगे कि ब्यूरोक्रेसी है तो आखिर एक क्लर्की का ही काम!

—मतलब? उन्होंने पाइप जलाते हुए मुझे देखकर पूछा।

—डिक्शनरी में क्लर्क का जो मतलब लिखा हुआ है ब्यूरोक्रेट्स (प्रशासनिक अधिकारियो) की ड्यूटीज (कर्तव्य) आवश्यक तौर पर वही हैं—रिकॉर्ड रखना, चिट्ठियाँ लिखना, ऑफिस की देखभाल या खरीद-फरोख्त और दानखाते वगैरा का हिसाब!

—एक तरह से···हाँ···, वे गौर से मेरी तरफ देख रहे थे—हालांकि क्लर्क

का एक मतलब डिक्शनरी में और भी दिया होगा—एक पढ़ा-लिखा आदमी, पण्डित या विद्वान। यह उसका एक आर्काइक अर्थ होता है।

—अगर ऐसा है भी तो भी फर्क क्या पड़ता है ? मैंने पूछा—महत्वपूर्ण बात यह है कि आप बँधे हुए हाथों से काम करते हैं। ऐसे में यदि दिमाग हो भी तो उसकी सारी छटपटाहट हाथ खोलने-भर के लिए होती है।

—हूँअअ···, उनके चेहरे पर अब मुस्कराहट आ गयी थी—तुम दिमाग को अण्डरएस्टीमेट (कम समझ) कर रहे हो। ब्यूरोक्रेट्स न सिर्फ मुल्क के बेहतरीन दिमागवाले लोगों में से भी छाँटकर बनाये जाते हैं बल्कि फिर उनके दिमाग को अच्छी तरह से प्रशिक्षित भी किया जाता है।

—मैं आपसे सहमत नहीं। कम-से-कम मेरी पीढ़ी में तो बेहतरीन दिमाग-वाले लड़के साइंस और टैक्नॉलोजी पढ़ते हैं। स्कूल और कालिज की सारी पढ़ाई का सिस्टम ही कुछ ऐसा है कि आप इस ट्रेजेडी से बच नहीं सकते। मेरी आवाज में एक ऐसी धार आ गयी थी जिसे मैं बिल्कुल इस्तेमाल नहीं करना चाहता था।

—कमाल है भई आदित्य, वे हँसने लगे—तुम उसे भी ट्रेजेडी कह रहे हो। मान भी लिया जाये कि ज्यादातर जहीन लड़के साइंस की तरफ ही जाते हैं लेकिन उसमें बुरा क्या है ?

—सवाल बुरे या अच्छे का नहीं है, डैडी, मैंने अपने-आपको संयत करते हुए कहा—सवाल है जो कुछ आप सचमुच करना चाहते हैं उसे कर पाने का। आपका सवाल दरअसल सर्विसिज के बारे में था—मैं सिर्फ अपना दृष्टिकोण आपके सामने रख रहा हूँ। किसी चीज की आलोचना नहीं कर रहा। मैं जानता हूँ कि कुछ अफसर और ब्यूरोक्रेट्स बहुत अच्छे होते हैं। लेकिन आप खुद जानते हैं कि ज्यादातर की हालत क्या है ? और जो अच्छे हैं वे किसी और जगह भी उतने ही अच्छे रहते !

—तुम्हारी यह बात बिल्कुल ठीक है, उन्होंने बातचीत का अन्त करते हुए कहा था—मुझे सिर्फ यह लगा कि तुम जैसे ब्राइट लड़के को अपनी क्वालिटीज (गुणों) का पूरा इस्तेमाल करना चाहिए। लेकिन उसके कई तरीके हो सकते हैं—यह मैं मानता हूँ।

मेघना सारी बातचीत खामोशी से सुनती रही थी। जब वह मुझे छोड़ने बाहर तक आयी तो बस उसने धीरे-से सिर्फ इतना ही कहा—मिलते रहना···ये नहीं कि पूरे सेल्समैन ही बन जाओ ! अपनी मुस्कराहट से उसने शाम की उस तल्खी को मिटाने की कोशिश की थी।

मेघना से मिलना होता रहा था हालांकि बहुत-बहुत दिन हो जाते थे और हम लोग पहले की तरह दिन के उजाले में एक-दूसरे से कुछ नहीं कह पाते थे। डूबते सूरज की जगह अब हम लोगों की बातों का गवाह चाँद हो गया था जो कभी-कभी इतनी ढेर सारी चाँदनी लेकर आ जाता कि मैं और मेघना बातें करना छोड़ चुपचाप एक-दूसरे को देखते रहते। कभी-कभी मेघना उन क्षणों में अपने

को रोक न पाती और धीमी आवाज में कुछ ऐसा कह बैठती जिसका मेरे पास कोई जवाब न होता। मेरा चुप रहना उसकी बेचैनी और बढ़ा देता और जब आखिरकार उसके होठ जिद पर उतर आते तो मुझसे बिना कुछ पूछे मेरे होंठ उससे पता नहीं क्या कह देते। बाद में मैं सोचता रहता कि वह मेरी कमजोरी थी, मजबूरी या घबराहट?

यह सचमुच एक अजीब बात थी कि नौकरी मिलने के बाद उस दौरान लगभग साल-भर तक मुझ पर एक नये ढंग की घबराहट सवार रही थी—बावजूद मिस्टर मुलगाँवकर की मुझे पुख्ता करने की भरपूर कोशिश के, और उस सारे आत्मविश्वास के जो अपने काम में मिलती सफलता और तारीफ से मुझे मिलता था। इसका एक छोटा-सा कारण भी था।

हमारी कम्पनी की मुख्य विशेषता स्त्री और बाल रोगों की दवाइयाँ थी और इसलिए मेरे काम का एक बहुत महत्वपूर्ण और आवश्यक भाग ऐसे डाक्टरों से नियमित सम्पर्क बनाये रखना था जो इन दवाओं की सिफारिश और बिक्री में सहायक हों। अदिति भी एक ऐसी डाक्टर थी और उस व्यवसाय में आने के बाद मुझे पता चला था कि वे कई महत्त्वपूर्ण नर्सिंग होम्स में एक जानी-मानी कन्सल्टैण्ट और सर्जन थी। शुरू के कुछ महीने तो इस धर्मसंकट को मैं तरह-तरह के कारणों से टालता रहा था। अन्त में मेरे बॉस ने, जो कि दिल्ली के एरिया सेल्स मैनेजर भी थे मुझसे खासतौर पर डा. अदिति दयाल को विजिट करने के लिए कहा और उसे टालना असम्भव था। काफी सोचने के बाद मैंने उसका भी एक तरीका निकाला। यह मालूम करने के बाद कि वे सप्ताह में किन-किन दिन नर्सिंग होम्स की कन्सल्टैन्सी के कारण क्लीनिक पर नहीं रहती मैं ऐसे ही एक दिन उनकी गैर-मौजूदगी में वहाँ गया और ढेर सारे सैम्पल्स, लिट्रेचर और कम्पनी की तरफ से तरह-तरह की गिफ्ट्स उनकी मेज पर रखकर छोड आया। साथ ही अपना विजिटिंग कार्ड भी जिस पर कम्पनी के नाते मेरा नाम मिस्टर ए. कुमार छपा हुआ था। इत्तफाक से उस समय वह नर्स भी वहाँ नहीं थी जो मुझे पहचानती थी।

उस तरकीब का फायदा यह हुआ कि लगभग महीने-भर का समय मुझे और मिल गया मानो कि अगली विजिट तक। चूँकि कम्पनी की दवाइयों की अच्छी प्रतिष्ठा थी और ज्यादातर डाक्टर्स कम्पनी के बहुत सधे हुए जन-सम्पर्क और व्यवहारकुशल तौर-तरीकों से काफी खुश रहते थे इसलिए वह तरकीब कई महीनों तक कामयाब रही।

अलबत्ता मैं कई बार सोचता कि आखिर यह कब तक चलेगा! अपने-आपको मैं तरह-तरह से समझता कि सब बातों के बावजूद व्यावसायिक सम्बन्ध तो उनसे रखे ही जा सकते थे। हर बार मैं अपने-आपको यह भी भरोसा दिलाता कि इस बीच काफी वक्त बीत गया था और अगर देखा जाये तो मैं बहता हुआ उनसे काफी दूर आ गया था। बिल्मा एक पहाड़ी नदी की तरह मुझे बिल्कुल अस्त-व्यस्त-

सा छोड गयी थी। मेघना उसके पीछे छूटे बिखराव को अपने सहज ढंग से समेटती-सँवारती रही थी। ऊपर से लगता था कि मैं उस जंगल से बाहर निकल आया हूँ जिसमें अदिति से मुलाकात हुई थी। लेकिन सच यह नहीं था।

सच यह था कि जब रात होती थी तो दूर जंगल से वही गन्ध उठती। रात-भर सिरहाने कोई बैठा रोता रहता। दिन के उजाले में जब मैं पूरी तैयारी से जिन्दगी के रू-ब-रू अपनी सबसे बढ़िया मुस्कराहट के साथ खड़ा होता तो भी यह घबराहट मेरा पीछा नहीं छोड़ती थी कि अगर अदिति सामने आ गयी तो···? सच यह था कि बावजूद मेघना की उस धीमी आँच की-सी मौजूदगी और मेरी अपने-आपको बहलाने, भटकाने और तरह-तरह के यकीन दिलाने की उन तमाम कोशिशों के मैं अभी तक वहीं खड़ा था, उस आवाज के इन्तजार में जो अब भी सबकुछ बदल सकती थी।

लेकिन जब आखिरकार मैं अदिति से मिला तो मुझे लगा कि कुछ नहीं बदल सकता। मैं कहीं भी खड़ा या भटक रहा था लेकिन अदिति अपने-आपमें लौट गयी थीं। पिछली मुलाकात के लगभग साल-भर बाद उनसे यह मिलना हुआ था। मैं आश्वस्त होकर गया था कि वे क्लीनिक पर नहीं होंगी। उनकी मेज पर जरूरी चीजें रखकर मैं बाहर निकल ही रहा था कि वे दाखिल हुईं। मुझे देखकर एक क्षणांश-भर के लिए उनकी नजरें ठिठकीं लेकिन उनकी आवाज में उसका जरा भी असर नहीं था। सहज आश्चर्य-भरी मुस्कान से कहा—अरे···तुम?···, और उसके बाद मथी हुई आवाज में उन्होंने पूछा—क्या हाल है आदित्य?

मुझे नहीं मालूम कि मेरे चेहरे पर क्या था उनसे यह वाक्य कहते हुए—गुड मॉर्निंग डाक्टर!

उनकी नजरें मेरे हाथों में लटकते बैग पर पड़ीं और वे हँसने लगीं—अच्छा ···गुड मॉर्निंग! चेम्बर की तरफ बढ़ते हुए वे बोलीं—आओ!

चेम्बर में मेज पर रखी चीजों को देखते हुए वे अपनी कुर्सी पर बैठ गयीं और फिर मेरा कार्ड उठाकर उसे पढ़ते हुए मुस्करायीं—अच्छा तो आप हैं मिस्टर ए. कुमार! मैं यही सोच रही थी कि इस कम्पनी के दिमाग काफी ऊँचे हो गये हैं कि रिप्रेजेन्टेटिव के पास मिलने तक का वक्त नहीं है!

—कुछ इत्तफाक ऐसा हुआ कि मैं जब भी आया आप कहीं गयी हुई थीं, शायद नर्सिंग होम, मैंने नजरें झुकाकर कहा।

—हाँ वीक (हफ्ते) में तीन दिन जाना पड़ता है।

खामोशी छा गयी।

—इस नौकरी में कैसे आ गये? कुछ देर बाद उन्होंने पूछा।

—ऐसे ही···पढ़ाई खत्म कर ली थी।

—क्यों? इतने अच्छे मार्क्स और डिवीजन थे तुम्हारे तो?

मैं चुप हो गया।

—खैर, कैसा लग रहा है ये काम? उन्होंने फौरन दूसरा सवाल किया।

—ठीक है, मैंने कहा और फिर अंग्रेजी में उनसे पूछा—कोई ऐसी चीज जो व्यावसायिक सहयोग के नाते कम्पनी आपके लिए कर सकती है?

—नही। फिलहाल तो ऐसा कुछ ध्यान नही आ रहा···, उन्होने उसी सहज ढग से कहा—होगा तो बताऊँगी। तुम तो आते ही रहते हो! कुछ क्षणो के लिए वे चुप हो गयी और उसके बाद पूछा—चाय पिओगे?

—जी नही, थैंक्स···, मैंने उठते हुए कहा—अब आपकी इजाजत लूंगा मैं। नाइस डे!

—अच्छा···, थैंक्यू वैरी मच···, कुर्सी से उठते हुए वे मुस्करायी—मिस्टर कुमार!

मैं चैम्बर से बाहर निकल आया।

अदिति का व्यवहार जितना सहज, शालीन और वस्तुपरक था मैं उतना ही उससे आहत होकर लौटा था। इस साल-भर के दौरान जब तक मैं उनसे नही मिला था सब बातो के बावजूद मैंने किसी भी चीज पर विश्वास नही किया था। कम-से-कम इस पर तो बिल्कुल ही नही कि अदिति के साथ सम्बन्धो का एक इतना बेजान, सतही और औपचारिक धरातल भी आयेगा कि बाकी सब अहसास यूँ लाचार खडे, चुपचाप मुझे एक दुनियादार आदमी की तरह उस लाश पर से गुजरता देखते होंगे जो कभी मैं खुद था—मेरा वह पीछे छूटा हुआ, अकेला और कमजोर 'मैं'।

रह-रहकर उनकी वह गुनगुनी-सी बेनियाजी मुझे डसती रही थी। उनका बड़प्पन और उसकी समझ, उनका सद्भाव और उसकी शुभेच्छाएँ व उनका धैर्य और उसकी आस्थाएँ···सबकुछ मुझे पहली बार एक ऐसा पाखण्ड लगा था जिसे ढोने के लिए शायद वे अभिशप्त थी। यह ठीक है कि न मुझे उनके बारे मे कुछ मालूम था और न ही इस सारी स्थिति मे उनकी भावनाओं के बारे मे। लेकिन मुझे लगा था कि वे एक बहुत बड़े झूठ के पीछे अपने-आपको छिपाने की कोशिश कर रही थी और मेरे लिए आज भी कई बार बहुत मुश्किल साबित होता है यह स्वीकारना कि झूठ सच की जगह खड़ा हो या वैसा करने की कोई कोशिश करे।

सच तो एक ऐसा पहाड़ है, मैं जानता हूँ, कि जिसकी चोटी तक कोई कभी नही पहुँचता। और झूठ की चोटियाँ अनेक हैं—एक-से-एक चमकती हुई और खूबसूरत लगनेवाली ऊँचाइयाँ···जिनका इस्तेमाल लोग जिन्दगी के दौरान तीर्थों की तरह करते हैं। लेकिन इसका यह मतलब तो नही कि सच के उस पहाड़ पर लोग जाते ही नही। ठीक है कि वे अक्सर बेमौत मारे जाते है लेकिन मुझे लगता है कि झूठ तो उस मौत पर अफसोस करने के बहाने भी खड़ा नही हो सकता। सच और झूठ अलग-अलग पहाड़ हैं और एक पहाड़ दूसरे पर कभी नही चढ सकता।

कुछ महीनों बाद उसी तरह की एक और मुलाकात अदिति से हुई थी और उसके बाद मुझे विश्वास हो गया था कि हम दोनो अलग-अलग पहाड़ थे।

विल्मा कहती थी—अगर आदमी जिन्दा है और जिन्दगी मे अब कुछ और

आज भी वैसी ही है।

खाने का इन्तजाम नीना और मेघना के जिम्मे था और रवि रह-रहकर किचन में जाकर उन दोनों को हूटिंग करता रहा था। हर बार नीना आखिर में उसे किचन से बाहर धकेलते हुए बनावटी गुस्से से चीखती—आउट, यू मन्की···गैट आउट! (चलो बाहर, बन्दर कहीं के · निकलो बाहर!) और रवि हँसते हुए लिविंग रूम में आकर अपना मग बियर से भर लेता और रिकॉर्ड प्लेयर पर बजते गानों के साथ ऊँची आवाज में गाने लगता। बीच-बीच में वह मेरी तरफ देखकर बड़े मजेदार ढंग से गर्दन मटकाते हुए कहता—तुम गा नहीं रहे सेनापति! गाओ कि हम खुश हैं···

और फिर हम दोनों गाने लगते।

मेघना ने रवि के साथ इस तरह मुझे पहली बार देखा था। बेफिक्र मस्ती और खुशी के रोमांच से धड़कते उन क्षणों में एक-एक जाती और पिघलती-सी नजरों से वह मुझे देखने लगती। कुछ देर के लिए हम लोग बालकनी में आकर खड़े हो गये थे। तब मेघना ने अपना सिर मेरे कन्धे पर टिकाकर कहा था—कितने अजीब हो तुम! एक तरफ बिल्कुल उदास, दूसरी तरफ बिल्कुल खुश। बट यू आर माई मैजिक मैन · (लेकिन तुम मेरे जादूगर हो!)

मेघना इस विश्वास को अपने रोम-रोम में सोखती-सी खड़ी रही थी कि जिन्दगी की जो तस्वीर उसने मेरे साथ सोची थी वह आखिरकार अपनी सही शक्ल अख्तियार करने लगी थी। मेरे प्रमोशन से ज्यादा खुशी उसे इस बात की हुई थी कि अब मैं बैग उठाकर घूमता नहीं फिरूँगा। बहरहाल इस बात से अब मैं भी खुश था कि मेघना की उलझन खत्म हो गयी थी। हम दोनों उसी तरह खड़े कुछ बातें कर रहे थे कि रवि दोनों हाथों में बियर मग्स उठाये बालकनी में दाखिल हुआ और हँसते हुए बोला—ओह···आइ एम सॉरी···सेनापति···तुम अभी तक जिन्दा हो! मैं तो समझ रहा था कि मेघना ने अभी तक तुम्हें धक्का दिया होगा नीचे···खैर अगर जिन्दा हो तो लो, बियर पियो!

हँसते हुए हम लोग लिविंग रूम में वापिस आ गये। नीना ने भी तब तक अपना काम खत्म कर लिया था और रवि ने उसके लिए बर्फ और सोडे के साथ तरह-तरह की चीजें मिलाकर एक काफी खूबसूरत-सा दिखनेवाला ड्रिंक तैयार किया था।

—ये सेनापति का क्या चक्कर है रवि···! मेघना ने एक और कोका कोला अपने गिलास में लेते हुए पूछा।

—ये तो बहुत पुराना चक्कर है ··, रवि मुस्करा पड़ा—असल में जब हम लोग स्कूल में थे न तो लड़ाई-झगड़े काफी होते रहते थे। और इन्हें तो जैसे उनकी तलाश रहती थी, वह मेरी तरफ इशारा करके हँसा—होता फिर यह था कि छुट्टी के दिन हम लोग काफी वक्त इस में बरबाद करते थे कि किसको पीटना है—कहाँ पर, कब और कैसे···सारी प्लानिंग हमारे सेल्फ आर्गेनाइजर साब ही करते थे··· वो कहते हैं न कि पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते हैं। तो इनके पाँव देखकर

मुझको लगा कि सेनापति से बढ़िया इसका कोई नाम नहीं हो सकता !

रवि की हँसी में मेघना और नीना भी शामिल हो गयी थी।

—असली बात नहीं बतायेगा ये, मैंने मुस्कराते हुए कहा—क्योंकि कच्ची होती है न इसकी···

—अबे ये कोई नीना की रोटी थोड़ी है कि कच्ची-पक्की होती रहती है···, उसने उछलकर नीना से दूर छलांग लगाते हुए कहा क्योंकि नीना ने अपने गिलास में से बर्फ का एक टुकड़ा निकालकर उसे मारते हुए कहा—वॉट···यू थैंकलेस रफियन·· (क्या ? अहसान फरामोश बदमाश !)

—ओके···ओके···कूल डाउन (अच्छा अच्छा···शान्त हो जाओ !) यंग लेडी ! उसने कमरे के कोने में रखे एक काफी ऊँचे स्टूल पर बैठते हुए कहा—अब असली किस्सा सुनो। और बड़े नाटकीय ढंग से अपना गला खखारकर उसने बताना शुरू किया—हुआ यह कि आठवीं क्लास में हम लोगों के स्कूल में एक नाटक हुआ। मुझे राजा का पार्ट करना था और गुड्डू को सेनापति का। एक सीन में मुझे एक डायलॉग बोलना था— इस पापी को तो मैं स्वयं अपनी तलवार से ही मौत के घाट उतारूँगा। डायलॉग के बीच में ही मुझे अपनी तलवार म्यान से बाहर खींचकर बहादुरी के साथ लहरानी थी। लेकिन तलवार से ज्यादा फटीचर उसका म्यान था। मैंने कई बार कोशिश की उसे बाहर खींचने की और उसी चक्कर में मैं दो-तीन बार कह चुका था—इस पापी को ' इस पापी को···आखिरकार जब तलवार नहीं निकली तो सिवाय डॉयलाग बदलने के और कोई सूरत मुझे नजर नहीं आयी। और सिंहासन से नीचे उतरते हुए मैंने कहा—सेनापति, इस पापी को हम अपनी तलवार से नहीं बल्कि तुम्हारी तलवार से मौत के घाट उतारेंगे···, और वह बीयर का घूँट लेकर हँसने लगा—और फिर देखना था हमारे सेनापति को···पट्ठे ने फौरन तलवार निकालकर मेरे कदमों में रख दी और बोला—जो आज्ञा महाराज !

हँसते-हँसते हम लोग पागल हो गये थे। नीना की हालत तो बहुत ही बुरी हो गयी थी। आखिरकार अपनी हँसी पर काबू पाते हुए वह बोली—तुम दोनों न··· वैसे अब भी अगर टीम बना के तमाशा करने निकल जाओ तो अच्छा खा-कमाओगे !

रवि स्टूल से उतरकर अब उसके पीछे आ खड़ा हुआ था। उसकी बात सुनकर उसने प्यार से उसके बालों को सहलाते हुए अपनी खास अदा से कहा—मैं तो खा लूँगा बीवी लेकिन तेरा क्या होगा ?

नीना ने अपना सिर पीछे टिकाकर उसकी तरफ देखा और बड़े नाटकीय ढंग से साँस छोड़ते हुए बोली—चलो फिकर तो हुई कुछ !

देर रात तक हम लोग वहाँ ऊधम मचाते रहे थे। बहुत दिनों बाद वह एक ऐसा दिन था जब मैं घर जाते ही सो गया था। सब चीजों से बेखबर—बस एक तसल्ली के असर में कि अपने मोहल्ले के उस माहौल से फरार होने का रास्ता मैं

उसके यहाँ रिश्तेदारों का आना-जाना हालाँकि उसकी बढ़ती उम्र के कारण कम होता गया था लेकिन बदस्तूर कायम था। उसका शरीर उम्र के कारण बिखरता-सा गया था। किसी टूटे-फूटे मकान की तरह थी उसकी देह जिसमें वक्त-जरूरत कुछ आवारा किस्म के लोग आकर अपनी मनमानी करते और उसमें रहनेवाली आत्मा खाली वक्त की मनहूसियत में अबाबीलों की तरह फड़फड़ाती रहती। लेकिन इस सबके बावजूद मेरी नजरों में उसकी वह तसवीर अब भी कायम थी जो इस मायने में बहुत सुन्दर थी कि उसमें सब बातों पर भोलेपन की एक दूधिया-सी रोशनी थी जिसके कारण बचपन से ही वह मुझे बहुत अच्छी लगती थी।

जब मैंने वह मकान ले लिया तो एक दिन कम्मो ने मुझसे कहा—गुड्डू, तू मुझे अपना नया घर नहीं दिखायेगा? ताईजी बता रही थीं कि तूने बहुत सुन्दर मकान लिया है!

—किराये पर लिया है वो···और वो भी कम्पनी ने, मैंने मुस्कराते हुए कहा था—घर तो मेरा यही है जहाँ तू बैठी अम्माँ को बिना बात हड़काती रहती है।

—तो क्या हुआ! साफ क्यों नहीं कहता कि नहीं दिखलाना, उसने तुनकते हुए कहा—बस खत्म हो गयी बात!

मुझे हँसी आ गयी उसका बचपना देखकर—अच्छा बाबा, देख लेना। बता कब चलेगी?

—जब तुझे टाइम हो!

—अच्छा फिर कल का रखते हैं। ऑफिस से आकर चलेंगे। ठीक है?

—हाँ, उसने खुश होकर कहा और फिर धीरे-से बोली—लेकिन मैं अजमेरी गेट पर मिलूँगी तुझे। यहाँ से नहीं चलेंगे।

—ठीक है।

अगले दिन शाम को मैं उसे उस मकान में लाया था। बच्चों की तरह खुश हो-होकर वह एक-एक कमरा, एक-एक चीज देखती रही थी और मुझसे तरह-तरह के सवाल पूछती रही थी उनके बारे में। मैंने गेस्ट हाउस की कैण्टीन से उसके लिए चाय मँगवायी। चाय के दौरान उसे मेरे बचपन की बहुत-सी बातें याद आ गयीं और धीरे-धीरे उसके चेहरे पर एक खामोश उदासी उतरती गयी।

—मालूम है तू जब छोटा था और मेरे कमरे में आकर ताश खेलता था तो कई बार मैं सोचती कि अगर तेरे पास भी मेरे जैसा कोई अपना कमरा होता तो कभी-कभी मैं तेरे कमरे में आकर ताश खेलती। असल में घर में इतना बन्द-बन्द-सा लगता था मुझको कि मेरा बहुत मन होता था किसी दूसरे के यहाँ जाने का। और मोहल्ला तो जैसा है तूने देखा ही है। और उन दिनों तो मेरी उम्र कम थी न इसलिए मम्मी वैसे भी नहीं जाने देती थीं कहीं। वो तो अच्छा था कि तू था गुड्डू···

—चल ताश खेलें आज, मैंने अचानक कहा क्योंकि मुझे लगा कि कम्मो बीती हुई बातों में घिरती जा रही है और वह ठीक नहीं था।

—हैं ताश यहाँ पर ? उसने अन्यमनस्क-सी मुस्कराहट से पूछा।

—हाँ···ये हैं न, मैंने पास की तिपाई पर रक्खी ताश की डिब्बी को उठाते हुए कहा।

—चल फिर, उसने सीधे होकर बैठते हुए कहा।

मैंने पत्ते बाँटे और हम दोनों रमी खेलने लगे। उसका फायदा यह हुआ कि कुछ देर के लिए उसका ध्यान भटक गया और वह ताश के खेल मे बँधी रही। लेकिन अचानक फिर बीच बाजी मे ही उसने पत्ते फेंक दिये और बुरी तरह से सिसकने लगी।

मैं घबरा-सा गया। एक-बारगी तो मुझे कुछ नही सूझा फिर उठकर मैंने उसके पास जाकर उसको चुप कराने की कोशिश की—कम्मो···? क्या हुआ ?···बता न क्या बात है आखिर ?

उसने गर्दन हिलायी और उसी तरह सिसकियाँ लेती रही। मै चुपचाप उसके पास बैठकर उसका सिर सहलाता रहा। कुछ देर बाद उसके आँसू रुके। मैंने उठकर उसे एक गिलास मे पानी दिया। उसे पीकर उसने अपने आँचल से अपना चेहरा पोंछा और फिर धीरे-से बोली—कुछ नही गुड्डू···बचपन की याद आ गयी। चल अब। वापिस चलें।

—तू तो बिल्कुल पागल है। ऐसे रोते हैं कहीं···, मैंने दुलारते हुए कहा—बीता हुआ कभी लौटता है कहीं ! और जो हो गया सो हो गया। अभी तो बहुत जिन्दगी है कम्मो···हिम्मत से काम ले। मुझे बता न तू, अगर कुछ परेशानी है तो···पागल !

—और है कौन जिसे बताऊँगी ? उसने काँपती हुई आवाज से कहा—पापा ने तो अब आना भी बन्द कर दिया। और मम्मी ?" पता नहीं किस जन्म का बदला लिया है चाचाजी ने उनसे ! लेकिन···गुड्डू···मैंने क्या बिगाड़ा उनका···हैंएए ?

—अच्छा बस, अब रो नही···, मैंने उसके फिर से बहते आँसुओं को पोंछते हुए कहा—मैं तो हूँ न। तू घबराती क्यों है ? अब कुछ नही होगा तुझे···तू बताती भी तो नही है कुछ मुझे। बस रोने लगती है जब देखो ! चल चुप हो जा अब। मैंने फोन उठाकर कैण्टीन से फिर चाय मँगवायी और काफी देर तक उसे समझाता रहा और तरह-तरह की बातो से उसका ध्यान बँटाने की कोशिश करता रहा। धीरे-धीरे उसकी हालत सँभली और उसके बाद हम दोनों वहाँ से वापिस लौटे।

अजमेरी गेट पर आकर उसने कहा—बस यहीं उतार दे मुझे। मैं आ जाऊँगी।

मैंने मोटर साइकिल रोक दी। उतरकर उसने धीरे-से कहा—बहुत अच्छा है तेरा घर। बस अब शादी और कर ले तू ! और वह आगे बढ़ गयी।

अगली सुबह मुझे अम्माँ ने बहुत जल्दी उठाया—गुड्डू···बेटा उठ···कम्मो नही रही गुड्डू !

मैं भौंचक्का-सा अम्माँ की तरफ देखता रह गया।

अम्मी ने फिर बताया कि कल शाम को वह घर से कहीं गयी थी लेकिन फिर वापिस नहीं लौटी।

अभी सुबह पुलिस ने खबर की कि वह रेल के नीचे कटकर मर गयी है। लाश अस्पताल में है। कानूनी कार्यवाही के बाद ही संस्कार वगैरा होगा।

एक-एक शब्द पत्थरों की तरह मेरे ऊपर गिरता गया। वह टूटा-फूटा मकान आखिर ढह गया था।

कम्मो के घर रिश्तेदार इकट्ठे होने लगे थे। उनसे सब मालूम करके मैं अस्पताल पहुँचा। उसके शरीर के टुकड़े पोस्ट मॉर्टम हाउस के शवगृह में रक्खे हुए थे लेकिन मुझमें हिम्मत नहीं थी वह सब देखने की। उसके चाचा पुलिसवालों से कुछ बात कर रहे थे। मुझे लगा कि मेरे करने लायक वहाँ कुछ नहीं था। मरने के बाद कम्मो की फिक्र करनेवाले वहाँ बहुत से लोग थे। दोपहर बाद उसकी अर्थी उठी। मैं श्मशान तक उसके साथ गया। रास्ते-भर वह मुझसे पूछती रही—लेकिन गुड्डू'''मैंने क्या बिगाड़ा था उनका ?

वे, यानी कम्मो के चाचा जब धू-धू करती चिता के पास खड़े आँसू बहा रहे थे तो मुझे लगा कि उस आदमी को मैं उसी चिता में धकेल दूँ। लेकिन मुझे खामोश रहना था। कम्मो तो जिन्दगी-भर खामोश रही थी।

वहाँ से लौटते-लौटते शाम हो गयी थी।

अगला दिन छुट्टी का दिन था लेकिन काफी जल्दी मैं तैयार होकर कम्पनी के गैस्ट-हाउस आ गया। कमरे में मेज के ऊपर ताश के पत्ते उसी तरह पड़े हुए थे जिस तरह कम्मो ने उन्हें बीच बाजी में ही फेंक दिया था। पानी का वह खाली गिलास, चाय का प्याला' 'सबकुछ उसी तरह था। न जाने कितनी देर मैं उन चीजों को घूरता चुपचाप बैठा रहा।

उस दिन जिन्दगी में पहली बार मुझे मौत का अहसास हुआ था। हफ्तों, महीनों, सालों और सदियों में बँधे जिन्दगी के सिलसिले में मौत छुट्टी के दिन की तरह आती है और कुछ देर के लिए एक खालीपन पैदा कर देती है। सबकुछ जहाँ-का-तहाँ, जस-का-तस बिखरा पड़ा रहता है। फिर अगला दिन शुरू हो जाता है'''

अगले दिन से मुझे अपना नया 'सेल्स प्रोग्राम' बाजार में शुरू करना था। सेल्स ऑर्गनाइजर की कुर्सी में बैठकर वह पहला बड़ा दाँव था जिसके लिए मैंने पूरी तैयारी से पासे फेंके थे। कम्पनी की तरफ से अभी तक कोई ऐसी बिक्री कार्यक्रम नहीं अपनाया गया था जिसमें एक साथ छः दवाएँ या प्रॉडक्ट्स शामिल हों। कम्पनी के उच्चस्तरीय विभागों में मेरे इस कार्यक्रम को लेकर काफी रस्साकशी थी। अधिकतर लोगों का ख्याल था कि इतनी जल्दी प्रमोशन मिलने के कारण मैं अपने अतिरिक्त उत्साह में बहुत बड़ा जोखिम मोल ले रहा था। दवाओं के धन्धे में दिनों-दिन बढ़ती स्पर्धा के कारण बहुत-सी कम्पनियों को एक-एक प्रॉडक्ट बेचने के लिए महीनों तरह-तरह के हथकण्डों से काम लेना पड़ता था। ऐसे में एक साथ

छः उत्पादों की बिक्री बढाने की मेरी योजना उन्हे शेखचिल्ली का ख्वाब नजर आ रही थी। मेरे दिमाग मे बस एक ही बात थी—यदि कार्यक्रम फेल हो गया तो इस नौकरी से छुटकारा मिल जायेगा···

कम्पनी मे बस तीन लोग थे जिनके कारण, सारे अन्दरूनी विरोध के बावजूद, मुझे यह मौका दिया जा रहा था। मेरे बॉस, कम्पनी के सेल्स डायरेक्टर और मिस्टर मुलगाँवकर। मैंने सिर्फ मिस्टर मुलगाँवकर को अपना पूरा कार्यक्रम विस्तार से बताया था। बीच-बीच मे वे मुझसे तरह-तरह के सवाल करते रहे थे और कार्यक्रम के छोटे-से-छोटे अंश को भी उन्होने ठोक-बजाकर देखा था। पूरी तरह आश्वस्त होने के बाद उन्होने अपने खास ढंग से मुस्कराते हुए कहा था—परफैक्ट···कुमार! गो अहैड एण्ड ब्लास्ट! (बिल्कुल सही है···कुमार! आगे बढ़ो और उड़ा दो!) मैं तुम्हे अभी से बता सकता हूँ कि तुम्हे क्या-क्या मिलनेवाला है। नम्बर एक—कम-से-कम 2 करोड़ की बिक्री। नम्बर दो—कम्पनी के इतिहास मे रिकॉर्ड प्रमोशन, ढाई साल में दूसरा। नम्बर तीन—वो घण्टी, जो फिर किसी के पास नही होगी तुम्हारे गले में बाँधने के लिए और नम्बर चार—मिस्टर मुलगाँवकर की तरफ से एक यादगार डिनर, पूरे सैल्यूट के साथ! और वे हँस पड़े थे।

—अब देखो, अपने कानों मे रुई लगा लो, चलते वक्त उन्होंने मेरा कन्धा थपथपाते हुए कहा था—किसी की मत सुनो···इन सबके दिमाग मे भूसा भरा हुआ है!

कार्यक्रम का वह पहला दिन अच्छा-खासा हंगामा साबित हुआ। मैंने ज्यादा जोर पुरानी दिल्ली के उन इलाकों मे दिया था जहाँ अधिकांश रहनेवाले गरीब तबके के लोग थे। उनमे से कई स्थानों पर जैसे लाल कुँआ, चितली कबर, चूड़ीवालान और बल्लीमारान के क्षेत्रो मे ट्रैफिक जाम होने की नौबत आ गयी थी। कम्पनी के सेल्स डायरेक्टर मेरे बॉस के साथ कार्यक्रम का समय समाप्त होने यानी दोपहर तक उन सारे क्षेत्रो का दौरा करते रहे थे। मैं उसी गाड़ी मे पिछली सीट पर चुपचाप बैठा रहा था। हर क्षेत्र मे कम्पनी द्वारा स्थापित किये गये वैक्सीनेशन बूथ्स पर लोगों की भीड देखकर सेल्स डायरेक्टर अपना आश्चर्य दबा नही पाते—इन्क्रैडिबल! (अविश्वसनीय!) उनके मुँह से निकलता और मेरे बॉस मुडकर मेरी तरफ देखने लगते।

दरअसल उनमें से किसी को यह मालूम नही था कि इस कार्यक्रम के लिए मैंने कितनी मेहनत की थी। सारे कार्यक्रम का मुख्य आधार यह था कि इन सब मौहल्लो को मैं बचपन से देखता आया था। घनी आबादीवाले इन हिस्सो मे वे लोग रहते थे जिन्हे न तो यह मालूम होता था कि बच्चे कब पैदा हो जाते हैं, कब मर जाते हैं, क्यो और कैसे? आरम्भिक टीकों को लगवाने वे अगर बच्चों को सरकारी अस्पतालो में ले भी जाते थे तो वहाँ या तो कम्पाउण्डर नही होता था या टीके की दवा। उन छोटे-छोटे, गोल-मटोल बच्चों पर मक्खियाँ भिनभिनाती रहती थी।

जाहिर है कि कार्यक्रम बहुत सादा था। हर इलाके मे कुछ डॉक्टरों व मौहल्ले के बजुर्गों से बात करके मैंने कम्पनी की तरफ से बच्चों के लिए, सरकारी सहयोग मे जो टीका केन्द्र खुलवाये थे, उन्ही के साथ कुछ दवाइयो की दुकानों को जोड़ दिया था। टीका लगने के तीन महीने बाद तक पैदा होनेवाली शिकायतों के लिए कम्पनी की उन छ: दवाओं का भरपूर स्टाक उन दुकानों पर था। टीका केन्द्र से दिये गये एक कार्ड के आधार पर उन दवाओं को थोड़े कम दामों पर बेचा जाता था। कम्पनी का मुनाफा उसके कारण जितना कम हुआ उसकी कमी बिकनेवाली दवाइयों की भारी तादाद से होनी थी। सहयोग देनेवाले डाक्टरों व अन्य लोगों को कम्पनी की तरफ से छोटी-मोटी घरेलू उपयोग की चीजें भेंट स्वरूप दी गयी थी।

'हर सप्ताह एक दिन' के आधार पर वह कार्यक्रम पूरे तीन महीने चला था। पहले हफ्ते मे ही कई अखबारो ने कार्यक्रम के सामाजिक पक्ष की सराहना करते हुए कम्पनी की बेहद तारीफ की थी। मिस्टर मुलगांवकर की चारों बातें सच साबित हुई थी।

—डिण्ट आइ टैल यू कुमार? (मैंने कहा नही था, कुमार?) मिस्टर मुलगांवकर ने ओवराय'ज के बार मे बैठे हुए मुझसे कहा था—और तुम्हें मालूम है इस प्रोग्राम ने कम्पनी को कितनी पब्लिसिटी दी है? पिछले हफ्ते जब मैं बॉम्बे था तो स्विटजरलैण्ड से मिस्टर बॉर्ग आये हुए थे। हो हैज अ गिफ्ट पैकेट फॉर यू! उनके पास तुम्हारे लिए एक उपहार है!

वह डिनर सचमुच यादगार था। जब तक हम लोग बार से उठे मिसेज मुलगांवकर और उनकी बेटी भी डिनर पर शामिल होने के लिए पहुंच गयी थी। देर रात को उन लोगो ने मुझे कम्पनी गैस्ट हाउस पर छोड़ा था। नशे से भारी पैर और आँखें लिए मैं बहुत देर उस कोठी के सामने अँधेरे मे खड़ा रहा था···

यादगार डिनर खत्म हो चुका था। अब कोई नही था खुशियाँ मनाता। अपनी उस सफलता के जश्न के बाद अगर मैं घर वापिस लौटता तो अम्मां और बाबा वहाँ थे। रवि के पास लौटता तो वह दूसरा जश्न शुरू कर देता। मेघना के पास लौटता तो वह रात-भर मुझसे बातें करती रहती···लेकिन मैं तो एक ऐसे मकान के सामने खड़ा था जिसमें कोई नही रहता था। एक क्षण के लिए मुझे कम्मो की याद आयी जिसे खत्म हुए अब महीनों हो चुके थे।

नशे की हालत मे उस रात वह मेरी पहली तस्वीर थी जिसे अब देखकर कई बार मुझे हँसी आ जाती है। अब मैं अच्छी-खासी शराब पीता हूँ, कभी-कभार ज्यादा भी हो जाती है लेकिन ऐसा कभी नही होता जैसा उस रात हुआ था···

काफी देर तक मैं कोठी के सामनेवाली उस लेन मे टहलता रहा, बातें करता हुआ—सबसे—कम्मो से, मेघना से, रवि से और अदिति से। वे सब बातें जो मैंने इन लोगों से कभी नही कहीं थी, सहसाती रात के सन्नाटे मे मैं पूरी ईमानदारी से कोशिश करता रहा था उन सब बातो को उन्हें समझाने की। मुझे नही मालूम कि कब मैं फुटपाथ के किनारे एक बड़े से पेड़ से टिककर बैठ गया और कब फिर नशे

की आड़ में नींद मुझ पर झपट पड़ी···

इलाके के चौकीदार ने जब मुझे पकड़कर हिलाया तो सुबह के पाँच बजे थे।

—साब···क्या हुआ? तबीयत तो ठीक है न साब? चौकीदार घबराया हुआ-सा पूछ रहा था।

—हाँओ···ठीक है···कुछ नहीं तुम जाओ, मैंने बैठते हुए कहा और फिर उसे सन्तुष्ट करने के लिए और अपनी इज्जत बचाने के लिए झूठ बोला—थोड़ा चक्कर-सा आ गया था। उसके जाने के बाद मैं मुस्करा पड़ा—मिस्टर मुलगाँवकर का डिनर सचमुच यादगार था।

कम्पनी में सब लोगों का रवैया अब इतना बदल गया था कि मुझे खुद ही उलझन होने लगी। रेस में जीते हुए घोड़े की तरह लोग मुझे देखने लगे थे और उसका एक नतीजा यह हुआ कि ऑफिस तक में वह अकेलापन मेरे सामनेवाली कुर्सी पर बैठा रहता क्योंकि लोगों ने अब मिलना-जुलना भी काफी कम कर दिया था। बस एक ही राहत थी कि काम बहुत था। कम्पनी वह रेस जीतकर अब खुद घोड़ों की रफ्तार से सोचने लगी थी।

मेघना इस बीच एम. ए. कर चुकी थी। वैसे उसने रिसर्च शुरू कर दी थी लेकिन साथ ही वह कई बार मुझसे कह चुकी थी कि उसके पिता मुझसे कुछ बात करना चाहते हैं। पिछले कुछ महीनों से मैं उसकी बात तरह-तरह के बहानों से टालता रहा था लेकिन मैं जानता था कि यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं चल सकती।

यह सच था कि मेघना को मेरे साथ चलते अब छः साल हो चुके थे। यह भी सच था कि इस बीच रवि के अलावा एक वही थी जो काफी कुछ जानती थी और समझती थी मुझे। और यह भी सच था कि कभी-कभी जब मैं आगे की जिन्दगी के बारे में सोचता तो मुझे याद आता कि मेघना उसके बारे में मुझसे कहीं ज्यादा सोच चुकी है। लेकिन एक सच यह भी था कि वह गन्ध अभी तक उसी तरह मुझे भटका रही थी···

इस सारे दौरान मैं बस दो बार और मिला था अदिति से। उसी तरह की बँधी-फटी-सी मुलाकातें थीं वे भी। दोनों बार वे उसी शान्त अजनबीपन से मिली थीं। दोनों बार मेरा व्यवहार एक विनम्र और व्यवसायकुशल प्रतिनिधि का ही था। प्रमोशन मिलने के बाद फिर वह सिलसिला भी वहीं खत्म हो गया था। अब लगभग साल-भर हो चुका था, उन्हें देखे भी।

सुधीर से जरूर पिछले साल-भर के दौरान दो बार मुलाकात हुई थी। नौकरी छोड़ने के बाद वे स्वतन्त्र लेखन ही कर रहे थे। इस बीच उनका एक नया उपन्यास भी आया था जिसको लेकर शुरू में तो थोड़ी हलचल जरूर हुई थी लेकिन उसके बाद हमेशा की तरह लोग चुप होकर बैठ गये थे। मेरी उत्सुकता उस उपन्यास को लेकर कुछ ज्यादा ही थी और इस अर्थ में उसे पढ़कर मैं थोड़ा निराश हुआ

क्योंकि मैं जो उसमें ढूँढ़ रहा था उसकी हल्की-सी प्रतिध्वनि भी उसमें नहीं थी। यूँ उपन्यास अच्छा था और मुझे थोड़ी हैरत हुई कि अब जबकि सुधीर को कलम घिसते-घिसते लगभग तीस साल हो चुके थे और बावजूद हिन्दी के मूर्धन्य आलोचकों की पूरी साजिशों के उनका नाम एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुका था, तब भी लोग चुप थे। पत्र-पत्रिकाओं में बातें हो रही थीं उन किताबों और लेखकों की जो प्रकाशक की दुकान से सीधे सरकारी गोदामों में पहुँच जाते हैं और वहाँ दीमकों से लड़ते-लड़ते खत्म हो जाते हैं। रातों-रात किसी कॉफी हाउस में कोई नया साहित्यिक आन्दोलन शुरू हो जाता, वे लोग जिन्होंने लिखना तो दूर ठीक से पढ़ा भी नहीं था, सम्पादक और समीक्षक बन जाते और हवा में से कुछ लेखक उतर आते जिन्हें नये तो क्या कुछ नामी आलोचक भी प्रेमचन्द और निराला की परम्परा से जोड़ देते। सबकुछ किसी छोटे-से मौहल्ले की रामलीला की तरह था जिसमें वक्त जरूरत कोई भी कुछ भी बन जाता और धर्म के नाम पर हर तरह की हरामखोरी वे लोग करते रहते।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि केवल यही हो रहा था उन दिनों। आज सोचता हूँ तो लगता है कितना कुछ हुआ था उन दिनों जिसने इन सारी बदजायका बातों के बावजूद मुझे लिखने-पढ़ने से जोड़े रखा था। कितनी ही बेहतरीन कहानियाँ, कविताएँ और किताबें उन्हीं दिनों लिखी गयी थीं। बहुत-से लोग थे ऐसे जिनकी कृतियों का इन्तजार रहता था—इसलिए कि एक पाठक की तरह तो वे मुझे अभिभूत कर ही जाती थीं साथ ही एक नये, कम-उम्र लेखक के लिए उनमें इतना कुछ रहता था सीखने, सोचने और समझने के लिए कि लगता था लेखक सचमुच एक महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है।

उपन्यास के बारे में जब सुधीर से बात हुई तो यह जानकर वे काफी खुश हुए कि मुझे वह अच्छा लगा था। घूम-फिरकर बात उसी माहौल को निकल आयी, जिसे सुधीर महत्व तो नहीं देते थे लेकिन उस पर अफसोस जाहिर करने से कभी नहीं चूकते थे।

—हमारा दुर्भाग्य वास्तव में यह है कि सभ्यता और संस्कृति की धारा इतनी पुरानी हो चुकी है कि अपने नैतिक आचरण में हम लोग बहुत लापरवाह हो चुके हैं, उन्होंने अपनी उसी खोयी हुई-सी आवाज में कहा था।

—ऐसी चीजों की जिम्मेदारी किसी एक ही बात पर डालकर तो हम बरी नहीं हो सकते, मैंने कहा था—और भी लोग हैं जिनका इतिहास काफी पुराना है। चीन, जापान, जर्मन'''यह संकट तो इन देशों में भी होना चाहिए था?

—एक सीमा तक तो तुम्हारी बात ठीक है लेकिन वास्तव में एक भारतीय आदमी इन सब लोगों से अलग है। धर्म नहीं अब धर्म का पाखण्ड है उसके पीछे जिसमें एक तरफ तो उसकी पूरी आस्था है लेकिन साथ ही वह यह भी देखता है कि उसी धर्म के नाम पर उसके अपने समाज के ही लोग उसे लूट-खसोट रहे हैं'''
वे सिगरेट जलाने के लिए रुके और फिर धुएँ का वह गुबार उनके मुँह से निकला

—तो फिर उससे और क्या उम्मीद की जा सकती है? ऐसी स्थिति में यही सब होगा···साहित्य की जगह पर साहित्य का पाखण्ड ज्यादा है यहां।

—हां, लेकिन मुझे लगता है कि इसके लिए जो लोग जिम्मेदार हैं उनमें से आप भी एक हैं, मेरे मुंह से निकल गया।

—जरूर हूँ···, उन्होंने तपाक् से कहा—मैंने कब इन्कार किया?

उनके इस तरह के जुमलों पर बातचीत अक्सर खत्म हो जाती थी और उस रोज भी यही हुआ। जैसे ही बात उनकी जिम्मेदारियों पर आती थी, सुधीर मेहता पहले तो अपने उस मशहूर कहकहे को ढूंढ़ते थे और जब वह उन्हें नहीं मिलता तो वे सीधे आत्मसमर्पण कर देते थे।

धीरे-धीरे इन सालों में मैंने देखा कि नैतिकता के सन्दर्भ में बहुत-सी मुश्किलों के लिए यह एक रामबाण नुस्खा है जिसका चलन साहित्य और कला के क्षेत्र में तो कुछ ज्यादा ही है। बल्कि पान-तम्बाकू के साथ तो कुछ लोग इसका ऐसा अचूक इस्तेमाल करते हैं कि सवाल करनेवाला तो छोड़िए खुद नैतिकता मुंह बाये खड़ी रह जाती है।

कुछ महीनों बाद सुधीर की एक कहानी छपी थी उसी साप्ताहिक पत्रिका में जिसकी और जिसके सम्पादक की वह साहित्य समाज में तो अक्सर, और मेरे सामने भी कई बार आलोचना कर चुके थे। दरअसल यह पत्रिका भी उसी संस्थान की थी जिसकी नौकरी सुधीर ने छोड़ी थी। फर्क यह था कि सुधीर जिस पत्रिका के सम्पादक थे वह विशुद्ध साहित्य की पत्रिका थी और यह साप्ताहिक एक पारिवारिक पत्र था। अलबत्ता इस साप्ताहिक के सम्पादक हिन्दी के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और बहुमुखी प्रतिभावाले लेखक थे और इसलिए पत्रिका की पूरी सीमाओं के बावजूद उनकी अपने ढंग से कोशिश रहती थी कि न सिर्फ देश के प्रतिष्ठित लेखक ही उसमें नियमित रूप से छपते रहें बल्कि नये लेखकों को भी उसमें यथोचित स्थान मिल सके। दिलचस्प बात यह थी कि हिन्दी की उस सम्भवतः सबसे ज्यादा सर्कुलेशनवाली बहुरंगी पत्रिका में नये लेखक तो बिचारे छटपटाते ही रहते थे किसी तरह भी छपने के लिए, साथ ही लगभग सभी प्रतिष्ठित लेखक भी उसमें बिना नागा छपते रहते थे। यही लोग जब आपस में और सभा-गोष्ठियों में उस पत्रिका की आलोचना करते तो मुझे अजीब लगता था। इस मामले में क्योंकि सुधीर का भी रवैया वही था इसलिए एक-आध बार हम लोगों में इस विषय पर थोड़ी तल्खी हो चुकी थी। पिछली बार जब इस सिलसिले में बात हुई थी और वे उसी तरह की बातें करने लगे थे तो मैंने उनसे साफ-साफ कहा था—देखिए पहली बात तो यह है कि आप उस पत्रिका से गलत तरह की अपेक्षाएँ रखते हैं। दूसरे अगर आपको इतना ही गहरा असन्तोष है तो फिर क्यों छपते हैं आप उस मैगजीन में। अगर आप जैसे सभी महत्वपूर्ण लेखक जो ऐसा महसूस करते हैं यह तय कर लें कि उस पत्रिका में नहीं छपेंगे तो अपने आप ही सिचुएशन बदल जायेगी।

—हाँ! ···यह बात तो ठीक है तुम्हारी, उन्होंने सोचते हुए कहा था—लेकिन उससे विकल्प मिल ही जाये यह जरूरी नहीं। अच्छी पत्रिका निकालना इतना आसान काम भी नहीं है। मैं देख चुका हूँ···, और वे मुस्कराये।

—तो फिर रोना किस बात का है। अगर सिर्फ गालियाँ देने से ही काम बन जायेगा तो आप कहिए मैं रोजाना हजार बार लिखकर आपको दे देता हूँ।

—मेरे ख्याल से वह काम तुम बाद में कर सकते हो, फिलहाल तो कहानियाँ लिखने में मन लगाओ! उनके कहकहे ने बातचीत की कड़ुआहट को दूर कर दिया था। बहरहाल उनकी उस कहानी ने मुझे न सिर्फ निराश ही किया बल्कि एक दूसरे ढंग की नफरत उनके प्रति मेरे मन में पैदा कर दी। शिल्प की दृष्टि से भी वह उनकी अब तक की कहानियों में सबसे कमजोर रचना थी।

एक लम्बे और किंचित उबाऊ आत्मालाप की शक्ल में वह लिखी गयी थी जिसमें लेखक जो कि आरम्भिक जीवन के कुछ व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर यह मानता है कि जीवन में उससे लोगों ने हमेशा छीना-ही-छीना है और वह अभिशप्त है हर बार हारने के लिए। नियति की इसी कड़ी के रूप में एक औरत उसके जीवन में आती है और जोकुछ बचा-खुचा है वह भी लेकर चली जाती है।

जाहिर था कि कहानी अदिति के बारे में थी। लेकिन मुझे न जाने क्यों यह बहुत ही अनैतिक बात लगी थी कि किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में जिसे जीवन से निकले अभी कुछ भी वक्त नहीं गुजरा और जो अब भी कहीं आस-पास ही है उसके बारे में कुछ भी इस तरह से लिखा जाये कि उसे तकलीफ पहुँचे। यूँ मुझे उन दोनों के सम्बन्धों के बारे में कुछ भी नहीं मालूम था लेकिन जिस तरह के विस्तार उन्होंने उस कहानी में दिये थे मुझे लगा कि वे शालीन नहीं थे। इस सबके अलावा मुख्य बात यह थी कि कहानी के पूरे विवरण में इस बात की हल्की-सी भी झलक कहीं नहीं मिलती थी कि यह व्यक्ति उस औरत को आखिर क्या देता है। किसी भी तरह के सम्बन्धों में बिना कुछ दिये कुछ पाने की आकांक्षा फिजूल होती है लेकिन उस कहानी में लेखक की मुद्रा आत्मदया की थी और कुछ-कुछ शहीदाना।

मैंने अन्ततः तय किया कि थोड़े दिन सुधीर से न मिलना ही बेहतर होगा।

इसी बीच एक कहानी मेरी भी प्रकाशित हुई थी उसी पत्रिका में जो स्कूल के दिनों के बारे में थी और मेरे आस-पास कई लोगों को पसन्द आयी थी।

कुछ कविताएँ भी इस बीच मैंने लिखी थीं—अंग्रेजी में। एक पाक्षिक पत्रिका में वे छपी थीं और उनके प्रकाशन की सूचना देते हुए मुझे उसके सम्पादक ने एक छोटा-सा लेकिन बहुत विशिष्ट पत्र लिखा था—

> प्रिय श्री आदित्य,
> आपकी तीन कविताएँ मैं प्रकाशन के लिए रख रहा हूँ। ये कविताएँ इतनी उदास हैं कि मैं आपसे मिलने की अपनी इच्छा को जान-बूझकर

दबा रहा हूँ। कृपया लिखते रहिए और पूरी कोशिश कीजिए कि आपका यह शौक छूटे नहीं।

शुभकामनाओं सहित,

आपका, सम्पादक

उस छोटे-से व्यावसायिक पत्र में इतनी गर्माहट थी कि मेरे भीतर बहुत कुछ पिघल-सा गया। छपने को लेकर वह आरम्भिक उत्साह और उत्तेजना हालाँकि मुझ में अब नहीं रही थी लेकिन फिर भी उस पत्रिका के सम्पादक का बड़प्पन मैं कभी नहीं भूल सकता। शायद ऐसे ही लोग होते हैं जो अन्ततः जिन्दगी में एक बहुत बड़ा फर्क पैदा कर देते हैं। इस बात को रवि बहुत खूबसूरत ढंग से कहता था—चिड़िया के बच्चे को क्या मालूम कि उसकी माँ कौन है? वह कहता—वह तो बस चोंच खोलना जानता है और यह जानता है कि कोई उसके मुँह में दाना डाल देगा। आदमी के बच्चों में थोड़ी मुश्किल इसलिए पैदा हो जाती है कि दिमाग पीछा नहीं छोड़ता। बुनियादी बात लेकिन वही है। बच्चे होते हैं तो न सही माँ-बाप, दाना डालनेवाले तो होते हैं। दादाजी···उस्ताद···अम्माँ···बाबा और तू···! इनके बिना क्या होता? कुछ हो ही नहीं सकता गुड्डू क्योंकि इनके बिना तो दुनिया ही नहीं होती। कम-से-कम मेरी तो नहीं···दादाजी अब बहुत बूढ़े हो गये थे। उनकी भौंहों तक के बाल सफेद हो गये थे। यूँ अनाथालय में उनकी जगह एक दूसरा आदमी आ गया था लेकिन उनका अधिकतर समय अब भी वहीं बीतता था। उन्होंने न शादी की थी और न ही उनके रिश्तेदारों का कुछ पता था। वैसे अनाथालय से सेवा-निवृत्ति के बाद रवि ने उनके रहने और सब जरूरतों के लिए पूरा इन्तजाम किया था। जब तक वे अनाथालय में थे रवि अपनी 'तथाकथित' सालगिरह के दिन उनके लिए कपड़े, धार्मिक किताबें और मिठाई वगैरा लेकर जाता था और बहुत से रुपये भी उन्हें देता था। दादाजी इतने खुश हो जाते थे कि उनकी आवाज वह खुशी सम्हाल नहीं पाती थी। वे सब-के-सब रुपये वे अनाथालय के बच्चों के लिए ही अपने पास अलग रखते थे। रवि ने काफी लड़-झगड़कर उन्हें इस बात के लिए तैयार कर लिया था कि छुट्टी के दिन बच्चे भीख माँगने नहीं जायेंगे। वह विवाद कई साल तक चला था। दादाजी का कहना था कि दानखाते से इतनी आमदनी नहीं होती थी कि पूरी व्यवस्था को जा सके। रवि को जब प्रमोशन मिल गया तो उसने फिर दादाजी से पूछा—अब बताइए हर महीने कितने रुपये की जरूरत होती है यहाँ।

दादाजी ने हिसाब लगाकर उसे सारी बातें बतायी थी। सब सुनने के बाद रवि ने कहा था—ठीक है। इसमें से आधा रुपया मैं आपको देता रहूँगा और बाकी के लिए मैं इन्तजाम कर देता हूँ।

उसने फिर कई बड़ी-बड़ी कम्पनियों में कहकर अनाथालय के लिए सालाना डोनेशन तय करवा दिये थे। दादाजी कुछ महीनों बाद रिटायर हो गये थे, लेकिन देख-रेख का काम अभी तक जारी था।

रवि की नौकरी, उसके रुतबे, शानो-शौकत और तरक्की को देखकर यदि सचमुच कोई अघाता था तो वह थे उस्ताद। जुमे के रोज रवि का वहाँ जाना अभी तक कायम था। जब वह अपनी सफेद रंग की भारी-भरकम साढ़े-सात हॉर्सपावरवाली 'इण्डियाना' मोटर साइकिल लेकर उस्ताद के वर्कशॉप पहुँचता था तो अच्छा-खासा हंगामा मच जाता था। वर्कशॉप में काम करनेवाले छोटे-छोटे लड़के खुशी से हो-हो करते आसमान सिर पर उठा लेते और सब काम छोड़कर उस खूबसूरत मोटर साइकिल को घेर लेते। कोई उसकी निकिल चमकाता, कोई पॉलिश, कोई शीशों की सफाई करता तो कोई उस पर बैठकर होंठों से एक्सीलरेटर की आवाज करता हुआ उसे चलाने का सपना देखता।

उस्ताद रवि को देखते ही कुर्सी से खड़े हो जाते और रवि के सलाम के जवाब में उसे सीने से लगाकर दुनिया-भर की दुआएँ देते रहते। फिर उसे अपने पास बैठाकर बेहद लाड से उसके लिए कुछ खाने-पीने को मँगवाते और पूरे हफ्ते की बातें उसे बताते रहते।

बूढ़े तो उस्ताद भी हो गये थे लेकिन जिस्म से मेहनत का काम लेते रहने के कारण अभी तक उनमें एक खास ढंग की फुर्ती और कसाव-सा था। रवि उनसे चलते वक्त पूछता—कोई काम हो तो बताओ उस्ताद ?

—बस ये काम है कि तू ये गाड़ी जरा धीरे चलाया कर, उस्ताद उसे अपने से चिपटाकर कहते—एक तो पता नहीं कहाँ से ढूँढ़कर ये गाड़ी ले ली है तूने। साढ़े-सात हॉर्सपावर और वो भी मोटर साइकिल में···अल्लाह···तौबा, तौबा, वे अपने गालों को छूते हुए कहते—और फिर माशाअल्ला जो सूरत-शक्ल पायी है···पता नहीं किन-किन मनहूसों की नजर पड़ती होगी।

रवि हँसने लगता—लेकिन जिसकी पड़नी चाहिए वो नहीं मिली अभी उस्ताद !

—फिर की न तूने मन्को ल्यासवाली हरकत ! लफंगा कहीं का, उस्ताद हँसते हुए उसे प्यार से झिड़कते।

जिन्दगी का आसमान बहुत साफ और नीला था। दो चीलें उसमें उड़ रही थीं। रवि बहुत ऊपर अपने डैने फैलाये किलोलें-सी करता उड़ रहा था लेकिन उसकी तेज और पैनी निगाहों से कुछ लोग कभी दूर नहीं होते थे। और मैं···कुछ नीचे, असमाया हुआ-सा एक ऊब भरी उड़ान में कैद था। एक खाली, वीरान दोपहर की-सी है यह तसवीर हालाँकि वे दिन इस तरह के नहीं थे। बेइन्तहा बेचैनी से भरा हुआ वक्त था वह। अपने को ही घोड़ा बनाकर, खुद ही उस पर सवारी करते हुए एक दौड़ जीतने की ऐसी जी-तोड़ कोशिश थी वह कि बाकी सब बातों पर ध्यान तब जाता था जब जिस्म और दिमाग थकान से बिल्कुल टूटा पड़ा होता था। उन क्षणों में याद आता कि मेघना को मुझे एक जवाब देना है, बिरमा को चिट्ठी लिखनी है, अम्मी-बाबा को एक बार कुछ दिनों के लिए उस नये मकान में, रहने की कोशिश करवाने ले जाना है, अम्माँ को हरिद्वार से लाना है, रवि को

लेकर नीना से बात करनी है, वह कहानी पूरी करनी है जो कब से अधूरी पड़ी है, वे किताबें पढ़नी हैं जिन्हें महीनों उस दुकानवाले से कह-कहकर मँगवाया था···, जरूरी कामों की याद का वह सिलसिला पूरा भी नहीं हो पाता कि नींद ऊपर गिर पड़ती !

अगले दिन की बोटियाँ कम्पनी काटती थी, अपने हिसाब से। इन लगभग तीन सालों में ही मुझे अब यह अच्छी तरह समझ में आ गया था कि ज्यादातर लोग क्यों सरकारी नौकरी की तलाश में रहते हैं। प्रायवेट कम्पनीज और खास तौर पर बड़ी और बहुदेशीय कम्पनीज दुनिया में कभी साम्य पैदा नहीं होने देंगी क्योंकि साम्यवादी ईमानदार मुद्दों को लेकर बेईमान है और पूँजीवादी बेईमान मुद्दों को लेकर न सिर्फ पूरी तरह से ईमानदार ही हैं बल्कि उसके लिए इतनी मेहनत करते और करवाते हैं कि आदमी को बिल्कुल जानवर की तरह जोतने के बाद भी उसे किसी शिकायत का मौका नहीं देते—कम-से-कम भौतिक सुख और सुविधाओं के स्तर पर। और हिन्दुस्तान जैसे देश में कितने लोग हैं जो मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर जीते और मरते हैं।

सेल्स के साथ ही अब कम्पनी की पब्लिसिटी के काम में भी मुझे फँसा लिया गया था। एक बिल्कुल नया पद इसके लिए पैदा किया गया था और मेरी नियुक्ति उस पर सेल्स डाइरेक्टर के वेतनमान और सुविधाओं के साथ की गयी थी। जनरल मैनेजर का इस बात के लिए भी बहुत विनम्र दबाव था कि मैं अब मोटर-सायकिल पर न घूमा करूँ। कम्पनी न सिर्फ मुझे कार खरीदने के लिए ऋण देना पसन्द करेगी बल्कि गाड़ी भी जल्दी दिलवाने की कोशिश करेगी।

—इतना तो आप भी जानते हैं मिस्टर कुमार, जनरल मैनेजर ने मेरी चुप्पी पर निशाना साधकर वह तीर चलाया था—कि कम्पनी की मार्केट में जो इमेज है उसे देखते हुए यह ठीक नहीं लगता कि हमारे एक्जीक्यूटिव्स किसी भी बात में जरा भी लापरवाही बरतें। और फिर आप तो इस शहर में अब कम्पनी के पर्याय हैं। हर डीलर और डॉक्टर आपको नाम से जानता है और कम्पनी के लिए यह बड़े फख्र की बात है।

—मैं उसकी कद्र करता हूँ सर, मैंने जवाब दिया—मैं गाड़ी बुक किये देता हूँ।

—कॉन्ग्रैचुलेशन्स फॉर दिस डिसीजन ! (इस फैसले के लिए बधाई), उन्होंने मुस्कराकर कहा और फिर अपने इंगेजमेन्ट पैड को देखकर बोले—शाम के डिनर की तो सब तैयारी है न ! और वे हँसने लगे—वैसे एक छोटी-सी जानकारी भी मुझे आपको देनी है···इसी से याद आया···

—उम्मीद है बहुत बुरी खबर तो नहीं।

—नहीं, बहुत तो नहीं, लेकिन आपकी उम्र में है थोड़ी बुरी, वे फिर हँसे··· रिपोर्ट किया गया है कि कम्पनी के डिनर्स और पार्टीज पर आप लेडीज का ख्याल बिल्कुल नहीं रखते और आप जैसे व्यक्ति से ऐसे रूखे व्यवहार की अपेक्षा

नहीं की जाती !

—आइन्दा मैं इसका ध्यान रखूँगा सर, मैं मुस्कराया।

—यैस, यू बैटर डू दैट (हाँ, बेहतर है कि तुम वही करो !), उन्होंने आँखें नचाते हुए कहा—अच्छा तो फिर शाम को मिलेंगे !

शाम को एक बड़े होटल में कम्पनी के जन-सम्पर्क कार्यक्रम के अन्तर्गत शहर के कुछ डॉक्टर्स को डिनर पर बुलाया गया था। इस तरह की पार्टीज अक्सर होती रहती थी और उनसे काफी काम निकलता था। यूँ औपचारिकता के लिए आधे-एक घण्टे का एक टैक्नीकल सैशन भी रखा जाता था—व्यावसायिक जानकारी के आदान-प्रदान के लिए लेकिन सब जानते थे कि वह एक बहाना-भर था। मुख्य रूप से ये पार्टीज खाने-पीने और तफरीह का सामान थी। मैं अधिकतर इन्हें टाल जाता था सिवाय इसके कि कई बार ये पार्टीज कम्पनी के गैस्ट हाउस में ही होती थी और तब बचाव की कोई सूरत नहीं होती थी।

टैक्नीकल सैशन खत्म हो चुका था। होटल के उस कॉन्फ्रैन्स हॉल में डॉक्टर्स दो-दो चार-चार के ग्रुप्स में इधर-उधर बिखर गये थे। मेहमानों को पहला ड्रिंक पेश करने के लिए होटल के वेटिंग स्टाफ के साथ हम कम्पनी के आफीसर्स भी मुस्तैदी से लगे हुए थे। मैं जनरल मैनेजर के साथ शहर के एक प्रसिद्ध सर्जन के सामने खड़ा था कि जनरल मैनेजर की नजरें दरवाजे की तरफ उठीं और वे 'एक्सक्यूज मी डॉक्साब' कहते हुए उस तरफ लपके। मैंने मुड़कर देखा। दरवाजे पर अदिति खड़ी थी।

—वॉट अ गुड फौरच्यून'' (कितना बड़ा सौभाग्य !), जनरल मैनेजर की खुशी से भरी ऊँची आवाज के कारण सभी की नजरें दरवाजे की तरफ मुड़ गयी थी और कुछ क्षणों के लिए कमरे में तरह-तरह के अभिवादनों का शोर-सा उभर आया।

—आइए, आइए डॉक्साब, भई वाह आपने तो सचमुच आज इज्जत बचा ली हमारी। इट्स सो काइण्ड ऑव यू टु हैव कम रियली ! (सचमुच आपने आकर बड़ी कृपा की)। मेरी तो आज वाइफ से शर्त लगी हुई थी कि आप जरूर आयेंगी, लगातार कुछ-न-कुछ कहते हुए जनरल मैनेजर उन्हें हॉल के उस कोने में ले गये जहाँ उनकी पत्नी कुछ लोगों के साथ खड़ी हुई थी।

मैं उन वृद्ध सर्जन से बातें करता रहा। अदिति की पीठ अब मेरी तरफ थी। उन्होंने गहरे मूँगिया रंग की रेशमी साड़ी पहन रखी थी और उसके कारण कुछ ज्यादा ही दुबली-पतली-सी दिख रही थी। पीछे से उन्हें देखकर मेरे लिए यह अनुमान लगाना सचमुच कठिन होता कि वे अदिति थी।

जनरल मैनेजर उन्हें ड्रिंक पेश करते हुए अपनी उसी बुलन्द आवाज में कह रहे थे—नहीं, नहीं डॉक्साब ! ये तो आपको लेना ही पड़ेगा। पहली बार तो आयी हैं आज आप'''अच्छा ठीक है बस एक ले लीजिए फिर उसके बाद हम सॉफ्ट ड्रिंक ही देंगे आपको ! प्लीज'''लीजिए'''। थिर्ष !

हम लोगों के पास दो और डॉक्टर्स आ गये थे और इस मौके का फायदा उठाकर मैं उन्हे छोड़कर आगे बढ़ गया दूसरे मेहमानों की देख-भाल के लिए। अधिकतर लोगो के हाथो मे गिलास आ चुके थे। बाकी चीजों की देखभाल होटल के वेटर्स बड़े नपे-तुले और साफ-सुथरे अन्दाज से कर रहे थे। मिस्टर मुलगांवकर एक कोने मे खडे एक लेडी डॉक्टर से बात कर रहे थे। मुझे देखते ही उन्होंने हाथ हिलाया और जब मैं उनके पास पहुँचा तो उन्होने मेरा परिचय करवाते हुए मुझे भी बातचीत मे शामिल कर लिया।

कुछ देर बाद अदिति उन लोगो को छोडकर कुछ अन्य डॉक्टर्स की तरफ बढ़ी और उसी बीच उनकी नजरें मुझ पर पडी। एकबारगी तो वे खड़ी-सी रह गयी फिर उनके कदम मेरी तरफ उठे। मैं मिस्टर मुलगांवकर और उन लेडी डॉक्टर से माफी मांगकर उनकी तरफ बढा।

—नमस्ते, उनके सामने जाकर मैंने धीरे-से कहा।

—गुड इवनिंग मिस्टर कुमार, वे मुस्करायी—हाउ आर यू? (कैसे हैं आप!)

—आप सुनाइए, कैसी हैं? मैंने शर्मिन्दा मुस्कराहट के साथ गर्दन झुका ली।

—चलो, भूले तो नही हिन्दी बोलना···, मेरा तो ख्याल था कि अब तक तुमने अंग्रेजी भी छोड़ दी होगी, अपने खास अन्दाज मे मुझे छेड़ते हुए उन्होंने कहा—स्वीडिश वगैरा कुछ बोलते होंगे···

मैं चुप रहा।

—कैसे हो? कुछ देर बाद उन्होंने दूसरी आवाज मे पूछा।

—ठीक हूँ···आप कुछ कमजोर नजर आ रही हैं।

—नही···ऐसा तो नही है। बहुत दिनों बाद देख रहे हो इसलिए शायद लग रहा होगा।

चुप्पी छा गयी।

—तुमने तो तहलका मचा दिया है बिल्कुल, कम्पनी मे···, कुछ रुककर वे बोलीं—अभी तुम्हारे जनरल मैनेजर बता रहे थे कि तुम्हारे लिए नयी पोस्ट क्रिएट की गयी है! बहुत तारीफ कर रहे थे तुम्हारी।

—हाँ। वो खुश हैं, मैंने अपने गिलास को घूरते हुए कहा।

वे चुपचाप मेरे चेहरे की तरफ देखती रहीं और उसके बाद बहुत धीरे-से उन्होंने पूछा—और तुम?

मैं समझ चुका था कि मेरा चेहरा अब मेरे साथ नही था। उसे एक बेतुकी हँसी से ढंकते हुए मैंने कहा—मैं भी खुश हूँ। जब जनरल मैनेजर खुश हो तो कोई नाखुश कैसे रह सकता है। अच्छा ··, और मैं चलने के लिए तैयार हुआ कि इतने मे ही जनरल मैनेजर ने मेरे पीछे आकर मेरी पीठ थपथपायी और अपनी जोरदार हँसी हँसते हुए बोले—दैट्स वॉट आइ कॉल अ फास्ट वर्कर! (यह है जिसे मैं तेज

काम करनेवाला कहता हूँ !) और फिर अदिति से बोले—डॉक्साब, इस लडके के साथ बस सबसे बडा फायदा यह है कि बात समझने और सीखने मे बिल्कुल भी वक्त बर्बाद नही करता।

—जाहिर है भई, तभी तो बकौल आपके कम्पनी-हिस्ट्री बदल रही है इस धन्धे की ! अदिति हँसते हुए बोली—लेकिन मेरा ख्याल है फिलहाल रिफ्रेन्स कुछ दूसरा है !

—जी हाँ ! बिल्कुल ही दूसरा ! उन्होंने ठहाका लगाया और फिर ह्निस्की का एक लम्बा घूँट लेकर बोले—वो रिफ्रेन्स ये है डॉक्साब कि इनकी रिपोर्ट की गयी थी कि पार्टीज मे ये हमारी महिला मेहमानो का बिल्कुल ख्याल नही रखते। तो इसलिए इन्हे आज ऑफिस मे ये वॉर्निंग मिली थी···और अब आप ही देखिए डॉक्साब, शिकायत का कोई मौका ही नही !

अदिति भी उनकी हँसी मे शामिल हो गयी और उसी बीच उन्होने पास से गुजरते हुए वेटर को रोककर अदिति के हाथ से खाली गिलास ले लिया और दूसरी 'गिमलेट' उन्हे देते हुए बोले—मेरा ख्याल है कुमार की इस सूझ-बूझ के लिए इस टोस्ट मे आप भी मना नही करेंगी शामिल होने के लिए।

उसके बाद उन्होने मेरे और अपने गिलासो को भी बदल दिया और फिर अपना गिलास उठाकर बोले—हियर्स टु द फास्टेंस्ट वर्कर ! (ये जाम सबसे तेज काम करनेवाले के लिए !) चियर्स !!

अदिति ने मुस्कराते हुए मेरी तरफ देखकर छोटा-सा घूँट पिया और उनसे बोली—अब आपको मुझे कोई ड्राइवर देना पड़ेगा ! आइ डोन्ट थिंक आई'ल बी एबल टु ड्राइव नाउ ! (मुझे नही लगता कि अब मैं गाडी चला पाऊँगी !)

—आप किसी बात की चिन्ता मत कीजिए डॉक्साब। जब तक ये ट्रबल शूटर (मुसीबत खत्म करनेवाला) यहाँ है, नथिंग कैन गो रॉन्ग (कुछ नही बिगड़ सकता) ! उन्होंने मेरी पीठ ठोकते हुए कहा और फिर 'एक्सक्यूज मी' कहते हुए उस ग्रुप की तरफ चले गये जहाँ उनकी फरमायश हो रही थी।

कुछ क्षणो तक हम दोनो चुपचाप खड़े रहे। अदिति कुछ सोचने लगी थी। झिझकती-सी आवाज मे फिर बोली—एक बात कहूँ ?

—कहिए।

—मालूम है इन सब लोगों की बातें सुनकर और तुम्हारी इस तरक्की को देखकर···कितनी खुशी होती है हमे···, उन्होने कहा और फिर गर्दन झुकाकर धीरे-से बोली—तुमने, सच बहुत बड़ा बोझ हटा दिया हमारे ऊपर से !

उनकी बात का मैंने कोई जवाब नही दिया। उनके चेहरे पर एक अँधेरा-सा उभर रहा था। मैंने बहुत सँभालकर कहा—आप अगर इजाजत दें तो मैं अब···

—नही आदित्य···ऐसे मत करो, मेरी बात बीच मे ही काटकर वे छटपटाते हुए बोल पड़ी। उनकी गर्दन अब भी उसी तरह झुकी हुई थी और वे पूरी कोशिश कर रही थी अपनी आवाज को धीमी और बँधी हुई रखने की—यही रहो तुम।

हमसे बात करो !

एक बांध जैसे टूटनेवाला था। मैं सहम गया। उस बडे हॉल में, इतने सारे लोग और होशोहवास की दुनिया की वह सारी चमक-दमक भूकम्प के किसी धक्के से जैसे हिल-सी गयी। मैं जानता था कि अगर मैंने उनकी बात नही मानी तो सबकुछ अगले ही क्षण बह जायेगा।

और फिर·· वे ही तो दो वाक्य थे जिन्हें सुनने के लिए मैं सालो से एक वीरान सन्नाटे में खड़ा था। कोई मन्त्र था जैसे वे छोटे-छोटे वाक्य जिनके उच्चारण के साथ ही वह आग जल उठी थी जिसे बरसो मेरे भीतर एक धुएँ ने कैद कर रखा था।

—अच्छा ठीक है ! मैंने कहा—लेकिन प्लीज···ऐसे नही ! उन्होंने सावधानी से अपने रूमाल से अपनी आंखों को पोछा और फिर अपने गिलास मे से एक घूंट भरकर मेरी तरफ देखने लगी।

उन आंखो मे जब मैंने देखा तो लगा जैसे जरा भी वक्त नही बीता था तीन साल पहले की उस रात के बाद। वह खामोश, भोली बेबसी उसी तरह कांप रही थी उन आंखो मे। वह दुबला-सा चेहरा उसी हैरत, उदासी और किसी आशका से सहमा हुआ-सा मेरी तरफ देख रहा था, मानो पूछ रहा हो—क्या सचमुच ये सच है ?

—बहुत जिद्दी हो न तुम ? उन्होंने पूछा।

—नही। जिद काहे की। आपने जो कहा था वह ठीक ही था।

—तो फिर ?

—फिर क्या ?

—फिर इतना गुस्सा···? और वो भी मुझ पर ?

—नही। आप पर क्यो ? वह तो ज्यादती होगी।

—और अपने ऊपर ज्यादती नही है ?

—उससे क्या फर्क पड़ता है···एक यही ज्यादती तो है नही।

—कोई फर्क नही पड़ता ?

—नहीं।

उन्होंने अपने गिलास मे से एक घूंट और लिया और फिर सांस छोड़ते हुए बोली—अभी तक तुम्हें अक्ल नही आयी न ?

—कुछ लोगो को जरा देर से आती है हमेशा, मैं मुस्करा पड़ा क्योंकि यह एक अच्छा मौका था बातचीत को हल्का करने का और इसका उन पर कुछ-कुछ वैसा ही असर हुआ जैसा मैंने सोचा था।

—ऐसे लोगों की खूब पिटाई होनी चाहिए, हर्रासगार के फूल उनके चेहरे पर कांपने लगे थे—समझे ?

तभी कुछ और डॉक्टर्स वहाँ आ गये और उनसे बातें करने लगे। वेटर्स ने हॉल के बीचों-बीच लगी बड़ी-सी टेबल पर खाना भी लगाना शुरू कर दिया था।

मैं उनकी तरफ एक बार देखकर वहाँ से चला आया।

खाना खत्म होते-होते ग्यारह बज गये। उस दौरान अदिति ने पास आकर धीरे-से कहा था—हमें घर छोड़ने चलोगे या जनरल मैनेजर से कहना पड़ेगा !

—आपको तो लगता है नशा हो गया, मैंने धीरे-से हँसते हुए कहा था।

—इसीलिए तो कह रहे हैं !

चलते वक्त जनरल मैनेजर ने मुझसे कहा—कुमार, प्लीज एस्कॉर्ट डा. दयाल टु हर कार (कुमार, कृपया डा. दयाल को उनकी गाड़ी तक छोड़ आइए।) एण्ड थैंक्स माइ बॉय, यू वर सच अ ग्रेट हैल्प दिस इवनिंग ! (और शुक्रिया बेटे, तुमने आज शाम बहुत मदद की !)

उनसे इजाजत लेकर हम दोनों बाहर निकले। पार्किंग लॉट की तरफ चलते हुए अदिति ने कहा—अब तो कोई चारा भी नहीं है। ड्यूटी तो करनी ही पड़ेगी ! बरसों बाद उस आवाज में वह चुलबुलापन चहचहा रहा था। पूरी तरह बदल चुकी थी वह खामोश, उदास और तन्हा-सी आवाज। मुझे आश्चर्य हुआ अपने आप पर कि मैं उनके बारे में वह बात इस बीच बिल्कुल ही भूल गया था जिसने शुरू के दिनों में मुझे हतप्रभ कर दिया था—बावजूद अपने व्यक्तित्व की पूरी गम्भीरता के वे कभी-कभी इतनी मुक्त हो जाती थीं उन सब चीजों से कि देखकर लगता था जैसे कोई छोटी बच्ची किसी मेले में जा रही है।

—तुम्हें गाड़ी चलानी आती है न ? जब हम लोग उनकी कार के पास पहुँचे तो उन्होंने पूछा।

—आती तो है लेकिन आप चलाइए, मैंने कहा—ठीक-ठाक हैं आप !

—अभी तो कह रहे थे कि मुझे नशा हो गया है।

—हाँ, वह भी गलत नहीं है, मैं मुस्कराया—लेकिन गाड़ी आप ही चलाइए ! ठीक नहीं लगता।

उन्होंने गाड़ी का दरवाजा खोला। गाड़ी स्टार्ट करते हुए फिर वे बोलीं—चलो कुछ तो आखिर तुम्हारी समझ में आया, कि क्या ठीक लगता है और क्या नहीं।

मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

वह चुनचुनाहट जिस तरह से अचानक आयी थी, उसी तरह से अब जा चुकी थी। गाड़ी चलाते हुए उनका चेहरा रह-रहकर सड़क के किनारे लैम्प-पोस्ट्स की रोशनी के कारण अँधेरे और उजाले में उभर और डूब रहा था। उस चेहरे को देखकर न जाने क्यों मुझे उस दिन की याद आ गयी जब मैं पट्टी बँधवाने के दूसरे दिन उनके क्लीनिक में उनसे मिला था। उसी तरह की धूप-छाँह का सिलसिला उन्हें चुप किये हुए था।

—मेघना से अब तुम शादी क्यों नहीं कर लेते ? कुछ देर बाद उन्होंने पूछा—इतनी अच्छी लड़की है। और तुम्हें इतना प्यार करती है।

मैं चौंक पड़ा। मेघना के बारे में उन्हें इतना मालूम है यह मैं बिलकुल नहीं जानता था।

—हम लोग कोई और बात करें···, मैंने बहुत सँभालकर कहा।

—क्यों ? इस बात मे क्या बुराई है ? वे फौरन बोली।

मैं एकाएक कुछ नही कह पाया। यह साफ था कि मैं उनसे कुछ भी ऐसा नहीं कह सकता था जिससे उन्हे तकलीफ पहुँचे। लेकिन उनकी रह-रहकर उन्ही सब बातों को निकालने की इस कोशिश से अब मुझे भी उलझन-सी होने लगी थी। हर बार वे जोकुछ भी मुझसे कहती या पूछती वह कुछ ऐसा होता था जिसका सही जवाब मैं उन्हे दे नही सकता था और मेरे चुप रहने से वे सब बातें और सवाल उल्टे उन्हें ही घेर लेते थे—जो मैं नही चाहता था।

—देखिए, आपने जोकुछ भी मुझसे कहा था, मैंने तो उसके बाद आपसे कुछ नही कहा, कुछ देर बाद मैंने उन्हें समझाते हुए कहा—और यकीन मानिए मेरा ऐसा कोई इरादा भी नही है। आप अपनी बात मुझसे कह चुकी हैं और उसे दोहराने मे तकलीफ आप ही को ज्यादा होती है। तो फिर···क्या जरूरत है ?

उन्होंने कुछ नहीं कहा। कुछ ही देर मे गाड़ी बाराखम्बा रोड पर दाखिल हुई। जैसे ही मुझे टैक्सी स्टैण्ड नजर आया मैंने धीरे से कहा—मुझे यहीं उतार दीजिए।

उन्होंने गाड़ी रोक दी।

—अच्छा तो फिर···, दरवाजा खोलते हुए मैंने उनकी तरफ देखा। पास के लैम्पपोस्ट की दूधिया रोशनी मे उनका बेशुमार आँसुओ से भीगा चेहरा चमक रहा था। कसकर अपने होठ भीचे हुए वे बिल्कुल दम-साधे बैठी हुई थी। साथ ही कुछ और भी था उस चेहरे पर जिसे देखकर मैं डर गया।

—घर चलिए, मैंने कहा।

बिल्कुल निढाल होकर वे सिसक पड़ी और साथ ही गाड़ी को एक झटके से आगे बढाकर वो काफी स्पीड मे कोठी तक पहुँची। पोर्च में गाड़ी रोककर वे आँचल से अपना चेहरा पोछती हुई बहुत ही हारी हुई-सी आवाज मे बोली—जाओ आदित्य ! तुम जाओ भई···, और दरवाजा खोलकर वे उतर गयी। जब तक मैं गाड़ी से नीचे उतरा तो बरामदे के अँधेरे में नौकरानी की आवाज सुनायी दी—मेमसाब, कुछ चाय-कॉफी बनाऊँ ?

—नही लीला, जा तू। सो जा, उन्होने कहा और फिर एक बार मेरी तरफ देखकर उन्होंने दरवाजा खोला।

कमरे में पहुँचते ही वह ज्वालामुखी फट पड़ा।

—क्यों आ गये अब यहाँ ? तुम्हें तो तकलीफ नही होती न ? बहुत बहादुर हो तुम तो ! इस अकेली ज्यादती से क्या फर्क पड़ता है तुम्हें ? कहना भी कुछ नही है तुम्हें हमसे ! हम कुछ कहें तो कहते हो कुछ और बात करें !—क्या बात करें हम···, हमारे पास और कोई बात नहीं है करने को···, और बिलखती हुई वे बिस्तर पर गिर पड़ी।

कुछ क्षणों तक मुझे कुछ नही सूझा। तकिये मे मुँह छिपाये वे जिस तरह से

सिसक रही थी उसने मेरे भीतर किसी चट्टान के टुकड़े को बिल्कुल चूर-चूर कर दिया—वह भारी पत्थर जो मैंने एक-एक इंच, अपनी पूरी ताकत से सरकाकर, बमुश्किल तमाम उस तहखाने के दरवाजे पर रखा था। पलक झपकते ही उसके टुकड़े-टुकड़े बिखर गये थे।

उनके पास बैठकर मैंने उनके बालों को सहलाते हुए कहा—नहीं अदिति, प्लीज' 'रोओ मत।

उन्होंने उसी आवेश में अपनी गर्दन हिलायी और फिर अचानक उठकर बैठ गयी। उसी तरह रोते हुए मेरी तरफ देखकर वे फिर उबल पड़ीं—कौन घूमता है रात-रात-भर सड़कों पर? उस वक्त तुम्हें होश नहीं रहता कम्पनी का, जब गैस्ट हाउस के सामने आधी रात को फुटपाथ पर बैठे रहते हो? झूठ बोलने के लिए बस एक हम ही बचे हैं। जो बात करो, उसका उल्टा जवाब देते हो! क्या गलत कह दिया तुमसे ऐसा? जमाने में जो होता है, वही हमने कह दिया'''तो कौन-सा गुनाह हो गया। और उस पर तुम इतनी तकलीफ दे सकते हो अपने-आपको और हमें ''नहीं आदित्य ''इतना बड़ा कसूर तो नहीं किया हमने''', अपना चेहरा उन्होंने अपनी हथेलियों में छुपा लिया और उसी तरह सिसकती रहीं।

मैंने आगे सरककर उन्हें अपनी बाँहों में ले लिया—जमाने की बात लेकिन तुम क्यों करती हो मुझसे? जब तुम्हें सबकुछ मालूम है तो फिर क्यों'''

काँपती हुई उनकी देह इस तरह से मुझसे चिपट गयी थी कि मैं और कुछ नहीं कह पाया। रह-रहकर उनकी सिसकियाँ उभर आतीं और फिर जैसे खुद ही उनसे डरकर वे मेरी बाँहों में कोई और कोना ढूँढ़कर छुप जातीं।

—तुम समझते हो ' हम कुछ मालूम नहीं है ' , जब सिसकियाँ कुछ कमीं तो उन्होंने बहुत महीन-सी आवाज में कहा—तुम्हें लगता है कि तुमसे वो सब कह दिया तो बस खत्म हो गया सबकुछ। नहीं आदित्य'' ऐसा नहीं है। हमारी कुछ समझ में नहीं आता

मैंने उन्हें अपने से अलग करके उनका चेहरा अपनी हथेलियों में ले लिया और बोला—जब कुछ समझ में नहीं आता तो फिर इतने उपदेश क्यों देती रहती हो? तुम सोचती हो कि तुम्हारी बातें सुनकर मैं वैसा ही करने लगूँगा। तुम्हें अच्छी तरह मालूम है कि मैं कुछ नहीं कर सकता। कोई जिद नहीं है मेरी ''लेकिन''' और हर तरह से कोशिश की है इतने साल, लेकिन जो नहीं हो सकता, अदिति, वह तुम्हारे कहने से भी नहीं होगा। इतनी-सी बात नहीं समझतीं तुम?

सूनी थीं वे आँखें बिल्कुल। बस बहुत दूर कुछ मीनारें-सी खड़ी थीं उनमें—सफेद, ऊँची-ऊँची मीनारें। और फिर वे मीनारें ढहने लगीं—एक के बाद एक; वे टूटती जा रही थीं—ऐतिहासिक इमारतों की तरह—वक्त जिन्हें अकेला छोड़ कर बहुत आगे बढ़ गया था। उनके होंठ एकबारगी काँपे और उसके बाद मेरे होंठों का सहारा लेकर वे घुमने-से लगे'''

उन मीनारों में न जाने कब से कैद कोई भाप निकला था। उफनती, हाँफती

और टूटती सांसों का एक सैलाब था जो मेरे भीतर कहीं पनाह मांग रहा था। वह आंधी उतने जोर से कभी नहीं आयी थी। छोटे-छोटे वो हजारों-लाखों फूल जो उस गन्ध को समेटे किसी वीराने में कब से खड़े थे एकाएक खिल आये थे। दूर-दूर तक बस वह गन्ध थी और पंखुरियों की तरह झरती उनकी वह देह ·

बहुत रात गये और बहुत-बहुत दिनों बाद एक खामोश तसल्ली फिर बांसुरी के आलाप की तरह उभरी ··आलाप की विशेषता यह होती है कि उसमें सुरों का वह अजेय और अमर व्यक्तित्व मौजूद होता है—जो दुःख या सुख, गम या खुशी और लय या ताल जैसी चीजों को बच्चों की तरह कहीं छोड़कर खुद घूमने निकलता है। और सृष्टि मुग्ध होकर उसे निहारती है। कोई लाप नहीं होता उस समय, कोई विलाप नहीं। बस सांसों का एक ऐसा सिलसिला-भर होता है जो वह तसल्ली और फुरसत-सी पैदा कर देता है जिसमें धीरे-धीरे फिर सब चीजें अपनी जगह वापिस लौटती हैं···

—मालूम है जिस दिन तुम पहली बार मिले थे मुझसे तो तुमने कैसे नमस्ते की थी···? कमरे की हल्की नीली रोशनी में, मेरी बांह के ऊपर अपना चेहरा टिकाये, उन्होंने मेरे चेहरे को अपनी उंगलियों से सहलाते हुए कहा था—किसी स्कूल में पढ़नेवाले लड़के की तरह···

मैं उस चेहरे को देखता रहा जो मेरे बहुत पास था और अब उस पर कोई थकान नहीं थी। कोई तनाव नहीं। कोई उदासी नहीं।

—उस दिन तुमने रेस्त्रां में मेरे लिए दरवाजा खोला था, याद है न? छोटी-सी बात थी···लेकिन जिन्दगी में पहली बार किसी ने किया था मेरे लिये वैसा···

शान्त, निर्जन रात में हरसिंगार के फूलों से लदा हुआ वह चेहरा अब मेरा था। वे आंखें बार-बार मेरे भीतर तक जाकर लौट आतीं और फिर मुझे एक नयी हैरत से देखतीं।

—जिस दिन तुम क्लीनिक पर आये थे···उस झगड़े के बाद···याद है···मैं तुमसे इतना डर गयी थी कि कभी नहीं हुआ वैसा। वह दिन बहुत खराब था। सुबह की डाक में एक बहुत बुरी चिट्ठी थी। शाम को तुम आये—उस तरह। रात को सुधीर से झगड़ा हो गया।

दूर से आती धीमी-धीमी लहरों की तरह वह देह बार-बार जैसे किसी किनारे से लिपट रही थी।

—अगले दिन जब तुम क्लीनिक पर आये थे शाम को···तुमने कहा था कि मैं सुधीर को उस सबके बारे में न बताऊं! याद है न? उस दिन वापिस इसी कोठी में आ गयी थी।

वे होंठ अचानक जाग पड़ी एक नींद को बहला-सा रहे थे।

—फिर तुम आये ही नहीं···बहुत दिनों। मैं सोचती रही कि जिन्दगी ने तुम्हें अपने बहाव में खींच लिया है···मुझे नहीं मालूम था कि उन दिनों से ही तुम मेरे बारे में···वो तो उस पार्टी पर जब मैंने तुमसे पूछा···तो तुम्हारा चेहरा ऐसा

हो गया था कि मैं सच्ची घबरा गयी···

वे बाँहें भी जैसे उस याद से काँप गयी।

—उस दिन मुझे पहली बार लगा था कि कहीं तुम मुझे···कैसा हो गया था ये चेहरा उस दिन?

बार-बार वे उँगलियाँ और होंठ मेरे चेहरे को छू-छूकर कुछ याद-सा करने लगे।

—उसके बाद भी तुम जब नहीं आये तो मैं समझ गयी थी। तुम्हारा चेहरा कुछ छिपा नहीं पाता ··आज शाम भी कितनी कोशिश की तुमने···

चाँदनी-सी खिलने लगी थी उन लहरों पर। बहुत गहरे कोई बेचैनी थी जो फिर से मचलने लगी।

—वह चिट्ठी तुम्हें इसीलिए लिखी थी मैंने। सोचा था कि शायद तुम मिलने आओ और फिर मैं बहुत गौर से देखूँगी तुम्हारे चेहरे को···लेकिन तुम आये ही नहीं। मैंने सोचा था कि खुद तुम्हारे पर आऊँगी। लेकिन फिर लगा कि अगर ये सच हुआ तो···?

एक पुराना दर्द उस आवाज में सहसा चौंककर चुप हो गया।

—जब बीमार पड़ी तो बहुत याद आयी थी तुम्हारी। लगता था कि अगर तुम पास होते तो तुम्हारी गोद में सिर रखके लेटी रहती। पता नहीं तुममें क्या है···तुम जब होते हो तो बिल्कुल डर नहीं लगता मुझे···हालांकि इतने छोटे हो तुम मुझसे लेकिन सब बदल जाता है। अभी ही नहीं···पहले भी ऐसा ही होता था। तुम बहुत अजीब हो···

समुद्र में यदि भूचाल आये तो उसकी सारी देह छलक-सी जाती होगी···

—क्यों आ गये थे फिर तुम? कितना रुलाया मुझे? और फिर छोड़कर चले गये?

वही भूचाल था जो समुद्र के साथ ही अब हर जगह काँप रहा था—भीतर तक···

—कितनी तकलीफ पहुँचायी अपने आपको? उस दिन मैं नर्सिंग होम से लौट रही थी—एक एमर्जेन्सी ऑपरेशन था। मेरा मन बहुत कमजोर हो गया था उस दिन। जब तुम्हारे गैस्टहाउस के सामने से गुजरी तो बहुत मन हुआ कि तुम्हें जगा दूँ···लेकिन तुम···तुम तो वहाँ फुटपाथ पर···कैसे बैठे हुए थे उतनी रात को ···? क्या हुआ था उस दिन···?

—कुछ नहीं···मैंने कहा और बुरी तरह से उफनती हुई एक विशाल लहर हम दोनों को बहाकर समुद्र के बीचों-बीच ले गयी जहाँ से वह भूचाल उठा था···

6

जैसी कि उसकी आदत थी, कोई भी बात मुझे वह तब बताता था जब वह अच्छी-खासी मुश्किल बन जाती थी।

होटल की उस नौकरी मे बडी तेजी से मिलती तरक्की अपनी जगह इस बात का सबूत थी कि मिस्टर सिंह रवि से बहुत खुश थे। लेकिन साथ ही, अब रवि ने मुझे बताया कि इस मुसीबत के बारे मे भी उन्होंने शुरू से ही रवि को टोका था और लगातार उसका ध्यान इस तरफ दिलाते रहे थे।

नौकरी मिलने और ट्रेनिंग पूरी होने के कुछ महीनो बाद मिस्टर सिंह ने उसे अपने चैम्बर मे बुलाया था और उसके काम पर अपना सन्तोष व्यक्त करने के बाद बोले थे—इस सबसे तो मैं बहुत खुश हूँ। लेकिन एक बात ऐसी है जिसके बारे मे तुम अभी तक लापरवाह हो!

रवि ने बिना कुछ कहे उनकी तरफ देखा था।

—तुम्हें बताया जा चुका है कि होटल सर्विस के किसी भी विभाग मे और खासतौर पर रिसैप्शन सर्विस मे मेहमानो से व्यक्तिगत सम्बन्ध बिल्कुल नही पैदा होने चाहिए। इस बीच दो बार यह पाया गया है कि तुम कुछ मेहमानो के बच्चो से कुछ ज्यादा ही हिल-मिल जाते हो। यह ठीक नही है। आइन्दा यह शिकायत नही आनी चाहिए।

—जी सर, कहकर रवि वहाँ से चला आया था।

उसके बाद इन चार-पाँच सालों मे घूम-फिरकर यह मसला कई बार उठा था और हर बार मिस्टर सिंह की चेतावनी सख्त होती गयी थी। इस बार मामला काफी गम्भीर था।

होटल मे एक अमरीकी दम्पति लगभग दो हफ्ते के लिए आये थे। उनका एक तीन बरस का लड़का था जो पहले दिन से ही रवि से अटक गया था। रवि भी सारी हिदायतों के बावजूद अपने आपको रोक नही पाया था और नतीजा यह हुआ कि कल जब वे लोग होटल छोड़कर जा रहे थे तो उस बच्चे ने रो-रोकर आसमान सिर पर उठा लिया और रिसैप्शन पर काफी देर तक अच्छा-खासा हंगामा मचा रहा। हालाँकि बच्चे के माता-पिता ने कोई शिकायत नही की थी और रवि के प्रति उनका व्यवहार काफी सहानुभूतिपूर्ण था लेकिन मिस्टर सिंह ने उसे बुलाकर अन्तिम चेतावनी दी थी।

—मामला यार···ठीक नही है, रवि ने सारी बात बताने के बाद कुछ सोचते हुए कहा—मिस्टर सिंह ने इस तरह से बात कभी नही की। असल मे उनका दोष भी नही है कुछ। गलती तो मेरी ही है।

मैं चुप हो गया। रवि ठीक कह रहा था लेकिन मैं सोच रहा था कि आखिर

गलती है किसकी? छोटे बच्चों से उसका लगाव उसके व्यक्तित्व का एक ऐसा हिस्सा था जैसे किसी पेड़ की वह डाली जो फूलने पर अपने बोझ से ही झुक जाती है। तो क्या उस डाली को काटकर फेंका जा सकता था? सिर्फ इसलिए कि एक नौकरी का सवाल था।

मुझे मालूम था कि मेरे पास कहने को ऐसा कुछ भी नहीं था जो उसे किसी भी तरह की तसल्ली दे सके। मैं जानता था कि रवि कुछ भी कर ले अपनी उस गलती को सुधार नहीं पायेगा।

हम दोनों उसके लिविंग रूम में बैठे हुए थे। रात के नौ बज रहे थे।

—चल, खाना खा ले कहीं, वह उठते हुए बोला।

—कुछ पहन तो ले, बाहर सर्दी है, मैंने कहा।

—अरे ऐसी बर्फ नहीं पड रही यार, चल उठ, अपने सोफे पर पड़े तेन्दुए की खाल के मफलर को उठाते हुए कहा—ये है न···काफी है।

वह मफलर, वह बहुत ही खास मौकों पर पहनता था। अक्सर वे मौके ऐसे होते थे जब वह उदास होता था। बचपन में उस मेम ने जो सौ रुपये का नोट मुझे दिया था उसमें से पिच्चासी रुपये में मैंने वह मफलर एक पहाड़ी आदमी से उसके लिए खरीदा था।

हम लोग तब सातवीं क्लास में थे। सर्दियाँ आते ही रवि को बहुत जोर की खाँसी और जुकाम शुरू हो जाता था। मुझे आज भी याद है वह दोपहर जब स्कूल में 'रिसेस' के दौरान मैंने अपने बस्ते में से वह मफलर उसे निकालकर दिया था।

उसे देखते ही वह खुशी से चीख उठा था—वाई गॉड गुड्डू···क्या जोरदार चीज है यार···कहाँ से लाया तू?

—खरीदा है, तेरे लिए, मैं उसे तरह-तरह से वह मफलर अपने गले में सजाते हुए देख मुस्कराया था।

—कितने का है? बहुत महँगा होगा ये तो!

—पिच्चासी का।

उसकी आँखें गोल हो गयीं और वह सीटी बजाने लगा। उसके बाद उसने धीरे-से पूछा—तेरे पास पैसे कहाँ से आये इतने?

मैंने उसे सारी बात बतायी थी। लगभग ढाई साल तक वह नोट मेरे पास रहा था। उस पर मैंने सफेदवाले हिस्से पर अपने दस्तखत बना रखे थे। सोचा मैंने यह था कि उसे हमेशा अपने पास रखूँगा और बड़े होकर जब मेरा अपना घर होगा तो उसे बहुत खूबसूरत फ्रेम में जड़वाकर अपने पढ़ने-लिखनेवाले कमरे में अपनी मेज के सामने लगाऊँगा। लेकिन उस मफलर को देखकर मेरा मन मचल गया था। उस पहाड़ी आदमी ने जो पन्द्रह रुपये मुझे वापिस दिये थे उनसे मैंने अपने लिए एक फाउण्टेन पेन और एक चमड़े की जिल्दवाली बड़ी-सी नोट बुक खरीदी थी।

फ्लैट से नीचे आकर मैंने गाड़ी की चाबी उसे दे दी। जब से गाड़ी आयी थी

ज्यादातर वह ही उसे चलाता रहा था। रास्ते में उसने मुझे बताया कि इसी बीच उसके पास बम्बई के एक अच्छे और बड़े होटल का भी ऑफर आया था और अब उसने तय किया था कि एक बार बम्बई जाकर उसके बारे में पता चलायेगा।

—मेरा खयाल है मामला जम जायेगा क्योंकि उन लोगों को वाकई काफी जरूरत है, उसने बताया।

—यह तो और भी अच्छा है—तजुर्बे के लिहाज से भी।

—हांआंआं···, वह सांस छोड़ते हुए बोला था—एक हम ही तो हैं तजुर्बे की तलाश में। बाकी दुनिया तो सिखा रही है···

—ठीक है यार···क्या फर्क पड़ता है, मैंने कहा और उसके साथ ही उसने निरूला'ज के सामने गाड़ी रोक दी।

सड़क के दूसरी तरफ हम लोगों का वह पुराना पसन्दीदा ढाबा था। क्योंकि देर हो गयी थी इसलिए ज्यादा भीड़ नहीं थी। रवि ने खाने का आर्डर दिया और उसके बाद अचानक बोला—एक काम तुझे करना है।

मैं चौंक गया। वह उसकी एक ऐसी आवाज थी जिसे मैंने बहुत दिनों बाद सुना था।

—क्या ? मैंने उसकी तरफ देखकर पूछा।

—नीना से तू एक बार बात कर ले, उसने नजरें झुकाकर कहा—क्योंकि मान लो अगर मुझे बम्बई में ये नौकरी मिल जाती है तो फिर वह फैसला भी फौरन ही करना पड़ेगा।

—हां, हां, तो उसमें क्या मुश्किल है, मैं कल ही बात कर लेता हूँ।

—मुश्किल···ये है···, वह सिगरेट जलाते हुए बोला—कि अगर वो समझ नहीं पायी···तो बहुत रोयेगी। हो सकता है कुछ उल्टा-सीधा कर बैठे। वो सब जिम्मेदारी तेरी है।

—ठीक है। और कुछ?

—बस ये काम कर दे यार···, वह मुस्कराया—फिर तेरी कसम ताजमहल तो मैं बनवा दूंगा।

हम दोनों की हँसी ने ढाबे के मालिक को भी चौंका दिया। अगले दिन शाम को आफिस के बाद मैंने नीना को गेलार्ड में चाय के लिए बुलाया और बहुत सीधे-सादे ढंग से उसे सारी बातें बता दीं। वह खामोशी से सबकुछ सुनती रही और उसके बाद मुस्कराहट और आँसू एक साथ ही उसके चेहरे पर उतर आये—एक तुम ही हो जो उसे जानते हो आदित्य। और तुम समझ सकते हो कि उसने कितनी तकलीफ उठायी है इस जरा-सी बात के लिए। क्या उसे सचमुच लगता है कि मैं सिर्फ इसलिए उससे शादी नहीं करूंगी कि ये सब···। मैं तुम्हें बता नहीं सकती कि कितनी कोशिश की है मैंने, किस-किस तरह से कोशिश की है कि ये बात उसके दिमाग से निकल जाये। लेकिन आदित्य कभी-कभी मुझे लगता है कि रवि के अन्दर जैसे कोई बहुत बड़ी गाँठ है जिसे मैं नहीं खोल सकती···, एक क्षण के लिए

वह रुकी और फिर अपने-आपको सँभालकर उसने कहा—तब मुझे लगने लगता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरे कारण उसे कोई और तकलीफ पहुँचे। तुम्हें अन्दाजा नहीं है कि वह कितना पोजेसिव है मुझको लेकर। कभी-कभी सच्ची मुझे डर लगता है···

—दरअसल···वह तुम्हें बहुत प्यार करता है। और जैसा कि वो है, तुम जानती ही हो ··कुछ मामलों में अभी तक···मुझे लगता है कि उसका एक हिस्सा उसी यतीमखाने में मौजूद है। सिर्फ एक तुम हो जो उस चीज को वाकई मिटा सकती हो।

—मौका भी तो मिले उसका, उसने मेरी तरफ देखा—पता नहीं क्या-क्या उलझा हुआ है उसके भीतर। तुम हँसोगे सुनकर···हम लोग जब अकेले होते हैं तो वह मुझे छूता तक नहीं है। और तुम्हारे व और लोगों के सामने इतना लाड़ जताता रहता है।

मैंने कुछ नहीं कहा।

—दो साल से मम्मी और पापा पीछे पड़े हुए हैं कि मैं उससे बात क्यों नहीं करती। अब तुम बताओ, क्या बात करूँ मैं उससे!

—खैर, अब उसे लौट आने दो बम्बई से···, मैं मुस्कराया—मेरा ख्याल है अब वह खुद बात करेगा तुमसे!

वह मुस्करा पड़ी—थैंक्यू आदित्य! थैंक्यू सो मच!!

नीना को घर छोड़कर मैं सीधे रवि के पास गया। दिन में उसने फोन पर बताया था कि वह रात की ट्रेन से ही बम्बई जा रहा था। जब मैं पहुँचा तो वह बैग में अपने कपड़े इत्यादि रख रहा था। मुझे देखते ही उसने बहुत सीधे ढंग से अंग्रेजी में पूछा—खबर अच्छी है या बुरी?

—बुरी खबरें हम दोनों से घबराती हैं, मैं मुस्कराया और उसके साथ ही वह खुशी से चीखता हुआ मुझसे लिपट गया—जीते रहो, सेनापति···जीते रहो··· ओह गुड्डू थैंक्यू···उसके बाद उसने फ्रिज में से बियर निकाली और मग में डालते हुए बोला—एक मिनिट ··फिर देना पूरी रिपोर्ट माई डियर मैचमेकर! (मेरे प्यारे जोड़ी मिलानेवाले!)

बियर का एक लम्बा घूँट लेकर उसने मग टेबल पर रख दिया और चुपचाप सारी बात सुनता रहा। सबकुछ सुनने के बाद उसने मुस्कराते हुए अपना मग उठाया और बोला—लगता है आ ही गयी ऊपरवाले को अपनी याद···चियर्स!

ट्रेन नौ बजे थी। रवि बैग खाना होटल में ही पैक करवाकर ले आया था लेकिन फिर हम लोग बियर ही पीते रहे। वह मुझे बम्बई वाली नौकरी की सम्भावनाओं के बारे में बताता रहा। नीना वाली खबर ने जैसे सब बादलों को हटा दिया था। और ऊपर से बियर के नशे की गुनगुनी धूप—उसका खूबसूरत चेहरा जिन्दगी की खुशियाँ देखकर सूरज के अक्स की तरह चमचमा रहा था।

स्टेशन चलने के लिए जब हम लोग उठे तो रवि अपना एयर बैग कन्धे पर

डालते हुए बोला—अब तू कहेगा तो सही कि तेज दौड़ रहा हूँ लेकिन एक बात बताऊँ?

—क्या?

—अब नीना ने क्योंकि हाँ कह दी है तो देख लेना ये नौकरी भी हर हाल में मिलेगी। और यही सोचकर मैंने इस फ्लैट के भी सारे सामान की बात कर ली है। बीस हजार दे रहा है खन्ना सब चीजों के। तुझे अगर कुछ चाहिए इसमें से तो इसी बीच ले जाना, और ताला लगाकर उसने चाबी मुझे दे दी।

—तू लौटेगा कब वैसे?

—दो-तीन दिन···और क्या···, उसने गाड़ी की चाबी मुझसे लेकर दरवाजा खोलते हुए कहा—बात तो वैसे कल ही हो जायेगी। लेकिन एक-आध रोज इस बार ऐश करूँगा···, और गाड़ी स्टार्ट करते हुए उसने मस्ती के साथ गाना शुरू किया—द सी, सन एण्ड सैंड ··लवर्स होल्डिंग हैंड्स···

बियर के सुरूर ने उसकी आवाज को थोड़ा-सा भारी कर दिया था और वह सचमुच बहुत गहरी और खूबसूरत लग रही थी।

जब तक हम लोग स्टेशन पहुँचे गाड़ी छूटने का वक्त हो गया था। गनीमत यही थी कि जिस डिब्बे मे उसका रिजर्वेशन था वह सामने ही था। डिब्बे मे चढ़कर वह दरवाजे में खड़ा हो गया और झूमते हुए अपनी खास मुस्कराहट के साथ बोला—सेनापति! एक आखिरी बात हो गयी लेकिन···

—क्या? मैंने उसके पास आकर हँसते हुए पूछा।

जवाब देने के लिए वह झुका क्योंकि मैं नीचे, प्लेटफार्म पर खड़ा था और बिल्कुल स्कूल के दिनों की तरह मेरे कान के पास अपना मुँह रख कर बोला—मालूम? असल मे आज भागा हूँ मैं यतीमखाने से···

और उसके साथ ही गाड़ी रेंगने लगी।

बियर का वह सुरूर उसके जाते ही एक भारीपन में बदल गया। यूँ भी आज का दिन बहुत लम्बा था। ऑफिस में सारा दिन एडवरटाइजिंग एजेन्सी के लोगों से माथा-पच्ची करते गुजरा था। कम्पनी एक नयी दवा बाजार में ला रही थी और उसके पूरे विज्ञापन-कार्यक्रम को आज अन्तिम रूप देना था। फिर नीना के साथ वह शाम की बातचीत और उसके बाद रवि···स्टेशन के बाहर आकर मैं काफी देर तक चुपचाप गाड़ी मे बैठा रहा। मेरी समझ मे नहीं आ रहा था कि क्या करूँ अब। घर जाने का मन नहीं था। अदिति किसी साथी डाक्टर के यहाँ डिनर पर गयी हुई थी। कुछ देर मुझे लगा कि मैं और बियर पीना चाहता था। वह भारीपन जो मेरे ऊपर लटका-सा हुआ था उसके नीचे दबकर मैं सो जाना चाहता था। मैंने गाड़ी स्टार्ट की और सीधे कम्पनी गैस्ट हाउस आ गया। कैंटीन से बियर के लिए फोन करके मैं सीधा गुसलखाने में घुस गया और गर्म पानी के फव्वारे के नीचे काफी देर खड़ा रहा। वेटर बियर रखकर चला गया था। कमरे में आकर मैंने रिकार्ड चेन्जर पर कुछ रिकार्ड्स लगा दिये और सोफे पर ही लेट गया।

गर्म पानी से नहाने के बाद ठण्डी बियर बहुत अच्छी लग रही थी। मेरी नजरें सामनेवाली दीवार पर टिक गयी जहाँ विल्मा की एक ड्रॉइंग लगी हुई थी। पिछले साल मेरी सालगिरह पर उसने वह भेजी थी। एक बहुत ऊँची चट्टान की आकृति में एक निर्वस्त्र पुरुष की तीन भंगिमाएँ उसने बनायी थी—एक बिल्कुल हताश होकर बैठे हुए, दूसरी कुछ झुकी हुई-सी—भागने की तैयारी में और तीसरी किसी देवता की तरह शान्त खड़े हुए। तीनो भंगिमाएँ एक-दूसरे में मिली हुई-सी थी और कुछ ऐसा प्रभाव था उनका कि एक बार देखने के बाद नजरें आसानी से हटती नहीं थी।

एकाएक मुझे लगा कि रवि को लेकर मैं आज तक गलत था। मैंने हमेशा समझा था कि रवि बहुत तेज रफ्तार से दौड रहा है, भाग रहा है—वह सबकुछ पाने के लिए जिसके बारे में उसके मन में कोई संशय नहीं था। लेकिन अब मुझे लगा कि ऐसा इसलिए था कि अपनी यह तस्वीर खुद रवि ने ही मुझे दी थी। अलबत्ता हकीकत यह नही थी। बात बिल्कुल उल्टी थी—भागता तो मैं रहा था—रवि तो, उसने खुद ही आज शाम कहा कि भागा तो वह आज है, जब उसे विश्वास हो गया कि कोई है जिसके पास वह पहुँचना चाहता है। दुनियादारी की चीजों और सफलताओ के पीछे रवि भागा नहीं था—वे तो जैसे जमाने ने उसके कदमों पर रख दी थी। वह तो इस सारे बीच एक तरह से हताश-सा बैठा रहा था।

किसी दूसरे व्यक्ति की रचना या कलाकृति को सचमुच समझ पाना या उससे एकाकार हो पाना एक ऐसा चमत्कार होता है जो आदमी के उस हिस्से को भी बदल सकता है जिसके बारे में यह आश्वस्त होता है कि वह कभी नहीं बदलेगा या बदल सकता। विल्मा की वह ड्रॉइंग अब मुझसे खुद विल्मा की ही तरह बातें करने लगी थी। उस डोरी की जैसे सारी गाँठें एक के बाद एक खुलती जा रही थी जिससे मैं बहुत से लोगों से बँधा हुआ था—विल्मा को मिलाकर—रवि, अदिति, मेघना, कम्मो, अम्मां और बाबा···

ज्यादातर लोगों का जीवन बस एक उसी भंगिमा में गुजर जाता है—हताश बैठे हुए। भागना या उसकी तैयारी तो दूर, लोग उठकर खड़े तक नहीं हो पाते। देवता की तरह शान्त और सौम्य भाव से खड़े रहना तो एक असम्भव-सा आश्चर्य है। और मुश्किल इसलिए पैदा हो जाती है कि हम उन ज्यादातर हताश और हारे हुए बैठे लोगों को न जाने किस-किस रूप में देखते रहते हैं और भागते रहते हैं उनके पीछे—मृग मरीचिका की तरह।

अदिति ने इस बीच रह-रहकर जो कुछ भी अपने बारे में बताया था उसने मुझे एक अजीब ढंग से धामोश-सा कर दिया था। उसकी पहली शादी उसके माता-पिता ने अपनी हैसियत और रुतबे के लिहाज से की थी। अदिति के पिता बहुत बड़े बिजनेसमैन थे और अदिति उनकी अकेली लड़की थी। एम. एस. करने के बाद उसका विवाह अम्बाला के एक बहुत प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। उसके पति

छावनी के बहुत बडे ठेकेदार थे। उनकी दुनिया सिर्फ पैसे की दुनिया थी। शादी के बाद जब अदिति ने शहर मे प्रैक्टिस करने के लिए अपना क्लीनिक खोलना चाहा तो उनके पति ने बस एक ही सवाल किया—क्या करोगी लेकिन कमाई करके? ये जिन्दगी तो उसी रुपये को गिनने मे बीत जायेगी जो घर मे है और मैं कमा रहा हूँ।

जाहिर था कि उनसे बहस फिजूल थी और इसलिए अदिति ने उनकी बात अनसुनी करके अपनी प्रैक्टिस शुरू कर दी थी। साल-भर के अन्दर ही न सिर्फ उनकी प्रैक्टिस ही अच्छी खासी जम गयी थी बल्कि उनका अपना एक विशिष्ट सामाजिक व्यक्तित्व भी उभर आया था। अलबत्ता उनके पति की नाराजगी बढ़ती गयी थी क्योंकि कैण्टोनमैण्ट मे हर शाम होनेवाली पार्टीज पर उन्हे अकेले जाना पड़ता था। कुछ महीनो बाद उन्होने खुद ही अपनी पत्नी को बताया था—खैर पार्टीज की प्रॉब्लम तो कोई बडी बात नही है। उसके लिए न तो औरतों की कमी है न पार्टीज की। लेकिन तुम्हारा रवैया मुझे कुछ अजीब लगता है। तुम्हे शायद अन्दाजा नही है कि इस घर की बहू बनना सिर्फ एक शादी का ही मामला नही है। सब लोगों और खानदान की इज्जत की जिम्मेदारी भी उसी में शामिल है।

अदिति ने उन्हे समझाने की कोशिश की थी लेकिन उस समय वे क्लब से लौटे थे और नशे मे थे। अदिति सिर्फ इतना ही कह पायी थी कि अपनी जिम्मेदारी वे खूब समझती थी और रही बात खानदान की इज्जत की तो उनके खयाल से पार्टीज और क्लब्स से देर रात को नशे मे धुत्त होकर लौटना उसे घटाता ही था, बढ़ाता नही! उनके पति ने उन्हे आगे नही बोलने दिया। अपनी लडखड़ाती हुई जबान से गालियाँ बकते उन्होने अदिति पर हाथ उठाया और उसके साथ ही सबकुछ वहीं खत्म हो गया। शादी के लगभग डेढ़-साल बाद, उसी रात अदिति वह घर छोड़कर अपने पिता के पास वापिस चली गयी थी।

पिता ने बीच-बचाव करने की बहुत कोशिश की थी लेकिन कुछ ही महीनो बाद अदिति पढाई के लिए विदेश चली गयी थी। वहाँ से लौटकर दिल्ली में उन्होने स्वतन्त्र रूप से रहना शुरू किया था। उनके पिता ने उसके बाद भी उन्हें यह समझाने की कोशिश की थी कि अकेले रहने की जिद उन्हें बाद मे बहुत महँगी पड़ेगी। अदिति नही मानी थी।

कुछ साल बाद उनकी मुलाकात सुधीर से हुई थी। सुधीर के लेखन ने उन्हे आकृष्ट किया था क्योंकि अकेलेपन ने अदिति को उन वर्षों के दौरान बहुतकुछ बताया था और वही अकेलापन सुधीर के लेखन की धुरी थी। वह दोस्ती धीरे-धीरे बढती गयी थी और उसके साथ-ही-साथ अदिति को सुधीर के बारे मे बहुत-सी नयी बातें पता चलती गयी थी जिनमे कुछ बातें ऐसी भी थी जिन्हें वे अन्तत: स्वीकार नही कर पायी थी। यह कि सुधीर ने अपनी पत्नी को न तो तलाक ही दिया था और न ही रोजमर्रा की जरूरतों इत्यादि को लेकर वे उसके प्रति कोई

गर्म पानी से नहाने के बाद ठण्डी बियर बहुत अच्छी लग रही थी। मेरी नजरें सामनेवाली दीवार पर टिक गयी जहाँ विल्मा की एक ड्रॉइंग लगी हुई थी। पिछले साल मेरी सालगिरह पर उसने वह भेजी थी। एक बहुत ऊँची चट्टान की आकृति मे एक निर्वस्त्र पुरुष की तीन भंगिमाएँ उसने बनायी थी—एक बिल्कुल हताश होकर बैठे हुए, दूसरी कुछ झुकी हुई-सी—भागने की तैयारी मे और तीसरी किसी देवता की तरह शान्त खड़े हुए। तीनों भंगिमाएँ एक-दूसरे मे मिली हुई-सी थी और कुछ ऐसा प्रभाव था उनका कि एक बार देखने के बाद नजरें आसानी से हटती नही थी।

एकाएक मुझे लगा कि रवि को लेकर मैं आज तक गलत था। मैंने हमेशा समझा था कि रवि बहुत तेज रफ्तार से दौड़ रहा है, भाग रहा है—वह सबकुछ पाने के लिए जिसके बारे मे उसके मन मे कोई सशय नही था। लेकिन अब मुझे लगा कि ऐसा इसलिए था कि अपनी यह तस्वीर खुद रवि ने ही मुझे दी थी। अलबत्ता हकीकत यह नही थी। बात बिल्कुल उल्टी थी—भागता तो मैं रहा था—रवि तो, उसने खुद ही आज शाम कहा कि भागा तो वह आज है, अब उसे विश्वास हो गया कि कोई है जिसके पास वह पहुँचना चाहता है। दुनियादारी की चीजों और सफलताओं के पीछे रवि भागा नही था—वे तो जैसे जमाने ने उसके कदमो पर रख दी थी। वह तो इस सारे बीच एक तरह से हताश-सा बैठा रहा था।

किसी दूसरे व्यक्ति की रचना या कलाकृति को सचमुच समझ पाना या उससे एकाकार हो पाना एक ऐसा चमत्कार होता है जो आदमी के उस हिस्से को भी बदल सकता है जिसके बारे मे वह आश्वस्त होता है कि वह कभी नही बदलेगा या बदल सकता। विल्मा की वह ड्रॉइंग अब मुझसे खुद विल्मा की ही तरह बातें करने लगी थी। उस डोरी की जैसे सारी गाँठें एक के बाद एक खुलती जा रही थी जिससे मैं बहुत से लोगों से बँधा हुआ था—विल्मा को मिलाकर—रवि, अदिति, मेघना, कम्मो, अम्माँ और बाबा···

ज्यादातर लोगो का जीवन बस एक उसी भंगिमा मे गुजर जाता है—हताश बैठे हुए। भागना या उसकी तैयारी तो दूर, लोग उठकर खड़े तक नही हो पाते। देवता की तरह शान्त और सौम्य भाव से खड़े रहना तो एक असम्भव-सा आश्चर्य है। और मुश्किल इसलिए पैदा हो जाती है कि हम उन ज्यादातर हताश और हारे हुए बैठे लोगो को न जाने किस-किस रूप मे देखते रहते हैं और भागते रहते हैं उनके पीछे—मृग मरीचिका की तरह।

अदिति ने इस बीच रह-रहकर जो कुछ भी अपने बारे मे बताया था उसने मुझे एक अजीब ढंग से खामोश-सा कर दिया था। उनकी पहली शादी उनके माता-पिता ने अपनी हैसियत और रुतबे के लिहाज से की थी। अदिति के पिता बहुत बड़े बिजनेसमैन थे और अदिति उनकी अकेली लड़की थी। एम. एस. करने के बाद उनका विवाह अम्बाला के एक बहुत प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। उनके पति

छावनी के बहुत बडे ठेकेदार थे। उनकी दुनिया सिर्फ पैसे की दुनिया थी। शादी के बाद जब अदिति ने शहर मे प्रैक्टिस करने के लिए अपना क्लीनिक खोलना चाहा तो उनके पति ने बस एक ही सवाल किया—क्या करोगी लेकिन कमाई करके? ये जिन्दगी तो उसी रुपये को गिनने मे बीत जायेगी जो घर मे है और मैं कमा रहा हूँ।

जाहिर था कि उनसे बहस फिजूल थी और इसलिए अदिति ने उनकी बात अनसुनी करके अपनी प्रैक्टिस शुरू कर दी थी। साल-भर के अन्दर ही न सिर्फ उनकी प्रैक्टिस ही अच्छी खासी जम गयी थी बल्कि उनका अपना एक विशिष्ट सामाजिक व्यक्तित्त्व भी उभर आया था। अलबत्ता उनके पति की नाराजगी बढ़ती गयी थी क्योंकि कैण्टोनमैण्ट मे हर शाम होनेवाली पार्टीज पर उन्हें अकेले जाना पड़ता था। कुछ महीनो बाद उन्होने खुद ही अपनी पत्नी को बताया था—खैर पार्टीज की प्रॉब्लम तो कोई बडी बात नही है। उसके लिए न तो औरतो की कमी है न पार्टीज की। लेकिन तुम्हारा रवैया मुझे कुछ अजीब लगता है। तुम्हें शायद अन्दाजा नही है कि इस घर की बहू बनना सिर्फ एक शादी का ही मामला नही है। सब लोगों और खानदान की इज्जत की जिम्मेदारी भी उसी मे शामिल है।

अदिति ने उन्हे समझाने की कोशिश की थी लेकिन उस समय वे क्लब से लौटे थे और नशे में थे। अदिति सिर्फ इतना ही कह पायी थी कि अपनी जिम्मेदारी वे खूब समझती थी और रही बात खानदान की इज्जत की तो उनके खयाल से पार्टीज और क्लबस से देर रात को नशे मे धुत्त होकर लौटना उसे घटाता ही था, बढ़ाता नही! उनके पति ने उन्हे आगे नही बोलने दिया। अपनी लड़खड़ाती हुई जबान से गालियाँ बकते उन्होने अदिति पर हाथ उठाया और उसके साथ ही सबकुछ वही खत्म हो गया। शादी के लगभग डेढ़-साल बाद, उसी रात अदिति वह घर छोड़कर अपने पिता के पास वापिस चली गयी थी।

पिता ने बीच-बचाव करने की बहुत कोशिश की थी लेकिन कुछ ही महीनों बाद अदिति पढाई के लिए विदेश चली गयी थीं। वहाँ से लौटकर दिल्ली मे उन्होंने स्वतन्त्र रूप से रहना शुरू किया था। उनके पिता ने उसके बाद भी उन्हें यह समझाने की कोशिश की थी कि अकेले रहने की जिद उन्हें बाद मे बहुत महँगी पड़ेगी। अदिति नही मानी थीं।

कुछ साल बाद उनकी मुलाकात सुधीर से हुई थी। सुधीर के लेखन ने उन्हें आकृष्ट किया था क्योंकि अकेलेपन ने अदिति को उन वर्षों के दौरान बहुतकुछ बताया था और वही अकेलापन सुधीर के लेखन की धुरी थी। वह दोस्ती धीरे-धीरे बढ़ती गयी थी और उसके साथ-ही-साथ अदिति को सुधीर के बारे में बहुत-सी नयी बातें पता चलती गयी थी जिनमें कुछ बातें ऐसी भी थी जिन्हें वे अन्ततः स्वीकार नही कर पायी थी। यह कि सुधीर ने अपनी पत्नी को न तो तलाक ही दिया था और न ही रोजमर्रा की जरूरतों इत्यादि को लेकर वे उसके प्रति कोई

जिम्मेदारी महसूस करते थे—एक ऐसा सच था जिसके घेरे में अदिति अपने-आपको अपराधी-सा महसूस करने लगी थी। जब भी वे कोशिश करती सुधीर से इस बारे में बातचीत करके उस समस्या का कोई हल निकालने की, सुधीर अपने एक वाक्य से ही सारी बातचीत खत्म कर देते थे—वह मेरी समस्या है, उसका हल मैं खुद सोचूंगा।

—फिर यह लगने लगा कि हम दोनों के सम्बन्ध दरअसल दोस्तों जैसे भी नहीं हैं। कुछ भी नहीं बाँट पाते थे हम दोनों एक-दूसरे के संग। न खुशी, न परेशानी। और फिर सुधीर जैसा आदमी भी अगर एक औरत की इण्डिविजुअल एण्टिटी एक्सेप्ट नहीं कर पाये तो भई सचमुच ताज्जुब की बात है···, उन्होंने अपनी बात खत्म करते हुए कहा था और कुछ सोचने लगी थी।

हम दोनों उनके लॉन में बैठे हुए थे।

—खैर···, कुछ देर बाद उन्होंने अपना सिर झटककर मेरी तरफ देखा और मुस्करा पड़ी—तो ये है पूरा बायो-डाटा। अब इसके आगे अगर कुछ और पूछना है तो अभी पूछ लो। फिर रिफ्रेंस सैक्शन बन्द हो जायेगा।

—मैंने तो ये सब भी नहीं पूछा था, मैंने उनकी आँखों में देखकर कहा।

—हाँआँ·· तुममें ये बात कुछ अजीब-सी है, उन्होंने गर्दन झुका ली—लेकिन फिर भी आदित्य, ये जरूरी था बताना। मेरे अपने लिए जरूरी था। और क्या पता···सोचते तो तुम भी शायद होगे कभी कि मेरी पिछली जिन्दगी···नहीं क्या?

—जिस जिन्दगी में मैं था ही नहीं उसके बारे में सोचना क्या? लॉन में अँधेरा अब गहरा गया था। वे अपनी कुर्सी से उठकर घास पर मेरे पास आकर बैठ गयीं और मेरे हाथों को सहलाते हुए धीरे-से बोली—सच कह रहे हो?

—हाँ।

—तुम्हें ये बात बिल्कुल परेशान नहीं करती कि मैं उन दो आदमियों के साथ रही हूँ···?

—रहने या न रहने से क्या फर्क पड़ता है? अगर तुम्हारा मतलब शरीर से भी है तो भी वह कोई दूसरा शरीर होगा तुम्हारा···और फिर उस तरह से देखा जाये तो दूध का धुला तो मैं भी नहीं हूँ।

—लेकिन आदमी औरत को लेकर बहुत पोजेसिव होता है। तुम भी हो, मैं जानती हूँ···

—जरूर होता है। मैं भी हूँ? मैंने उनके बालों को सहलाते हुए कहा—क्यों नहीं होऊँ? नहीं होऊँगा तो कोई भी तुम्हें ले जायेगा छीनकर।

उन्होंने अपना सिर मेरे कन्धे पर टिका लिया और बहुत कमजोर आवाज में बोली—ऐसी बातें मत किया करो। अब तुम चले जाते हो तो हमें बहुत डर लगता है इन बातों से···

—क्यों?

—पता नहीं, उन्होंने कहा और चुप हो गयी।

बहुत देर तक वे उसी तरह बैठी रहीं फिर कुछ चौंककर उन्होंने अपना सिर उठाया और दोनों हाथों में मेरा चेहरा लेकर धीरे-से बोलीं—तुम जोकुछ साथ लेकर आये हो···उतना तो हमने तब भी नहीं सोचा था जब हमारी शादी हुई थी। सच···इतना मिल सकता है जिन्दगी में···ये तो कभी सोचा ही नहीं था। डर नहीं लगेगा तो और क्या होगा, बताओ?

मैंने अपनी बाँहों में भरकर उन्हें अपनी गोद में लिटा लिया और उनके चेहरे के ऊपर झुककर कहा—और फिर भी तुम मेरी बात नहीं मानतीं।

कुछ क्षणों तक अँधेरे में वे मुझे देखती रहीं और फिर मेरे चेहरे को पूरी तरह अपने पर झुकाकर उन्होंने कहा—तुम तो पागल हो···लालची बन्दर···

कुछ ही क्षणों में वे अपनी ही न जाने कितनी बार कही गयी सब बातें भूल गयीं और मचलने-सी लगीं···

ये ऐसे क्षण होते थे जब मैं उन्हें देखता रह जाता था। यूँ वे रंग-रूप से भी सुन्दर थीं लेकिन इन क्षणों में उनके भीतर लम्बे, उजाड़ वर्षों के नीचे दबी एक-दूसरी ही सुन्दरता जमीन तोड़कर बिल्कुल नयी पत्तियों की तरह बाहर निकल आती थी। उसे बता पाना मेरे लिए सचमुच मुश्किल है। कोयल जब अमराई में आकर कूकने लगती है या जब घने बादल घिर आते हैं तो मोर की वह बेचैन आवाज खुश होती है या उदास यह सोचने की मोहलत कोई अपने-आपको नहीं देता। वह सुन्दरता का एक ऐसा रूप और पक्ष है जो उसे शाश्वत बना देता है। उन क्षणों में अदिति की उम्र सोलह की भी हो सकती थी, और साठ की भी। वे सब-की-सब बातें और सच्चाइयाँ—हम दोनों की उम्र, सामाजिक स्थिति, मानसिकता, भावनात्मक इतिहास, पिछली जिन्दगी, डर, संशय और सबकुछ और, उन क्षणों में बेहद लाचार, असहाय और काफी हद तक शर्मिन्दा-सी खड़ी हम दोनों को देखती रहतीं। सबकुछ जानने, समझने और सोचने की आखिरी हद पर हम दोनों खड़े होते—निर्वासित-से। निर्वासित—क्योंकि उसके बाद जोकुछ भी होता, वह लगता जैसे पहली बार हो रहा है। न शब्द बचते थे फिर, और न ही उनसे बुनी भाषा की वह झीनी चादर जो न कुछ उघाड़ पाती न छिपा। फिर तो ऐसा लगता जैसे दुनिया की शुरुआत में उस पहले 'पुरुष' और पहली 'स्त्री' को लगा होगा—जिन्हें न यह मालूम था कि उनमें से एक 'स्त्री' है और दूसरा 'पुरुष', न यह कि वे एक ऐसी दुनिया की शुरुआत करनेवाले हैं जो लाखों-करोड़ों साल जिन्दा रहेगी और न यह कि उन्हें वह 'वर्जित फल' खाना चाहिए या नहीं।

मैं अक्सर सोचता हूँ कि आखिर क्या कारण रहा होगा कि इतने अनजाने, इतने अकारण, बिना उन बड़े-बड़े चट्टान जैसे शब्दों के जो आज हमें पीसकर रख देते हैं और बिना किसी भी तरह के परिणाम की सम्भावना या उसकी चाह के भी, इतने लेकिन सहज ढंग से दुनिया की शुरुआत हो गयी। ले-देकर बस एक ही शब्द मुझे मिला है इन तीस सालों में—प्रवृत्ति—जो एक प्रकार से प्रकृति की भी जननी

मौका मिले…

इस कम्पनी मे मैं अब कई साल काम कर चुका था और यह अच्छी तरह समझने लगा था कि अपने से बड़े ऑफिसर के साथ रहना कितनी तेज धार की दुधारी तलवार थी। फिर यह तो कम्पनी-चेयरमैन का मामला था जिनके सामने मैनेजिंग डायरेक्टर तक बमुश्किल तमाम अपनी मुस्कराहटों और हँसी का हिसाब रख पाते थे। हुआ आखिरकार यह कि पूरे हफ्ते दिन-भर तो कॉन्फ्रेन्स मे उनके साथ रहना ही पडता, शाम और रात का भी काफी हिस्सा होटल मे उन्ही के सूइट मे गुजरता। यूँ सीखने और समझने को बहुत-कुछ था वक्त के उस टुकड़े मे, लेकिन शाम होते-होते थकान इस तरह से घेर लेती थी कि बची-खुची ताकत अपने-आपको चौकन्ना रखने के लिए भी नाकाफी-सी होती थी।

कम्पनी चेयरमैन यूँ भले आदमी थे। खासतौर पर यह देखते हुए कि दवाइयो के व्यवसाय मे वे न सिर्फ एक अन्तर्राष्ट्रीय हस्ती ही थे बल्कि उनके बारे मे सार्वजनिक रूप से कहा जाता था कि 'वे डॉलफिन के स्वांग में शार्क हैं।' उन्होंने लगभग दस साल मे आधी-दर्जन बहुद्देशीय कम्पनियों को पहले बीमार कर दिया था और फिर उन्हें खरीदकर अपनी कम्पनी में मिला लिया था। मुलाकात के तीसरे दिन उन्होने मुझसे मार्केटिंग के बारे मे बातचीत के दौरान एक ऐसी बात कही थी कि मुझे उनके बाहरी भलेपन के बावजूद, उनके बारे में प्रचारित सब बातो पर एक अन्धा-सा विश्वास हो गया था।

मुझे लगता है कि तुमने मार्केटिंग की बुनियादी नब्ज तो पकड़ ली है, उन्होंने व्हिस्की का घूंट लेकर कहा था—कुछ धन्धे होते ही ऐसे हैं जिनमे बिना सरकार का खून निकाले काम नही चल सकता। दवाइयो के मामले मे भी यह सच है। बेईमानी के हक मे मैं बिल्कुल नही हूँ लेकिन यह सच है।कि किसी भी देश की सरकार अपने लोगो के स्वास्थ्य की देख-भाल के लिए अपने को कबूतर की गर्दन की तरह फुलाये रहती है…बस…निशाना यही है…उस कबूतर मे से सिर्फ इतना खून निकाल लो कि वह उड़ न सके। क्या तुम समझ सकते हो जो मैं कह रहा हूँ?

—जी…बहुत अच्छी तरह, मैंने उनकी आँखो की हरे रंग की पारदर्शी-सी पुतलियो की तरफ देखकर कहा था।

—मुझे मालूम था…, वे हँसे और व्हिस्की का एक और घूंट लेकर उन्होंने कहा—मुझे बताया गया है कि तुमने तो अपने पहले प्रोग्राम में ही सरकारी टीका लगानेवाले कार्यक्रम का बहुत खूबसूरत इस्तेमाल किया था। इसका मतलब तुम्हें आता है ब्लीड करना (खून निकालना) और यह जानकर मुझे खुशी होती है।

—थैंक्यू सर…

सुइट के दूसरे हिस्से से तभी एक महिला सिर्फ स्विम सूट पहने दाखिल हुई और स्वीडिश मे उनसे कुछ कहते हुए उसने उनका खाली गिलास लेकर दोबारा भर दिया और उनके सोफे की बाँह पर ही बैठ गयी।

—इसे यहाँ कलकत्ते मे गर्मी बहुत परेशान कर रही है, उन्होंने उसकी जाँघ को सहलाते हुए हँसकर कहा—और मेरे लिए इसे यह समझना बहुत मुश्किल है कि एक तो शायद कलकत्ते में कोई 'बीच' नही है और यदि होगा भी तो उसे देखकर यह सचमुच आत्महत्या कर लेगी।

—जीहाँआँ···यह तो आप ठीक कह रहे है, मैंने नजरें झुकाकर मुस्कराते हुए कहा और अपना गिलास खाली करके उठते हुए बोला—अब मैं आपकी इजाजत लूंगा।

—ओकेएए···कल मिलेंगे फिर, उन्होंने हाथ हिलाया और मैं कमरे से बाहर आ गया। पैनी नजरों और छीलती हुई बातों का वह सिलसिला पूरे हफ्ते तक चला था।

अन्ततः जब मैं दिल्ली वापिस आने के लिए हवाई जहाज मे बैठा तो मेरी हालत यह थी कि उड़ान शुरू होने से पहले ही मैं गहरी नींद मे बेहोश-सा पड़ा था।

एअरपोर्ट से मैं सीधे कम्पनी गैस्ट हाउस आया और फिर सो गया। जब नींद खुली तो रात के आठ बजे थे। मैंने रवि को फोन लगाया लेकिन वह घर पर नही था। शायद नीना के यहाँ हो, यह सोचकर मैंने नीना को फोन किया। फोन नीना की बड़ी बहन ने उठाया और मेरी आवाज पहचानते ही वे फोन पर ही सिसक पड़ी—

—रवि···रवि नही रहा आदित्य···, जैसे जलती हुई लोहे की सलाखें किसी ने मुझमे दाग दी। न मेरे मुँह से कोई शब्द निकला, न आँखों मे कोई आँसू, न मेरे कान ही अब कुछ सुन पा रहे थे···

मैंने फोन रख दिया और बिस्तर पर बैठा ही रह गया। उसके बम्बई जाने के दिन की वे सब बातें मेरे सामने धीमी गति की फिल्म की तरह घूमने लगी। फिर पिछले दिनो की···पिछले महीनों की···पिछले सालो की···स्कूल की···बचपन की···

क्या होता है मौत की दस्तक मे आखिर···कि सब आवाजें डूब जाती हैं। बचती हैं तो बस पानी मे काँपती खामोश परछाइयाँ। जैसे कोई जहाज समुद्र मे डूब जाता है—बहुत नीचे, समुद्र की सतह पर वह पूरी जिन्दगी मलबे की तरह बिखर जाती है जो कभी हमारी थी। कोई आवाज नही होती वहाँ, उस सतह पर। बस छोटी-बड़ी मछलियाँ सब चीजो और परछाइयों पर एक लापरवाह-सी नजर डालकर खामोशी से तैरती रहती हैं। हम खुद नही ठहर पाते उन सब परछाइयों के पास बहुत देर तक। वह खौफनाक सन्नाटा हमे डरा देता है और किसी चालाक गोताखोर की तरह हम वापिस ऊपर आ जाते हैं—शोर-शराबे की दुनिया मे जहाँ कोई हँसता है, कोई रोता है और कोई चीखता है दूसरों पर या अपने आप पर··· लोग व्यस्त रहते हैं अपनी-अपनी नावो और जहाजों को सामान से लादने में—उस सफर की तैयारी में जिससे वे कभी वापिस नही लौटेंगे···

कुछ देर बाद रात को ही जब मैं नीना के घर पहुँचा तो पता चला कि डाक्टर ने उसे इन्जैक्शन लगाकर सुला दिया है। पिछले तीन रोज से उसका यही हाल था। दिन-भर वह हिस्टीरिक होकर चिल्लाती रहती और न कुछ खाना, न पीना। रात को सिवाय इसके कोई चारा न होता कि उसे नींद के इन्जैक्शन दिये जायें। उसके माता-पिता बुरी तरह से घबराये हुए थे। सिर्फ उसकी बड़ी बहन ही थी जो सबको सँभाले हुए थी और उसके कारण इतनी थक चुकी थी कि मुझसे बातें करते वक्त वह बीच-बीच में बेदम-सी होकर रुक जाती।

सोमवार के बजाय बुधवार तक जब रवि नहीं लौटा तो नीना ने उसके होटल फोन किया। उन लोगों के पास उसकी कोई खबर नहीं थी। घबराकर उसने फिर बम्बई में उस होटल में बात की जहाँ रवि इण्टरव्यू के लिए गया था। उन्होंने बताया कि रवि ठहरा तो उसी होटल में था लेकिन इतवार की सुबह कहीं गया था और उसके बाद से अभी तक नहीं लौटा था। जैसे ही उन्हें कुछ पता चलेगा वे उसे खबर करेंगे। अगले दिन सुबह ही उन्होंने ट्रंक काल से खबर दी कि इतवार की सुबह रवि जुहू-बीच गया था और किसी बच्चे को बचाने की कोशिश में समुद्र में डूब गया था। उसकी लाश अभी तक नहीं मिली थी। बच्चे के माँ-बाप की मदद से 'बीच' पर उसका बैग मिला था लेकिन उसमें उसके पर्स के अन्दर सिवाय उसके फोटो के और कोई अता-पता नहीं था। दो-तीन दिन पुलिस ने हर छोटे-बड़े होटल में उस फोटो के जरिये पता चलाने की कोशिश की थी। कल रात उनके होटल से जब पूछा गया तो सारी बात पता चली थी।

नीना फोन रखते ही बुरी तरह से चीखी थी और फिर बेहोश हो गयी थी।

—कोई था ही नहीं आदित्य उसकी किस्मत में तो···, नीना की बड़ी बहन ने आखिर में रोते हुए कहा—सोचो···आदमी मरता है···तो लाश तो अपनी होती है कुछ देर के लिए···

मैं उसी तरह खाली-सा बैठा रहा उनके पास। चलते वक्त उन्होंने मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा—तुमसे क्या कहूँ अब! लेकिन आते रहना। नीना को तुम्हीं समझा सकोगे···

रात के बारह बजे थे जब मैं उस घर से निकला। मेरे हाथों से अपने-आप ही गाड़ी को डिफेन्स कॉलोनी की तरफ मोड़ दिया।

उसका फ्लैट खोलकर मैंने बत्ती जलायी और दरवाजे पर ही खड़ा उस कमरे को देखता रहा। सब-कुछ हमेशा की तरह सजा हुआ था। फ्लैट की सफाई की जिम्मेदारी उसने मकान मालकिन को ही सौंप रखी थी। उसकी गैरमौजूदगी में वे फ्लैट खुलवाकर साफ-सफाई करवा देती थीं। मैंने अन्दर आकर दरवाजा बन्द कर लिया और बैडरूम में चला आया। सबकुछ उसी तरह साफ-सुथरा वहाँ भी था। मैं उसके बिस्तर पर बैठ गया और मेरी नजरें सामनेवाली दीवार पर टिक गयीं जहाँ तेन्दुए की खाल का वह मफलर किसी तस्वीर की तरह लटका हुआ था···

उस कमरे, यानी बैडरूम में मैं आज शायद तीसरी या चौथी बार आया था।

कभी जरूरत ही नही पड़ी थी। लेकिन अब पहली बार मुझे अहसास हुआ कि वह कमरा कितना सादा था। एक पलंग, उसके बराबर एक टेबल और दीवार पर तस्वीर की तरह टँगा मफलर—सिवाय इसके कुछ नही था उस कमरे मे। मुझे नीद के बारे में उसकी 'थ्योरी' याद आयी और उसके बाद समझ में आया कि नीद की पोजीशन ही नही बल्कि रवि जैसे लोगों के बारे मे वह जगह, वह कमरा भी उतना ही महत्त्वपूर्ण और मानीखेज था जहाँ वह सोता था। मुझे उस कमरे को देखकर अब पहली बार समझ मे आया कि नीद रवि को कितना परेशान करती होगी···

अब जबकि मैं अपनी पसन्द के मकान मे रहता हूँ तब भी मेरा बैडरूम न जाने कितनी ही चीजों से भरा रहता है। यह सचमुच एक बहुत बडा आराम और सुविधा है जो आदमी ने कोशिश करके अपने कब्जे मे कर ली है कि अँधेरे और रोशनी को वह अपनी जरूरत के हिसाब से बाँध सकता है। सिर्फ एक खटका दबाकर हम उन सब चीजो को अँधेरे में डुबो देते हैं जो हमे सोने नही देती।

कुछ देर के लिए मेरी आँखों के सामने बचपन मे देखा अनाथालय का वह हॉल घूम गया जिसमे दोनों तरफ दीवार से लगी बहुत-सी चारपाइयाँ बिछी हुई थी। सजावट के नाम पर उस कमरे में सिर्फ महात्मा गांधी की एक तस्वीर थी।

अनायास ही मैंने उठकर कमरे की बायी तरफवाली दीवार मे बनी बड़ी-सी अलमारी को खोला जिसमें उसकी चीजें रक्खी थी—एक सूटकेस, कुछ किताबें, एक घड़ी और कुछ कपड़े। मैंने उस सूटकेस को खोला। ज्यादातर तो कपड़े ही थे उसमे, लेकिन सबसे नीचे एक बहुत पुराने कपड़े में लिपटी हुई कुछ चीजें थी। मैंने वह पोटली-सी निकालकर खोली और एकाएक मेरी आँखें धुँधला गयी···

उस पोटली के भीतर जो सबसे आकर्षक चीज थी वह चॉकलेट का वह गत्ते का डिब्बा था जो बचपन में उस मेम ने मुझे दिया था। उसे बिल्कुल सपाट करके उसने उस पोटली में सबसे नीचे बिछा रक्खा था। मुझे याद आया कि अनाथालय मे उस छुट्टी के दिन जब मैं उससे मिलने गया था तो उसने माँगकर मुझसे और चॉकलेट ली थी। अगले दिन स्कूल मे मैंने वह पूरा डिब्बा उसे दे दिया था।

एक कार्ड था उस पोटली में—उस अनाथालय का जिसमे उसका नाम, अनाथालय मे उसके दाखिले की तारीख व कुछ अन्य ब्योरे लिखे हुए थे। एक दो रुपये का नोट था। और एक काफी खूबसूरत लेकिन बहुत पुराने रूमाल में बँधी कुछ और चीजें थी—एक सोने का लाकेट, काली रेशमी डोरी मे बँधा हुआ एक तावीज और एक चिट्ठी। मैंने उस मुडे हुए कागज को खोलकर देखा। बहुत फीकी स्याही मे लिखा हुआ था —"अपनी बदनसीबी से हारकर मैं इस बच्चे को यहाँ छोड रही हूँ। अगर मैं जिन्दा भी रहती तब भी मैं यह कभी नही चाहती कि इसे अपने बाप का नाम और पता मालूम हो। मेरे पास अब जोकुछ बचा है वह यही है। भगवान ने मुझे तो इन्साफ नही दिया लेकिन इसकी तो किस्मत ही ऐसी है कि शायद इन्साफ माँग ही न पाये—आप जोकुछ इस बच्चे के साथ करेंगे वही

इसकी किस्मत होगी।" सबसे नीचे दस्तखत थे जिन्हें पढ़ा नहीं जा सकता था।

एक-एक चीज उस पोटली में उसी तरह रखकर मैंने उसे बाँध दिया और दीवार से वह मफलर उतारकर मैंने उससे कहा—ठीक है। तू जो चाहता था, इस बार भी वही हुआ···

जब मैं अदिति के पास पहुँचा तो सुबह के तीन बजे थे। वे मुझे देखकर एकबारगी तो घबरा गयी। जब मैंने उन्हें सारी बात बतायी तो बजाय मुझे समझाने के वे खुद भी रोने लगी।

सिर्फ मौत ही नहीं थी वह···वह एक ऐसा धोखा था जो जिन्दगी को जीते जी खत्म कर देता है। और हम दोनों···मैं और रवि···तो जिन्दगी से लड़ने निकले थे···

अफसोस इस बात का नहीं है कि रवि उस तरह मर गया। अफसोस यह है कि वह जिन्दगी जो लाखों बेईमान, हरामखोर और बदशऊर लोगों के सिर पर रंग-बिरंगी पगड़ियाँ बाँधते नहीं अघाती उसने एक ऐसे सिर को कलम कर दिया जिससे खुद उसकी, जिन्दगी की बेइज्जती होती है। और रवि···जिसने जिन्दगी-भर किसी से कुछ नहीं पूछा था, अब भी, आज भी मुझसे कई बार पूछता है—गुड्डू, कोई तो हिसाब होगा न जिन्दगी का···तेरी कसम मैंने सब-कुछ जोड़-घटाकर देख लिया है अब। इट्स आइदर मी और डैथ···(या तो मैं हूँ या मौत!)

लेकिन उसके लिए आसान था हिसाब लगाना। जब दादाजी और उस्ताद को मैंने यह खबर दी तो उनकी हालत देखकर मैं भी अपने आँसू नहीं रोक पाया। बूढ़े लोगों को रोते हुए देख भीतर कोई चीज दरक जाती है। जिन्दगी का पूरा दरिया पार करने के बाद जब दूसरे किनारे पर बैठा कोई रोता है तो एक ऐसी वितृष्णा पैदा होती है कि सबकुछ उसमें डूब जाता है। दादाजी जिन्होंने पूरा जीवन अनाथ बच्चों के बीच बिताया था, खुद यतीमखाने के किसी बच्चे की तरह रोते रहे थे। उस्ताद को तो सँभालना मुश्किल हो गया था। बार-बार वे मेरी बाँह पकड़कर झकझोरते "बम्बई चल न बेटे···हो सकता है मिल ही गयी हो उसकी लाश···अरे एक बार देख तो लेने दे मुझे। या अल्लाह ये तूने क्या किया परवरदिगार···

अम्माँ और बाबा भी अपने-आपको रोक नहीं पाये थे। बाबा तो इतने खामोश हो गये थे कि मुझे फिक्र के साथ ही डर-सा लगने लगा। अम्माँ हमेशा की तरह रो-रोकर रवि से न जाने क्या-क्या कहती रही थी। हफ्तों घर में ऐसा सन्नाटा रहा कि मुझे घबराहट होने लगी।

कुछ दिनों बाद उसके होटल से मिस्टर सिंह का टेलीफोन आया। मैं जब उनसे मिलने गया तो वे अपराधी की तरह नजरें झुकाकर बोले—आप भी शायद मुझे माफ नहीं करेंगे। उसने तो नहीं किया।

मैंने निर्विकार भाव से कहा—इसमें किसी का भी क्या दोष है। और मैं तो जानता हूँ कि आपने हमेशा उसका भला ही चाहा। आपकी वो बहुत इज्जत

करता था।

वे चुप हो गये। कुछ देर बाद कुछ सोचते हुए उन्होंने कहा—मैंने तो सिर्फ इसलिए कहा था कि वह अपने-आपको थोड़ा सँभाल ले। लेकिन मुझे···विश्वास कीजिए, बिल्कुल भी अन्दाजा नहीं था कि मैं इतनी बड़ी गलती कर रहा हूँ। और वो भी एक ऐसे लड़के के साथ जो हमेशा मेरी आँखों मे देखकर मुझसे बात करता था···

—मैं आपकी फीलिंग्स (भावनाएँ) समझ सकता हूँ।

उसके बाद उसकी नौकरी से सम्बन्धित जरूरी औपचारिकताएँ पूरी करनी थी। होटल की तरफ से लगभग बीस हजार रुपये उसके नाम निकलते थे जिन्हे मैंने उसके बैंक अकाउण्ट में डलवा दिया। मिस्टर सिंह की ही मदद से मैंने उसके फ्लैट के सामान का रुपया व बैंक मे जमा और रकम को भी निकलवाया। कुल मिलाकर लगभग सत्तर हजार रुपये थे। पचास हजार का एक ड्राफ्ट मैंने अनाथालय के नाम बनवाया और बीस हजार रुपये को स्कूल के खाते मे जमा कर एक छात्रवृत्ति की कार्यवाही पूरी की। दादाजी को जब मैं वह ड्राफ्ट देने गया तो उन्होंने अनाथालय में भी रवि के नाम से एक और छात्रवृत्ति शुरू करवा दी—ऐसे बच्चों के लिए जो आठवी क्लास के बाद भी पढ़ने में रुचि रखते हों। दादाजी को मैंने उस पोटली की चीजें भी दिखायी थो जो मुझे उसके सूटकेस मे मिली थी। उन्होंने बताया कि अनाथालय का वह कार्ड, वह वहाँ से भागते वक्त चुराकर ले गया था। रूमाल में रखा वह लॉकेट, तावीज और खत उन्होने ही बाद में उसे दिया था—वह उन्हें रवि के साथ ही एक सुबह अनाथालय के दरवाजे पर मिला था। दो या तीन दिन के उस बच्चे की माँ उसे उसी चादर में रखकर छोड़ गयी थी। दो रुपये का वह नोट शायद उसकी पहली कमायी थी···। उस्ताद ने बाद मे एक बार बातों के दौरान मुझे बताया था—सात या आठ साल का होगा तब। हफ्ते-भर के काम के बाद जब मैंने उसे दो रुपये दिये तो इतनी हिफाजत के साथ तह करके अपने नेकर की चोर जेब मे रखा उसने वह नोट कि मुझे हँसी आ गयी। कसम कुरान पाक की, उस वक्त मुझे जरा भी इल्म नही था कि वो यतीमखाने मे रहता है···

इन्हीं सब बातों में लगभग तीन महीने गुजर गये। नीना की हालत धीरे-धीरे सँभली। उस बीच मैं कई बार उससे मिला लेकिन धीरे-धीरे मुझे लगा कि मेरा मिलना उसे फिर से उसी दुनिया में धकेल देता था जो अब खत्म हो चुकी थी। मैं खुद नही सह पाता था उसकी आंखों का खालीपन। और यूँ भी मैं उसे क्या समझा सकता था।

मेघना इस बीच कई बार मुझसे मिली थी। घर आकर भी उसने अम्माँ को बहुत समझाया था। मुझे खुद आश्चर्य हुआ था कि रवि को लेकर वह मुझे इतना समझाती थी, इस दौरान उसने भरसक कोशिश की थी मुझे उस अन्धे कुएँ से निकालने की जहाँ और तो और अदिति की भी आवाज मुझ तक नही पहुँचती थी। रवि के न रहने के लगभग चार महीने बाद उसने एक दिन मुझे बताया था कि वह

साल-भर के लिए अपनी मौसी के पास अमरीका जा रही थी। मैंने बहुत कोशिश की कि उसे अदिति के बारे में बता दूँ लेकिन आखिरकार मेरी हिम्मत नहीं हुई। जिस रात मैं उसे छोड़ने एअरपोर्ट गया तो सारे जरूरी काम निबटाने के बाद वह मुझे एक कोने में ले गयी और बोली—एक बात कहूँ?

—क्या?

—तुमने डैडी से बात नहीं की···तो कोई बात जरूर होगी। उसने गर्दन झुका ली—लेकिन आदित्य, तुमने मुझसे भी कुछ नहीं कहा, उससे मुझे डर लगता है···, और अचानक उसने मेरी तरफ देखकर कहा—मेरी तरफ देखो।

मैंने नजरें ऊपर उठायीं। उसकी रुलाई छूट रही थी।

—तुम मुझसे भी नहीं कहते कुछ?

—ये क्या··, मैंने उसके हाथों को पकड़कर कहा—इसमें रोने की क्या बात है! ऐसे नहीं करते···

—तुम बस एक बार यह कह दो कि तुम्हें कुछ नहीं हुआ···

—कुछ नहीं हुआ मेघना···, मेरे मुँह से निकल गया—तुम ठीक से जाओ। वहाँ अच्छी तरह रहना। मैं लिखूँगा तुम्हें···

वह चुपचाप मेरी तरफ देखती रही और उसके बाद धीरे-से बोली—तुम बहुत परेशान कर देते हो मुझे···लेकिन अच्छी तरह रहना। बस अब जाओ···, और अपने हाथ छुड़ाकर वह चली गयी।

उस रात फिर मुझे नींद नहीं आयी। रह-रहकर लगता रहा कि मुझे मेघना को सबकुछ बता देना चाहिए था। फिर अपने-आपको मैंने समझाया कि उस समय उससे वह कुछ कहना बेवकूफी होता। जब वह वहाँ पहुँच जायेगी तो मैं उसे सबकुछ लिख दूँगा···

मेघना के जाने के फौरन बाद मुझे कम्पनी के काम से कुछ दिनों के लिए पंजाब के टूर पर जाना पड़ा जिसमें कुल मिलाकर पूरे दो हफ्ते लग गये। उसी दौरान एक ऐसी घटना हुई जिसने अदिति को लेकर मेरे भीतर उस रेत-घड़ी को जैसे उलटकर रख दिया। वह सारा वक्त भी, जो अब तक बीत चुका था जैसे नये सिरे से शुरू हो गया।

अपने काम के सिलसिले में मुझे कई दिन अम्बाला रुकना पड़ा। वहाँ के एक बड़े होलसेल डीलर ने एक शाम हम लोगों को एक पार्टी पर आमन्त्रित किया। शहर के कई और बड़े बिजनेसमैन वहाँ मौजूद थे। व्यापारी वर्ग और पैसेवाले लोगों की वह उस तरह की पार्टी थी जिससे मुझे बहुत उलझन होती है। अजीब-अजीब तरह के बेडौल और बदशऊर लोगों का जमघट जिनको इस तरह की पार्टीज के बहाने दरअसल तलाश रहती है जमकर शराब पीने की, दूसरी औरतों के साथ अपनी हविस का खेल खेलने और अपने पैसे का रुतबा जमाने की। मैं अपनी कम्पनी के दो और लड़कों के साथ एक कोने में खड़ा बातें कर रहा था। नौ बज चुके थे और हम लोगों को दरअसल खाने का इन्तजार था। तभी हॉल के दूसरे कोने से किसी

की ऊँची आवाज में बहुत ही भद्दी गालियाँ सुनायी दीं। जब तक कि हम लोग कुछ समझ पाते वहाँ बाकायदा हाथापाई शुरू हो गयी और हॉल मे अच्छी-खासी भगदड़-सी मच गयी। मैं आगे बढ़ा ही था कि हम लोगो के डीलर ने कुछ शर्मिन्दा-सी आवाज मे कहा—आप यहीं रुकिए कुमार साहब—क्या बतायें कुछ लोग होते ही ऐसे हैं कि गुस्सा भी आता है और मजबूरी भी होती है!

—लेकिन हुआ क्या? मैंने पूछा।

—होना क्या है जी, उसने जवाब दिया—जब पैसा हो अनाप-शनाप और घर मे औरत न हो तो बस यही होता है···

पता चला कि जिस आदमी ने गाली-गलौज की थी और अब नशे में धुत उसके बेहोश शरीर को कुछ नौकर हॉल से उठाकर बाहर ले आ रहे थे उसका नाम था महेन्द्र सेठी। शहर के एक काफी पुराने रईस खानदान से उसका ताल्लुक था और वह खुद छावनी का एक बहुत बड़ा ठेकेदार था। अभी जोकुछ हुआ था वह महेन्द्र सेठी के रहते किसी भी जगह होना एक आम बात थी।

—अब आप से क्या बतायें कुमार साहब, डीलर ने कहा था—ये सब अपनी जगह है। सब जानते हैं कि सेठी साहब को बुलाने का मतलब ये थुक्का-फजीती तो है ही। बहुत-से लोगों ने तो अब बुलाना ही छोड़ दिया है। लेकिन, देखिए धन्धे मे हर आदमी तो अपनी नाक ऊँची रखकर नहीं चल सकता···असल में सच्ची बात तो यह है कुमार साब कि इस आदमी को देखकर हमे तो तरस आता है।

—मतलब? मैंने पूछा।

—मतलब ये कि इतने बदकिस्मत लोग बहुत कम होते हैं दुनिया मे। अगर आपने इनकी बीवी को देखा होता तब शायद समझ पाते आप कि आदमी सबकुछ मिलने के बाद भी कितना काबिले-रहम और अफसोसनाक हो सकता है। मैं आपसे सच कहता हूँ कि जब इनकी शादी हुई थी तो लोग रश्क करते थे इनकी किस्मत पर। दुनिया-भर का पैसा घर मे, खुद का कारोबार बुलन्दी पर और बीवी इतनी खूबसूरत कि खुद खत्रियों के यहाँ हल्ला मच गया था और ऊपर से इतनी अच्छी डाक्टर थी वह लडकी कि साल-भर के अन्दर ही इतनी अच्छी प्रैक्टिस हो गयी थी कि लोग जलने लगे थे—लेकिन किस्मत···, डीलर की नजरें कहीं दूर चली गयी थीं—आप तो पढ़े-लिखे आदमी हो कुमार साब, लेकिन आपसे सच कहता हूँ···साँप का दूसरा नाम किस्मत होता है। यो न हो तो आदमी को रोकना मुश्किल है।

मेरे भीतर जो बेचैनी कुछ देर से अपना फन उठाकर कुण्डली लगाये बैठ गयी थी अचानक सरसराती हुई कहीं गायब हो गयी।

—लेकिन आखिर हुआ क्या?

—कुमार साब, एक नशा हो तो आदमी सँभाल ले···, डीलर ने बड़ी उदास मुस्कराहट से कहा—यहाँ तो खानदानी गरूर अलग, पैसे का नशा अलग और रही-सही कमी शराब ने पूरी कर दी। आदतें पहले ही बिगड़ चुकी थीं। बीवी से

अनबन हुई तो औरतखोरी भी बढ गयी। लेकिन उस लड़की को मानना पड़ेगा साब ! एक बार घर छोड़कर जो गयी तो पूरा खानदान और सारा पैसा बिल्कुल अपाहिज की तरह बैठा रहा। वह दोबारा नही आयी इस शहर मे…

मैंने बिना कुछ कहे अपने गिलास मे से ह्विसकी का एक घूंट लिया और अदिति का चेहरा मेरी आँखों के सामने उभर आया—वह चेहरा जो बहुत उदास रहता था।

—ज़रा सोचिए आप ही…, उसकी आवाज भी नशे की गिरफ्त में थी—क्या उम्र होती है वह एक लडकी के लिए। और वो भी एक हिन्दुस्तानी लडकी…। कोई दूसरी लडकी होती तो सुसरालवालो को नंगा करके नचाती। लेकिन मानना पड़ेगा साब उसे तो…, और वह चुप हो गया।

—सेठी साहब ने दूसरी शादी नही की ? कुछ देर बाद मैंने पूछा।

—नही…, उसने एक लम्बी साँस छोड़ते हुए कहा—बीवी के लायक तो शायद हैं भी नही वो और औरतों की तो दुनिया मे कोई कमी है नही कुमार साब !

मेज पर खाना लग चुका था। हॉल की हलचल और रौनक फिर वैसी ही हो गयी थी जैसी उस हादसे से पहले थी। लोगो को देखकर यह कहना मुश्किल था कि अभी कुछ ही देर पहले उनके बीच एक उस तरह का हंगामा हुआ था।

खाना खाकर मैं सीधे अपने होटल वापिस चला आया। होटलवालों से कहकर मैंने एक टैक्सी का इन्तजाम करवाया और उसी वक्त वहाँ से चल पड़ा। टैक्सी जब दिल्ली मे दाखिल हुई तो सुबह के तीन बज रहे थे। मैंने कश्मीरी गेट पर जी. पी. ओ. के सामने गाड़ी रुकवायी और पोस्ट आफिस के पब्लिक बूथ से अदिति का नम्बर मिलाया। कुछ देर तक घण्टी बजती रही। फिर अदिति की उनींदी, भारी और थोड़ी-सी चौकन्नी आवाज सुनायी दी—हैलो ? कौन ?

—मैं हूँ अदिति… सॉरी, तुम्हे जगा दिया !

—आदित्य ? वे एकदम से घबरा गयी—क्या बात है ? कहाँ से बोल रहे हो? क्या हुआ ?

—कुछ नही…घबराओ मत, मुझे हँसी आ गयी—तुमसे डाँट खाने का मन हो रहा था, इसलिए फोन कर दिया।

—माई गुडनैस'…, वे बहुत भारी-सी साँस छोड़कर बोली—तुम होश मे तो हो न अपने…पागल कही के…कितना डरा दिया मुझे।

—आइ एम सॉरी…आइ डिन्ट मीन दैट। (मुझे अफसोस है…मेरा मतलब वह नही था।)

—सच्ची बहुत ही वो हो तुम तो…, वे हँस पड़ी—मालूम है क्या टाइम हो रहा है इस वक्त ?

—हाँ… तीन बजे हैं…, मैंने कहा और फिर पूछा—मैं आ जाऊँ तुम्हारे पास ?

—जल्दी आओ···, और उन्होंने फोन रख दिया।

उनकी कोठी पर पहुँचकर मैंने टैक्सी बाहर ही रुकवा ली। उसे रवाना करने के बाद गेट खोलकर मैं अन्दर दाखिल हुआ ही था कि गेट पर लगी बुगेनविला की झाड़ी के पीछे से अदिति मेरे सामने आ गयी।

चाँदनी नही थी अब। उससे भी सुन्दर एक उजास थी। एक ऐसी नयी रोशनी मे अदिति मेरे सामने खड़ी थी जिसमे मैंने उन्हे पहले कभी नही देखा था। मुझे देखकर वे मुस्करायी और जब मैं उनके पास पहुँचा तो मुझे अपनी बाँहों मे भरकर बोली—क्या बात है गुड्डू ? क्या हो गया ? रवि के बाद सिर्फ वे ही थी जो कभी-कभी मुझे इस नाम से पुकारती थी। वे क्षण ऐसे होते थे जिनमे वे सिर्फ अदिति ही नही होती थी। उन क्षणो मे वे रवि भी होती थी, अम्मां और बाबा भी और वे खुद अपने आप भी। इतना खूबसूरत लगता था मुझे अपना वह नाम जब वे उसे पुकारती थी कि मैं सब-कुछ भूल जाता था।

—कुछ नही···, मैंने अपनी बाँहों मे उन्हे भीच लिया और उनके कन्धे पर अपना चेहरा रखकर बोला—नीद नही आ रही थी !

—क्यो···? उनके होंठो ने बहुत पास से पूछा—क्यों नही आ रही थी नीद ?

—पता नही···

—मेघना की याद आ गयी ? उन्होने मेरा चेहरा अपनी हथेलियों में ले लिया और मुस्करा पड़ी—बिचारा गुड्डू···नीद ही नही आती उसको अब···तो क्यों जाने दिया फिर उसको ? हैएं ?

मैंने उनकी आँखों मे देखा और फिर मुझे समझ में आया कि आसपास की वह सब रोशनी उन्ही आँखों के कारण थी। उन आँखों मे ही वह लौ जल रही थी जिसके उजाले मे मैं सब-कुछ देख और जी रहा था।

बिना कुछ कहे मैंने उस लौ को चूमना चाहा और उन्होने अपनी पलकें झुका ली।

कुछ देर बाद फिर वे होंठ परिन्दो की तरह फड़फड़ा उठे···

—क्या हो गया है तुम्हें आज ··हैंएंएं ? पागल ! पता नही क्या सोचते रहते हो···चलो अच्छा अब अन्दर चलो ··तुम्हारा तो अब कुछ इलाज करना पड़ेगा।

कमरे मे पहुँचकर न उन्होने कुछ कहा न मैंने। सिर्फ परिन्दों को मालूम था कि इतनी सुबह आखिर ऐसी कौन-सी जरूरी बात होती है जिसके लिए वे जाग जाते हैं। और जब सारी दुनिया गहरी नीद मे सोती होती है तो वह कौन-सा रहस्य होता है जो फड़फड़ाते हुए परिन्दे खामोशी से झरती हुई पंखुरियो को बताते हैं।

बहुत देर बाद जब कमरे के बाहर सुबह की रोशनी का एहसास हम दोनों को हुआ तो उन्होंने मेरी तरफ करवट ली और अपना चेहरा मेरे सीने से सटाकर बोली—ऐसा लग रहा है जैसे सपना हो···

मैं उनके बालो को सहलाता रहा। कुछ देर पहले की वे सब बातें अब धीरे-

धीरे मेरी आँखों में घूम रही थी। यूँ तो मुझे हमेशा ही उन्हें ऐसे क्षणों में देखकर बहुत हैरत होती थी लेकिन आज तो पता नहीं क्या हुआ था कि सबकुछ उनके भीतर से उफनता चला गया था। देह की शायद अपनी अलग दुनिया होती है। अमूमन मन की बातें वह नहीं सुनती। मन तरसता रहता है और किसी जिद्दी बच्चे की तरह उकसाता रहता है जटिल संस्कारों और अपनी ही मर्यादाओं से बँधी इस देह को जो हमेशा किसी सन्यासी-बैरागी की तरह रहने की कोशिश करती है। और मन के बहकावे में कभी वह आ जाये तो खुद ही भौचक्की-सी रह जाती है—अपने-आपको देखकर, उस मोह, लालसा और लालच को देखकर जो उसकी तमाम कोशिशों के बाद भी मिटता नहीं बल्कि घना ही होता जाता है। आज भी वैसा ही हुआ था। न जाने कब हम दोनों उस जंगल के बीचोंबीच किसी ऐसी गुफा में पहुँच गये थे जहाँ जीवन की केवल एक ही संज्ञा थी—देह और उसका वह आदिम, खूँखार-सा लालच! उस गुफा में समय का वह टुकड़ा अभी तक सुरक्षित टँगा हुआ था जिसके कारण बाहर की जिन्दगी में हम दोनों के बीच उम्र और वक्त का वह अन्तराल पैदा हो गया था जो अक्सर उन्हें डरा देता था। लेकिन वहाँ, वक्त के उस टुकड़े के नीचे पहुँचते ही एक करिश्मा-सा हुआ था। अदिति सालों पहले की वह लड़की बन गयी थी जो न डरती थी, न रोती थी और न ही जिसकी देह को सिवाय मर्यादा तोड़ने के और कोई संस्कार मालूम था···

—लेकिन तुमसे इतना डर क्यों लगता है मुझे ··, उन्होंने बहुत धीमी आवाज़ में कहा, जैसे अपने-आपसे ही यह सवाल पूछ रही हों।

—इसलिए कि तुम मेरे पास नहीं रहती, मैंने उनका चेहरा उठाकर उनकी आँखों में देखते हुए कहा।

—पास रहूँगी तो नहीं लगेगा? भोलापन उस आवाज़ में अविश्वास के पीछे खड़ा था—सहमा हुआ।

—नहीं, फिर तुम मुझे प्यार करने लगोगी।

—अब नहीं करती?

—नहीं।

उन्होंने मेरा चेहरा झुकाकर अपने होंठों को ढक लिया लेकिन उसके पहले बोली—शर्म नहीं आती तुमको!

कुछ देर बाद अपनी साँसों को सँभालते हुए उन्होंने कहा—थोड़े दिन के लिए सच्ची यहाँ से कहीं और चलो।

—क्यों?

—तुम्हारे पास रहूँगी फिर, माथे पर घिर आये मेरे बालों को सहेजते हुए वे बोली—सारे दिन! फिर नहीं लगेगा डर···

—कहाँ चलने का मन है, बताओ?

—कहीं भी···जहाँ तुम्हारा मन हो। इस घर से दूर कहीं भी चलो। यहाँ हमें अच्छा नहीं लगता, और उन्होंने फिर अपना चेहरा मेरी बाँहों में छुपा लिया।

—अच्छा ठीक है···, मैंने अब पूरी तरह से उन्हें अपनी बाँहों मे छिपाते हुए कहा—लेकिन ये क्या···

—इस घर मे हम अकेले रहे हैं न···, मेरी बात बीच मे ही रह गयी थी और उनकी आवाज शुरू होते ही टूट गयी—शायद इसीलिए इतना डर लगता है···लगता है जैसे ये दीवारे देख नही सकती कि तुम यहाँ हो···तुम जब चले जाते हो तो लगता है अब कभी नही आओगे ··हमे बहुत डर लगता है फिर···

—तुम तो बिल्कुल बुद्धू हो···, मैंने उनका सिर सहलाते हुए कहा—पता नही क्या-क्या सोचती रहती हो। मानती हो नही एक भी बात···

वे उसी तरह लेटी रही। धीरे-धीरे उनके आँसू रुके। वाहर अब अच्छा-खासा उजाला हो गया था। उसका सहारा लेकर मैने उन्हें छेड़ा—अब उठना नही है। दिन निकल आया है!

उन्होने धीरे-से गर्दन उठायी और मेरी तरफ देखने लगी।

—सोना नही है तुम्हें? कुछ देर बाद उन्होंने पूछा।

—नही···अब जाऊँगा मैं, मैंने कहा और मुस्करा पड़ा—तुम्हारी नौकरानी नही तो पुलिस बुला लायेगी अब···समझी?

—इलाज तो तुम्हारा वही है सच्ची···वे मुस्करा पड़ी और उसी बीच उनकी नजरें मेरे कन्धो पर ठहर गयी और हरसिंगार के हजारो फूल शर्मिन्दा-से काँपने लगे उस चेहरे पर—बाप रे···ये क्या हो गया···

मैंने गर्दन मोड़कर देखने की कोशिश की। दोनों कन्धों पर नाखूनों की खराशें-सी थी। मुझे हँसी आ गयी—अब तो सोचता हूँ मैं खुद ही चला जाऊँ पुलिस स्टेशन!

—बुरी तरह से शरमाते हुए वे मुझसे चिपट गयी—आई एम सॉरी···ओह आदित्य···ओह नो···, उनके होंठ उन निशानो से माफी-सी माँगने लगे।

नौकरानी के जागने से पहले ही मैं वहाँ से चला आया। कम्पनी गैस्ट हाऊस आकर मैंने चाय मँगवायी और उस दिन के बारे मे सोचने लगा जो अब पूरी तरह उग आया था और अजगर की तरह सामने फैला था। टूर से वापिस आकर कम-से-कम मुझे दो-तीन दिन चाहिए थे अपने काम को समेटने के लिए। उसके बाद मैं छुट्टी ले सकता था। छुट्टी मिलने मे अलबत्ता कोई दिक्कत नही थी क्योकि जब से मैं कम्पनी मे आया था मैने सिवाय रवि के न रहने पर कभी कोई छुट्टी नही ली थी। यहाँ तक कि जनरल मैनेजर तो इसके बारे मे अक्सर मुझसे मजाक करते थे—मेरी समझ में नही आता कि तुम कैसे बैचलर (अविवाहित) हो, न पार्टीज, न डेट्स, और न कोई छुट्टी···अगर छुट्टी के दिन यहाँ ऑफिस मे ताला न हो तो तुम शायद उस रोज भी अपने डैस्क पर बैठे मिलो। बाइ टैन यू···यू आर अ डैविल! (मैं कहता हूँ कि तुम तो शैतान हो।) ऑफिस जाकर मैंने तीन दिन बाद से एक महीने की छुट्टी की दरख्वास्त दे दी। छुट्टी का फार्म भरते हुए ही मुझे पता चला कि परसो ही दशहरा था और उसके लगभग बीस दिन बाद दीपावली भी पड़ने

वाली थी। इस स्थिति ने छुट्टी का मामला और भी आसान कर दिया। जनरल मैनेजर के पास जब मैं फार्म लेकर पहुँचा तो वे हँसने लगे—लॉंग लास्ट (आखिरकार) तुम्हें अक्ल आ ही गयी! अगर जरूरत हो तो महीने-भर के अलावा एक हफ्ते की छुट्टी तुम कम्पनी के एक्सपेन्स (खर्च खाता) पर मना सकते हो। इट्स अ गिफ्ट फ्रॉम द कम्पनी! (यह कम्पनी की तरफ से एक तोहफा है!)

अपने चैम्बर में वापिस आकर मैंने कम्पनी के ट्रैवल एजेन्ट को नैनीताल में किसी प्राइवेट बँगले को महीने-भर के लिए किराये पर लेने और अन्य जरूरी इन्तजाम के लिए फोन किया और उसके बाद अपने टूर की रिपोर्ट तैयार करने में लग गया। टाइपिस्ट के बुलाने से पहले मैंने फोन उठाकर अदिति के क्लीनिक का नम्बर घुमाया—फोन उन्होंने ही उठाया और मेरी आवाज सुनते ही वे बोलीं—कहाँ से बोल रहे हो?

—ऑफिस से।

—वैरी गुड···इट्स लाइक अ गुड बॉय! (यह हुई न अच्छे बच्चे वाली बात!)

—ये तो कम्पनी के नौकर वाली बात है···, मैंने हँसते हुए अंग्रेजी में कहा—अच्छे बच्चे वाली बात यह है कि दशहरे के एक दिन बाद हम लोग नैनीताल जा रहे हैं।

—सच्ची? उन्होंने उतावली से पूछा।

—बिल्कुल सच्ची ··तुम अपना काम समेटकर आर्गनाइज कर (सहेज) लो। इसीलिए फोन किया था।

कुछ क्षणों तक वे चुप रहीं। फिर धीरे-से कहा—थैंक्यू आदित्य!

—और तैयारी भी कर लो अब!

—कितने दिन रहेंगे वहाँ?

—पाँच हफ्ते। इसमें एक हफ्ता कम्पनी की तरफ से है। मैं हँसा।

—बाबा रेएएए···पाँच हफ्ते···कैसे होगा ··क्लीनिक तो बन्द हो जायेगा फिर···

—अब ये मुझे नहीं मालूम···, मैंने कहा···बन्द-वन्द नहीं होगा, ठीक से प्लान कर लो अभी तो टाइम है।

—अच्छा ठीक है, उन्होंने निश्चय के साथ कहा और फिर कुछ रुककर बोलीं—शाम को आओगे?

—अभी तो कुछ कहना मुश्किल है···

—नहीं···आ जाना। खाना साथ खायेंगे।

—ठीक है, और मैंने फोन रख दिया।

टाइपिस्ट के चैम्बर में दाखिल होते ही फिर सबकुछ बदल गया और शाम तक कुछ पता ही नहीं चला।

ऑफिस से जब मैंने घर आना चाहा तो याद आया कि उस वक्त तो रामलीला

की सवारी निकल रही होगी और घर पहुँचना लगभग असम्भव होगा। आखिरकार मैंने यही तय किया कि अदिति के यहाँ से लौटकर ही घर जाऊँगा।

दरअसल जब मैं टूर पर जाता था तो अम्माँ और बाबा को बहुत फ़िक्र हो जाती थी और इसलिए वापिस लौटकर एक बार उन्हें तसल्ली जरूर देनी पड़ती थी कि मैं सही सलामत टूर से वापिस लौट आया हूँ। रात को जब मैं घर पहुँचा तो बाबा शतरंज खेलने गये हुए थे और अम्माँ रामलीला को रामलीला मैदान से लौटनेवाली रात की सवारी देखने कम्मो के घर जाने की तैयारी कर रही थी। मुझे देखकर उन्होंने खुश होकर कहा—अच्छा किया जो लौट आया आज। रामनौमी है आज···चल तू भी देख ले सवारी आज···देवी मैया फिर बहुत अच्छी बहू लायेंगी घर मे···

मैंने हंसते हुए उन्हें चिढ़ाया—दुर्गा देवी बहू-बहू नहीं लाती अम्माँ···वो तो तलवार-बाजी करती हैं बस।

—राम राम—बेटा···कैसी बातें करता है रे—हैं ऐंएए···? तभी तो नही होती तेरी शादी! उन्होंने देवी मैया के डर से सहमकर कहा।

—अच्छा तुम जाओ, मैंने बात बदलते हुए कहा—मैं नीचे जाकर देखूँगा सवारी।

—अच्छा, और खाना खा लिया कि नही?

—हाँ, खा लिया···

घर में ताला डालकर मैं नीचे चौराहे पर आ गया जहाँ बेशुमार भीड़ थी। अनायास ही मेरे पाँव चौराहे के बीचोबीच बने एक छोटे-से पार्क की तरफ बढ़ गये जिसकी चारदीवारी पर अब बाकायदा लोहे की ग्रिल लग गयी थी।

स्कूल के दिनों में मैं और रवि सवारी आने से पहले इसी पार्क की मुंडेर पर बैठ जाया करते थे।

यह पहला दशहरा होगा जब रवि नही होगा···, मैंने सोचा—और वह दशहरा···जो वह मनाना चाहता था·· वह अब कभी नही आयेगा। अच्छाई की बुराई पर विजय भी किस्से-कहानियों के लिए ही अच्छा मसाला है। हार और जीत के इतने बड़े-बड़े दाँव होते हैं उन कहानी-किस्सों में कि एक मामूली आदमी यह तक भूल जाता है कि उसकी अपनी लावारिस जिन्दगी में न तो कुछ दाँव पर लगाने के लिए ही है और न कुछ जीतने के लिए। वह न तो कहीं से निष्कासित होता है और न ही किसी को उसके लौटने का इन्तजार कहीं होता है। वह तो जीवन-भर एक बनवास में रहता है और उसकी खबर पेड़-पौधों और जंगली जानवरों को हो तो हो, दुनिया को उससे कुछ लेना-देना नही होता। बहुत हुआ तो कोई रवि की तरह होता है···जो अनाथालय से भागा था और समुद्र में डूब गया। और उसके साथ ही डूब गयीं सारी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ—आपस में ही एक-दूसरे से ही लड़ती हुई। कितनी तैयारियाँ की थी उसने दशहरा मनाने के लिए! क्या-क्या नहीं जुटाया था उसने, जिसे फिर मैंने एक अनजान आदमी को

बिना नजर डाले ही बेच दिया था। क्या-क्या नहीं किया और जिया था उसने वह सबकुछ जुटाने के लिए। लेकिन और-तो-और, खुद जिन्दगी को भी वह याद नहीं था। यदि होता तो अजान, अजनबी, अनपढ़ और अबूझ लोगों की यह भीड़ अन्धों की तरह रामचन्द्रजी के नाम पर स्कूल के किसी लड़के के पैरों में अपना सिर झुकाकर अपनी किस्मत पर रो नहीं रही होती। जिन्दगी को जब मौका मिलता है वह धोखा ही देती है। अधिकतर तो लोग उसके नाम से ही हर जाते हैं, और रवि जैसा कोई अगर सामने आ भी जाये तो वह उसे समुद्र में डुबो देती है···

वह आदमी जो हर जगह मौजूद है और हर जगह जिन्दगी से लड़ता हुआ मारा जाता है—उसके बारे में कोई कुछ नहीं कहता। साहित्य और कलाओं की रोटी खानेवाले उसकी मौत के सबूत उन सूखी लकड़ियों की तरह ढूँढते हैं जिनसे उनका चूल्हा जल सके। कुछ ऐसे दीवाने होते हैं जो उसकी जिन्दगी की कुछ कतरनें ढूँढ़ लाते हैं और उन्हें मनमाने ढंग से सजा-बसाकर तस्वीरें बनाते हैं और कहानियाँ लिखते हैं। वह पूरी तरतीब, तर्क और दर्शन जिसको खोजते-खोजते एक सही आदमी खत्म हो जाता है, उसकी मौत के बाद कलाकार लोग इतनी बेहिसी से दुनिया के सामने रखते हैं कि उस आदमी को शर्म आने लगती है—जो उसी रास्ते पर चल रहा होता है। वह रास्ता, जिस पर चलकर कोई कहीं नहीं पहुँचता सिवाय उस झोपड़ी के जहाँ श्रीराम रहे थे और जहाँ वह सबकुछ हुआ था जिसे सिवाय श्रीराम के और कोई नहीं झेल सकता।

ढोल-ताशों की दूर बचपन में टँगी वह आवाज नजदीक आती जा रही थी। पुलिस के घुड़सवार जो सवारी के आगे-आगे चलते थे चौराहे तक आ पहुँचे थे और उनसे कुछ पीछे ढोल-ताशेवाले थे। चौराहे की भीड़ सिमट गयी थी। मेरी नजरें सड़क के सामने उस मकान के छज्जे पर टिक गयीं जिसमें कभी कम्मो खड़ी होती थी। बचपन में कितनी ही बार मैंने वहाँ उसके साथ खड़े होकर यह सवारी देखी थी। जब मैं बहुत छोटा था तो कम्मो बीच-बीच में मुझे कोई झाँकी दिखाकर समझाती थी—देख गुड्डू···वो देख···वो रामचन्द्रजी नाव में बैठे हैं, कितनी अच्छी नाव है न! और वो शबरी है, उनको झूठे बेर खिला रही है

—लेकिन झूठे बेर क्यों खिला रही है कम्मो दीदी? मैं पूछता।

—भगवान कोई झूठा-सच्चा थोड़ी मानते हैं, पागल! वह हँसते हुए कहती—जो उनकी पूजा करता है और उनसे प्यार करता है उसका वो झूठा भी खा लेते हैं···

कम्मो अगर होती तो मैं उससे पूछता कि आखिर कौन लोग होते हैं जो भगवान की पूजा करते हैं और उससे प्यार करते हैं, उस पर सबकुछ छोड़कर सिर्फ उसी के भरोसे रहते हैं—वे जो दुःख में जीते हैं या वो जो सुख से रहते हैं?

देर रात तक मैं चौराहे पर खड़ा वह सवारी देखता रहा। रवि भी जैसे मेरे साथ था—चुपचाप सबकुछ देखते हुए। जब आखिर में काठ के सफेद घोड़ोंवाला रामचन्द्रजी का रथ आया तो मैंने देखा कि स्कूल का वही लड़का राम बना

उस झाँकी मे बैठा था। एक क्षण के लिए लगा, जैसे हँस रहा है और हम दोनों स्कूल के दिनों में ही वहाँ खड़े हैं···

अगले दिन दशहरा था—छुट्टी का दिन। पिछली रात ने सचमुच मुझे बहुत पीछे धकेल दिया था—उन दिनों में जहाँ भरपूर जिन्दगी थी, एक दोस्त था, बहुत से साथी, कितनी ही इमारतें, बाजार, दुकानें और लोग। सुबह उठते ही पहली बात जो मेरे दिमाग मे आयी वह यह थी कि कितनी बँधी-कटी-सी हो गयी थी मेरी जिन्दगी अभी से। भीड़ उसमे भी थी लोगो और चीजो की लेकिन मैं उनके बीच नही था, बल्कि अलग था। उस सनसनी से बहुत दूर आ गया था अब मैं जिसके कारण जिन्दगी का भी कलेजा धड़कता रहता है।

नहा-धोकर मैंने नाश्ता किया और फिर घर के कुछ काम निबटाये। उसके बाद मैं पैदल ही घूमने निकल गया। ट्राम चलनी अब कब की बन्द हो चुकी थी। चावड़ी बाजार की दुकानों मे पीतल के चमचमाते हुए बर्तनो की जगह धूल-भरा लोहे का सामान भरा हुआ था। मुझे याद आया कि बचपन मे जब हम लोगो को यह पता चला था कि एक जमाने मे चावडी बाजार तवायफो का बाजार था तो हम लोगों पर महीनों एक बेचैनी बुखार की तरह सवार रही थी यह जानने की कि तवायफ क्या होती है। उस सारे बाजार की इमारतों को हम स्कूल से लौटते हुए गौर से देखा करते थे और अपनी आँखों मे उस जमाने की वह तस्वीर बनाने की कोशिश करते थे जब छज्जों के ऊपर बहुत-सी बनी-ठनी औरतें खड़ी होकर मुस्कराया करती होंगी। अब किसी भी तरह की मुस्कराहट इस बाजार मे नही थी। बस एक-आध पुराने चाट-पकौड़ी के खोम्चेवाले जरूर बचे थे जो मुझे पहचानते थे और उनकी मुस्कान अब दयनीय-सी हो गयी थी।

सारे दिन मैं उसी तरह घूमता रहा—उन सब बाजारो और गलियों मे जहाँ मैं बरसों से नही गया था। रह-रहकर मुझे लगता रहा कि जीवन का यह हिस्सा अब खुद मेरा ही नही रहा था तो कोई दूसरा उसे कैसे समझ सकेगा। सारा फर्क ही शायद जिन्दगी मे इस बात से पड़ता है कि बचपन की वे गलियाँ, चौराहे और दुकानें एक उम्र के बाद इतनी बदल जाती हैं कि फिर किसी को मालूम नही रहता कि कहाँ क्या था। तरह-तरह से फिर हम कोशिश करते है अपने आपको और दूसरों को बताने और समझाने की कि दरअसल हमारा दुःख, गुस्सा या उदासी उस व्यक्ति के कारण नही जो सामने है, वह तो उस खिलौने को लेकर है जो बचपन मे कोई किसी गली के नुक्कड़ पर खड़ा होकर बेचता था···

आज भी, छुट्टी के दिन मेरे कानो मे, दोपहर के खालीपन मे गूँजती कभी-कभी वह घण्टी की आवाज पडती है जो 'बुढ़िया के बाल' बेचनेवाला मोहल्ला-दर-मोहल्ला बजाते हुए गुजर जाता है। कैसी तसल्ली होती है उस आवाज में—लगता है कहीं कुछ नही बदला, कुछ खत्म नही हुआ अभी तक, अभी हम अम्माँ से पैसे लेकर बाहर जायेंगे और बुढ़िया के बालवाले को आवाज देंगे। वह लौट आयेगा और अपने शीशेवाले बक्से मे से गुलाबी रुई जैसे वे गोले हमे दे देगा जिसके कारण

सबकुछ गुलाबी हो जायेगा।

रात को खाना खाते वक्त मैंने अम्माँ को बताया कि मैं सवा महीने के लिए फिर बाहर जानेवाला हूँ। सिवाय झूठ बोलने के मेरे पास कोई चारा नही था—कम्पनी के काम से जाना है! कुछ देर तक अम्माँ कम्पनी को बुरा-भला कहती रही—ऐसी भी क्या कम्पनी हुई जो न हार देखे न त्योहार। दीवाली पर दुनिया घर लौटकर आती है और तू न जाने कहाँ होगा ''ऐसी नौकरी भला किस काम की!

जब उनका गुस्सा कुछ शान्त हुआ तो उन्होंने शादी की बात निकाली—अब लखनऊवालों को भी जवाब देना है बेटा, उनकी कई चिट्ठियाँ आ चुकी हैं। घर मे सयानी लड़की हो तो फिकर भी ठीक ही है। और फिर शादी-ब्याह भी टाइम से ही अच्छा रहता है बेटा!

—अम्माँ अभी नही आया उसका टाइम, मैंने हँसते हुए कहा—जब आयेगा तो अपने-आप हो जायेगी शादी।

—तू साफ-साफ बात क्यों नही करता रे ··, वे झुंझला उठी—नही करनी तो वैसे बता। कोई बात हुई कि दूसरे की लड़की को भी रोके रहे।

—मैंने तो तुमसे तभी कह दिया था कि चिट्ठी लिख दो।

—कितनी तो लिख चुके चिट्ठियाँ तेरे बाबा! जात-बिरादरीवाले तो न जाने अब क्या-क्या कहने लगे है। कान पक गये मेरे तो सुनते-सुनते।

—लेकिन अम्माँ होता क्या है किसी के कुछ कहने से, मैंने समझाते हुए कहा—और तुमसे मैंने कितनी बार कहा है कि जब शादी करनी होगी तो मैं खुद तुमसे कह दूँगा।

—जैसी तेरी मर्जी, और वे चुप हो गयी। और उदास।

सुबह जल्दी ही उठकर मैं कम्पनी गैस्ट हाउस आ गया और सामान वगैरा गाड़ी मे रखकर जब अदिति के यहाँ पहुँचा तो वे पूरी तरह से तैयार होकर बरामदे में ही बैठी हुई थी। सीढ़ियों पर ही उनका सामान रखा था।

—मैं तो सोच रहा था कि अभी सो रही होगी तुम! दैट्स राटर स्मार्ट! *(बड़ी फुर्ती दिखायी तुमने तो!)*

—तुम तो दस बजे आनेवाले थे···, उन्होंने मुस्कराते हुए अपनी कलाई पर बँधी घड़ी को देखते हुए कहा—अभी तो बस नौ बजे हैं! खैर चलो, नाश्ता कर लो पहले और गाडी खोल दो तो माली सामान रख देगा।

दिल्ली से निकलते-निकलते दस बज गये थे। जैसे ही शहर पीछे छूटा वे हँसने लगी—मैं सोच रही थी कि अगर तुम्हारे जनरल मैनेजर कही मिल जाते तो नौकरी से ही छुट्टी मिल जाती तुम्हे! है न?

—बहुत ही अच्छा होता तब तो, मैं मुस्कराया।

—क्यों?

—फिर वापिस आने की जरूरत नही होती···वही रहते!

—और मैं?

—तुम भी। मैंने उनकी तरफ देखा—नहीं?

—और करते क्या वहाँ पर?

—तुम एक छोटा-सा क्लीनिक खोल सकती थी वहाँ पर!

—और तुम?

—मैं बच्चों का एक स्कूल चलाता।

वे चुप हो गयी। कुछ देर बाद उन्होंने अपना सिर सीट के पिछले हिस्से पर टिका लिया और आँखे मूँद ली।

—एक बार तुम पहले भी कह चुके हो···तुम्हे क्या सचमुच पसन्द नही है अपनी ये नौकरी? कुछ देर बाद उन्होंने पूछा।

—नहीं! मुझे खुद आश्चर्य हुआ जितने दो-टूक ढग से मैंने जवाब दिया। उन्होंने एक लम्बी साँस छोडी और उसी तरह बैठी रही।

मैंने टेप रिकॉर्डर पर एरॉल गार्नर का कैसेट लगा दिया और प्यानो के अलसाये-से स्वर उभर आये।

रास्ता फिर यूँ ही कटा। रह-रहकर वे मुझसे ऐसे सवाल पूछती जिनके बारे में मैंने खुद कभी संजीदगी से नही सोचा था लेकिन उनका बहुत ही साफ और निश्चित जवाब मेरे भीतर जैसे दीवारों पर टँगा हुआ था। फिर कुछ देर की चुप्पी छा जाती जिसमे प्यानो या ट्रम्पेट के स्वर हम दोनो को कुछ और याद दिला देते—वह जिसके बारे मे न तो कोई अनिश्चय ही था और न ही कोई संशय। फिर सहसा चिड़ियों-सी चहचहाने लगती उनकी आवाज मे और हँसी चिड़ियो के छोटे-छोटे बच्चो की तरह, जिन्हे उड़ना भी नही आता, आसपास फुदकने लगती। रामगढ़ पार करते-करते दोपहर ढल चुकी थी। पहाडी जंगल के बीच उन्होंने कई बार गाड़ी रुकवायी—कभी कुछ फूल तोड़ने के लिए, कभी किसी परिन्दे को देखने के लिए और कभी अपने बेआवाज होठों से मुझसे कुछ कहने के लिए।

नैनीताल पहुँचते-पहुँचते रात हो गयी थी। मुझे लगा कि रात होटल में ही बिताना ठीक होगा। सुबह उठकर उस बँगले और दूसरी चीजों की खैर-खबर लेंगे। होटल के रजिस्टर मे जब मैंने मिस्टर एण्ड मिसेस ए. कुमार लिखा तो काउण्टर पर खड़े बुजुर्ग-से क्लर्क ने एक नामालूम-सी नजर अदिति पर डाली और बेहद अदब से पूछा—कब तक रहियेगा, सर? मैंने उसे सारी बात बतायी जिसे सुनकर उसके चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी—बहुत कम लोग जानते हैं सर पहाड़ों का यह मौसम। आप खुशनसीब हैं!

नहा-धोकर अदिति ने अपने लिए चाय मँगवायी और मैंने ब्राण्डी। थकान जितनी थी उतनी अब नहाने के बाद महसूस नही हो रही थी। अदिति अपनी चाय खत्म करने के बाद लेट गयी थी। मैंने एक कुर्सी काँच की खिड़की के पास डाल ली और नीचे दूर तक फैले अँधेरे में टिमटिमाती बत्तियो को देखने लगा।

नैनीताल मैं कई बार आ चुका था। कॉलिज के दिनों मे तो टूरिस्ट ग्रुप्स लेकर मैं अक्सर यहाँ आता था। लेकिन इस मौसम मे पहली बार आया था और सब-

कुछ इतना बदला हुआ था कि विश्वास ही नही हो रहा था। टॉल नाके पर हालांकि कोई नही था फिर भी मैंने गाडी रोककर कई बार हॉर्न बजाया। जब कोई नहीं आया तो मै आगे बढ गया था। बस-स्टैण्ड पर कुछ लोग जरूर आये थे लेकिन अभी आठ भी नही बजे थे और चारो तरफ का सन्नाटा गूंज-सा रहा था। वह सारी भीड़-भाड और चीखो-पुकार कितना बदसूरत बना देती थी इस शहर को, इसका अहसास अब मुझे पहली बार हुआ।

कुछ देर बाद आँखे बाहर फैले अँधेरे मे भी धीरे-धीरे जगहो को पहचानने लगी। हल्की चाँदनी की एक महीन-सी चादर झील के ऊपर फैली हुई थी। बोट हाउस क्लब के पास पासवाली नावो की आकृतियाँ उभर आयी। फिर झील के दूसरी तरफ कुछ ऊँचाई पर 'शेरवुड' की टिमटिमाती हुई बत्तियाँ···

—थक गये न ··, उन्होने मेरे पीछे आकर बालों को सहलाते हुए पूछा।

—थोड़ा···, मैंने गर्दन पीछे टिकाकर उनकी तरफ देखा—लेकिन अच्छा लग रहा है। आराम हो गया ?

—हाँआँ···

—बाहर चलें···?

—सर्दी होगी न बहुत ?

—हाँ, सर्दी तो अच्छी होगी ! मैं मुस्कराया।

—तुमने तो ब्राण्डी पी ली न, इसलिए मुस्करा रहे हो !

—होटल की तरफ से औरतों के ब्राण्डी पीने पर भी कोई पाबन्दी नही है !

मेरी बात सुनकर वे मेरे ऊपर झुक आयी और बोली—उनको अगर पता चल जाये न कि मामला क्या है तो सारे कायदे-कानून पता चल जायेंगे तुम्हे ! चलो उठो अब ··

होटल से बाहर निकलते ही उस बर्फीली सर्दी ने झकझोर-सा दिया। हल्की-सी धुन्ध छा गयी थी और दूर तक सन्नाटा था। सड़क पर अपने ही कदमों की आवाज रह-रहकर चौका देती थी।

—बाबा रेएएए···कितनी सर्दी है ! कुछ दूर आकर वे सिहरते हुए बोलीं और इसके पहले कि मैं कुछ कह पाता वो छोटे-छोटे कदमों से दौड़ने लगी।

मैं उसी रफ्तार से चलते हुए उन्हे अपने आगे दौडता देखता रहा। जॉकी कैप लगाये, काली फर की जरकिन और पैण्ट पहने वे किसी स्कूल के बच्चे की तरह दौड़ती जा रही थी—अपने आप मे मगन।

सुनसान रात, सूनी सड़क—और शर्माती हुई-सी वह कमजोर धुन्ध सब एक-टक देखती खडी थी उन्हे। और मैं उन सबकी खामोश धड़कनों को सुनता उस आकृति की तरफ बढता जा रहा था जो बीते हुए वक्त की गिरफ्त से आखिरकार आजाद हो गयी थी। वीरान अकेलेपन का जैसे कोई श्राप खत्म हो गया। रात का वह निर्जन सन्नाटा उन दौडते कदमो की आहट से जाग उठा था और अपनी उनींदी आँखें मलते हुए अवाक्-सा बैठा था, मानो उसे यकीन ही नहीं आ रहा हो कि यह

सपना नहीं था···

दूर हो गयी वह आकृति फिर पास आने लगी। कुछ ही क्षणों बाद वे हांफती हुई आकर मुझसे चिपट गयीं···ओह···आदित्य···माइ गॉड···इट्स इन्क्रेडिबल ···वॉट हैव यू डन टु मी···ओह गॉड···(हे भगवान···यकीन नहीं आता··· क्या कर दिया है तुमने मुझ मे···हे भगवान!)

मैंने कुछ नहीं कहा। बेचैनी से हाँफते हुए दो कबूतर बार-बार मेरे सीने से चिपक जाते थे और वे असहाय खड़ी थीं उनकी जिद के सामने।

जब वे साँसें कुछ थमीं तो मैंने वह चेहरा अपने हाथों मे लेकर कहा—जिद्दी तुम हो···मैं नहीं! समझी?

—हांऑऑ···तुम ठीक कहते हो···, उन आँखों ने जवाब दिया।

—लेकिन अब मत करना वैसी जिद कभी···अच्छा?

—नहीं···अब नहीं कर सकती···, वे होंठ कुछ और कहना चाहते थे और अपनी उतावली मे उन्होंने आवाज को पीछे ही छोड दिया।

—और अब रोना भी मत कभी!

उन्होंने अपनी गर्दन हिलायी—नहीं···, और फिर मेरी गर्दन मे अपनी बाँहें डालकर वे झूल-सी गयीं—नहीं आदित्य···अब कुछ नहीं होगा मुझे—अब तो मैं हार गयी···अपने आप से ही···तुम ठीक कहते थे···तुम सबकुछ ठीक कहते हो···

ऊपर लटकती हुई वीपिंग विलो की डालियाँ सबकुछ चुपचाप सुन रही थीं। बिना किसी अचरज के—जैसे यही तो एक सच था दुनिया में ··

जब हम होटल वापिस पहुँचे तो साढ़े बारह बजे थे। इतनी देर तक बाहर सर्दी में रहने के कारण अदिति का चेहरा पहाड़ी लड़कियों की तरह हो गया था।

—कॉफी मँगवा लें? मेरी तो सर्दी ही नहीं छूट रही···, उन्होंने रजाई में घुसते हुए कहा—खाना तो अब मिलने से रहा।

कॉफी के साथ मैंने थोड़ी ब्राण्डी भी उन्हें दी। उससे उनकी हालत कुछ सँभली। कॉफी खत्म करने के बाद वे उठीं और मुस्कराते हुए बोलीं—अब नहीं लग रही सर्दी···तुम चाहो तो अब शरीफ आदमियों की तरह दूसरे कमरे मे सो सकते हो···फॉर ए चेन्ज! (बदलाव के लिए!)

मैंने बनावटी गुस्से से उनकी तरफ देखा। वे उसी तरह हँसती रहीं और उसके बाद—वह हँसी रात-भर किसी झरने की तरह बहती रही मेरे आसपास—सुबह जब आँख खुली तो नौ बज रहे थे। अदिति बेहोश सो रही थीं। मैंने आहिस्ता से उनकी बाँहों को अलग किया और उन्हें ठीक से रजाई ओढ़ाकर बाहर निकलने की तैयारी करने लगा। नहा-धोकर जब मैं निकला तब तक भी उनकी नींद नहीं खुली थी। एक नोट लिखकर मैंने उनके सिरहाने रख दिया और कमरे से बाहर आ गया।

वह बँगला ढूँढने में जरा भी दिक्कत नहीं हुई। पहाड़ी पर थोड़ा चढ़कर ही वह एक छोटी-सी बहुत खूबसूरत कॉटेज थी जिसमें जरूरत की लगभग सभी चीजें

मौजूद थी। एक चौकीदार और उसकी औरत भी थी। वे दोनों ही यह जानकर बहुत खुश हुए कि 'मेमसाब' भी मेरे साथ थीं। उन्हें मैंने रसोई को शुरू करने की हिदायतें दीं और जरूरी सामान के लिए कुछ पैसे देकर वापिस होटल आ गया।

अदिति भी तब तक नहा-धोकर तैयार हो चुकी थी और सामान पैक कर रही थी। मुझे देखते ही उन्होंने पूछा---मिला कुछ अता-पता ?

---अता-पता तो था ही, नौकर-नौकरानी का भी इन्तजाम हो गया। सब्जी-मसाले वगैरा लेने भेज दिया है। अब चलो और कुछ खाना वगैरा पकाओ चल के···, मैंने हँसते हुए कहा।

---अच्छा···? उन्होंने आँखें घुमाकर मेरी तरफ देखा और फिर हँसने लगी---दूसरे दिन से ही ये हाल है! ना बाबा इससे तो मैं होटल में ही भली···तुम जाओ और उस नौकरानी से पकवाकर खा लो···फिर आ जाना यहाँ।

---ठीक है, मैं मुस्कराया---लेकिन देखने में भी बुरी नहीं है वो नौकरानी!

---तो जाओ न···कहो उसी से ये बात जाकर···तुम्हें ही पकाकर खिला देगी अपने आदमी को···, मेरे पास आकर अपनी छोटी-छोटी हथेलियों को बाँध कर, मेरे सीने पर उन्हें मारती हुई वे मुस्करायीं---यू सैक्स फीण्ड···डैड विल सर्व यू राइट! (कामुक राक्षस कहीं के··· फिर तुम्हारी अक्ल ठिकाने आ जायेगी!)

उन बँधी हथेलियों को मैंने अपने हाथों में भींच लिया---इसीलिए कह रहा था कि इतनी ब्राण्डी मत पियो, अभी तक नशा नहीं उतरा तुम्हारा। सर्दी दूर करने के और भी कई तरीके होते हैं!

---वो भी अब मालूम हो गये हैं···, उन्होंने अपना चेहरा मेरे सीने पर टिका लिया, लेकिन वह आवाज अभी तक शरारत में डूबी थी---और उनमें से किसी की भी आजमाइश नहीं होगी अब···बेशर्म कहीं के! यू आर सच अ रास्कल···! (इतने पाजी हो तुम!)

होटल से सामान वगैरा लेकर जब हम लोग कॉटेज पर पहुँचे तो वह चौकीदार और उसकी औरत हम लोगों का बाकायदा इन्तजार कर रहे थे। अदिति तो दूर से ही कॉटेज देखकर खुशी से चिल्लाने लगीं---गुड हैवन्स! वॉट अ ड्रीम, गुड्डू। इट्स सिम्पली ब्यूटीफुल! (हाय रे---बिल्कुल सपना है ये तो, गुड्डू! सच्ची बहुत ही सुन्दर है ये तो!)

चौकीदार की उस औरत को देखकर वे मुस्करा पड़ीं और फिर उसके पास जाकर उसे निहारते हुए उससे बोलीं---बाबा रे, कितनी सुन्दर हो तुम! क्या नाम है तुम्हारा ?

---दुर्गा···, उसने शरमाते हुए कहा।

---बिल्कुल देवी जैसी लगती हो तुम तो···सच्ची! पिघलती-सी आवाज में उन्होंने कहा और फिर उसे अपने गले से लगाती हुई बोलीं---दुर्गा, हम लोग थोड़े दिन तुम्हारे पास रहेंगे···ठीक है न!

---हाँ मेमसाब···हम तो कई दिन से आपकी राह देख रहे थे। साब की

खबर आ गयी थी न पहले ही। अच्छा हुआ जो आप भी साथ आ गयीं, उसने ऐसे कहा जैसे अदिति से उसकी बरसों पुरानी पहचान हो।

अन्दर आकर उसने अदिति को सारा घर दिखाया और फिर बोली—आप अब कमरे में चलो'''मैं चाय लेकर आती हूँ।

चौकीदार तब तक गाड़ी से सामान भी ले आया था। उसे वह सब सामान खोलने और जमाने की हिदायतें देकर मैं बाहरवाले कमरे में आया जहाँ अदिति खिड़की के पास खड़ी नीचे शहर की तरफ देख रही थी।

—अच्छा है न घर? मैंने उनके पीछे खड़े होकर अपनी बाँहों में उन्हें घेरते हुए पूछा।

क्षण-भर के लिए वे अपनी देह ढीली छोड़कर चुपचाप खड़ी रहीं। उसके बाद उन्होंने आँखें मूँद कर कहा—कहाँ से ढूँढ लिया तुमने ये घर'''हैंए? सच, इसीलिए तो डर लगता है तुमसे इतना''', बहुत महीन-सी आवाज थी वह—लेकिन टूटती हुई नहीं, बल्कि बाँधती हुई-सी।

—डरने की क्या बात है इसमें? मैंने उनकी बाँहों को सहलाते हुए कहा और फिर उस धुन्ध में से उन्हें उबारने के लिए मैं हँस पड़ा—मुझे तो सच वहाँ होटल में डर लग रहा था। वाकई अगर उन्हें पता चल जाता कि मामला क्या है तो शामत आ जाती।

—अच्छा अब हटो, नहीं तो यहाँ भी शामत आ जायेगी, वे भी हँसने लगीं और मुझसे अलग होते हुए दबी आवाज में बोलीं—नौकरानी आ रही है!

हम लोगों को चाय देते हुए उस नौकरानी ने बताया कि सब्जी व और चीजें आ गयी थीं। अदिति ने उसे दिन के खाने वगैरा के बारे में बताया और फिर तरह-तरह की और बातें उससे करने लगीं। उस बीच मैं दूसरे कमरे में आकर चौकीदार से सामान ठीक-ठाक करवाने लगा। चाय पीकर हम दोनों बाजार की तरफ निकल गये।

अनायास ही वह जिन्दगी शुरू हो गयी थी जिसके बारे में किसी ने सोचा भी नहीं था। अब सोचता हूँ उन दिनों के बारे में तो लगता है किन्हीं और लोगों के बारे में सोच रहा हूँ। खुद अपने आपको पहचानना मुश्किल है उन तस्वीरों में और जिस पर अदिति तो उन दिनों इतनी बदल गयी थीं कि रह-रहकर मुझे लगता कि मैं किसी अजनबी के साथ हूँ—एक ऐसा जादू-भरा अजनबी जो पलक झपकते ही न सिर्फ खुद बदल जाता था बल्कि सबकुछ बदल देता था। यहाँ तक कि वह झील, पहाड़ियाँ और उन पर ठिठके खड़े वे ऊँचे-ऊँचे दरख्त तक उस अजनबी की आवाज, हँसी और साँसों के सामने बेबस-से हो जाते थे।

कितनी ही तस्वीरें हैं और बार-बार देखता हूँ मैं उन्हें लेकिन अब यकीन नहीं होता कि वह मैं था और वे अदिति ही थीं—सुबह जब आँख खुलती तो अक्सर वे जाग चुकी होती थीं। न जाने क्या देखती रहती थीं वे आँखें मेरे चेहरे पर। जैसे ही हम दोनों की नजरें मिलतीं वे चौंक-सी जातीं और फिर अपने उस चौंक पड़ने को

एक फीकी मुस्कराहट से ढँक लेती—कितनी गहरी नींद सोते हो तुम ! और फिर अपने होंठ मेरे ऊपर झुकाकर पूछती—चाय बनवायें ? या और सोना है अभी ?

—न सोना है, न चाय पीनी है···, मुस्कराते हुए मैं उन्हें अपने ऊपर खींच लेता। उस वक्त वे अदिति ही होती थी जिन्हें मैं अब काफी जानने और समझने लगा था—नाश्ता करके हम लोग झील पर चले जाते। उन्हें पाल वाली नाव में बैठने में डर लगता था इसलिए वे चप्पूवाली एक छोटी नाव ले लेती और मैं बोट क्लब के आदमी के साथ यॉट लेकर निकल जाता। कभी-कभी उन्हें छेड़ने के लिए मैं यॉट को उनकी नाव के बहुत पास से ले जाता और वे घबराहट और डर के मारे चीखने लगती। मैं हँसता रहता। उस छोटी-सी नाव में अकेली बैठी वे किसी ऐसी लड़की की तरह लगती जिसके अकेलेपन में फूल-ही-फूल खिलते हैं और उनकी महक उसे महव कर देती है···

जिस सुबह हम लोग घुड़सवारी के लिए निकलते उनके भीतर सोयी हुई वह लड़की जाग जाती जिसे कोई डर नहीं लगता था—न अपने आप से, न मुझ से और न मौत से। राइडिंग उन्हें बहुत अच्छी आती थी और हम दोनों तब तक पागलों की तरह एक-दूसरे को छेड़ते हुए पहाड़ी जंगलों में भटकते रहते जब तक कि घोड़ों के मुँह झाग से भर नहीं जाते। एक सुबह एक ऐसी बात हुई कि मुझे लगा कि उनके भीतर अभी तक कुछ चीजें ऐसी थी जिनमें बेहिसाब गाँठें थी। तसल्ली बस यही थी कि वे सचमुच पूरी कोशिश कर रही थी उन गाँठों को खोलने की। हम लोग चाइना पीक से लौट रहे थे। काफी सर्दी थी उस सुबह और हम लोग मुँह अँधेरे ही कॉटेज से चल दिये थे। चलते वक्त ही मुझे लगा था कि वे कुछ उदास थी। अलबत्ता चाइना पीक पहुँचते-पहुँचते उस उदासी की जगह एक अजीब-सी दीवानगी, एक बिल्कुल ही बेमेल-सी आक्रामकता उनके वजूद पर छा गयी थी। घोड़ों को थोड़ा आराम देने की खातिर हम लोग जंगल में रुक गये थे। एक दरख्त के नीचे वे मेरी गोद में सिर रखे लेटी हुई थी। अचानक उन्होंने पूछा—उस रात क्या हुआ था जब तुम गैस्टहाउस के सामने फुटपाथ पर बैठे हुए थे ?

एकबारगी तो मैं उनका यह सवाल और उसका सन्दर्भ समझ ही नहीं पाया। जब समझा तो लगा कि उस बारे में बातचीत न करना ही बेहतर होगा, उनकी मनःस्थिति को देखते हुए।

—कुछ नहीं ··क्यों ? मैंने मुस्कराते हुए पूछा—उसकी याद कहाँ से आ गयी तुम्हें ?

—नहीं बताओ मुझे ! क्या हुआ था ? उनकी आवाज में एक ऐसी जिद थी जिसे बहलाया नहीं जा सकता था।

मैंने धीरे-धीरे उस शाम की सब बातें उन्हें बतायी। वे चुपचाप मेरे चेहरे पर अपनी आँखें जमाये सब सुनती रही।

जब मैं चुप हो गया तो वे आहिस्ता से उठकर मेरे सामने बैठ गयी और बोली—अगर मैं उस रात तुम्हें जगा लेती, तो भी तुम मुझसे बात नहीं करते ?

—जगाया कहाँ लेकिन तुमने? मैं मुस्करा पड़ा।

वे चुपचाप मेरी आँखो मे देखती रही और फिर धीरे-धीरे वे होठ मेरी तरफ झुकते गये। सालों पहले की उस रात से लगातार भागती हुई वे साँसें अब मुझ तक पहुँची थी। बुरी तरह से हाँफती हुई उस बेदम आवाज ने मुझसे कहा—लव मी ···नाउ एण्ड हियर···ओह् आदित्य···लव मी और किल मी···(मुझे प्यार करो ···अभी और यही···ओह् आदित्य ··या तो मुझे प्यार करो या खत्म कर दो···)

मन तो क्या, हम शायद किसी दूसरे की देह तक को नही जान पाते अक्सर। जिन्दगी बीत जाती है और हर गुजरता दिन रेत की एक तह डाल देता है देह पर। और वह आँधी हमेशा नही आती जो उस परत-दर-परत रेत को कही उडाकर फेंक दे। उस सुबह को आँधी आयी थी उस जगल में। या कोई ज्वालामुखी फट गया था। देर तक सबकुछ काँपता रहा था···

दोपहर का कुछ हिस्सा हम लोग कॉटेज में ही बिताते थे। वे मेरे पास लेटी कुछ पढती रहती या मेरे सीने पर अपना सिर टिकाये चुपचाप पडी रहती – किसी ऐसी औरत की तरह जो नही जानती कि समझदारी और नासमझी मे से उसे क्या चुनना चाहिए।

दिन के तीसरे पहर हम लोग शहर और बाजार घूमने निकलते। पक्की गृहस्थिन की तरह वे छोटी-मोटी खरीदारी करती, मेरी फिजूलखर्चीं पर रह-रहकर मुझे टोकती रहती और एक बिल्कुल घरेलू औरत की तरह मुझे तरह-तरह के थैले और चीजें पकड़ाकर बीच बाजार मे पूछती—वो अरहर की दाल उठा ली थी न उस दुकान से?

शाम का खाना वे खुद बनाती थी। उस दौरान मैं ब्राण्डी लेकर बाहर बरामदे में बैठा रहता और प्यानो या ट्रम्पैट के स्वर मुझसे न जाने क्या-क्या पूछते रहते···

खाने के बाद हम लोग फिर झील के किनारे आ जाते। रात बेचैन होती हम दोनों की बातें सुनने के लिए। वे बातें जो हम खुद एक-दूसरे से पहली बार करते थे—बहुत धीमी लेकिन मचलती हुई आवाज मे। कई बार वे खामोश रहती उन क्षणों मे···किसी देवी की तरह जो सिर्फ वरदान देने के लिए ही कुछ बोलती है, वर्ना उसे मालूम होता है कि उसकी तो बस एक मूर्ति ही काफी है—मन्दिर, पूजा और पुजारी के लिए···

देर रात को हम कॉटेज वापिस लौटते। उन आँखों मे उस वक्त एक सवेरा-सा उग रहा होता। तपती हुई वह लाल सुर्खी तब तक दहकती रहती जब तक कि उन सर्द, अंधेरी रातों में सबकुछ दिन की सफेद, चमकीली रोशनी की तरह सच नही लगने लगता। रात का वह पिछला पहर उन्हें फिर शर्मिन्दा-सा होकर देखता रहता क्योंकि अपनी हुकूमत के दौरान उसने बहुत ज्यादती की थी उस लड़की के साथ जिसे हर रोज अपनी जिन्दगी जीने और उसके तहत सबकुछ साबित करने के लिए चौबीस में से सिर्फ आठ घण्टे मिलते थे—वे आठ घण्टे जिसमें न वह बारिश देखती थी, न गर्मी, न सर्दी, न तूफान, न भूचाल। बस एक दुकान या

दफ्तर की तरह खुलती और बन्द होती रही थी वह जिन्दगी जो अब रात के इस पिछले पहर तक न सिर्फ रोशन ही रहती थी बल्कि रात को उससे एक खौफ-सा रहता था—आग लगने का !

—अब भी नींद नहीं आ रही ? बहुत रात गये वे मुझसे पूछतीं।

—नहीं···

— तुम्हारा मन नहीं भरता मुझसे ?

— नहीं···

—ये भी नहीं सोचते कि इसका अन्त कहाँ होगा ?

—नहीं···

—मालूम है कितने दिन हो गये हम लोगों को इस तरह···?

—नहीं···

—वापिस चलने का भी ध्यान नहीं है ?

—नहीं···

—तुम समझते हो कि तुम दुनिया से लड़ सकते हो ?

—नहीं···

—फिर···? खत्म नहीं हो जायेगा ये सब···

—नहीं···

—तुम क्या समझते हो···कि जिन्दगी-भर ये सब ऐसा ही रहेगा ?

—नहीं···

—फिर ?

—फिर क्या ?

—फिर क्यों जिद है तुम्हें···कि हम तुम्हारे साथ रहें ?

और अचानक उनकी सिसकियों ने सबकुछ बहा दिया। मैं जो कि लगभग भूल ही गया था कि वे बहुत रोती हैं एकाएक ठगा-सा रह गया। और उस रात उनका वह रोना··

दिवाली की रात थी वह। सारे दिन वे तरह-तरह के इन्तजामों में लगी रही थीं। बाजार से मेरे साथ वे बहुत सारे दिये खरीदकर लायी थीं जिनमें से कई अभी तक खिड़की के बाहर जल रहे थे।

सुबह से खाने की तैयारियाँ करती रही थीं। जोकुछ भी उन्हें याद आता गया उस त्यौहार के बारे में वह सबकुछ करती गयी थीं वे। जलते हुए दियों का वह थाल जब वे अपने हाथों में लिये मेरे सामने आकर खड़ी हुईं तो मैं उन्हें देखता रह गया था—गहरे प्याजी रंग की जरी के बॉर्डर वाली साड़ी पहने किसी खानदानी बहू की तरह लग रही थीं।

—चलो···दिये रक्खो अब···हर जगह···, उन्होंने जब कहा तो सबसे तेज रोशनी उनकी आँखों में जलती हुई उसी लौ की थी···

लगा था जैसे वे अचानक बिखर गयी थीं। लेकिन यह सच नहीं था। मैं

अच्छी तरह जानता था कि इस सारे दौरान जब मेरी हर जिद उन्हें झुकाती चली गयी थी—वे दरअसल बिखरती गयी थी—बहुत महीन-महीन—आम के बौर की तरह। यूँ ऊपर-ही-ऊपर सबकुछ ठीक रहा था उस सारे दौरान। कहने को हम लोग छुट्टियाँ मना रहे थे लेकिन बिल्कुल भी फुरसत नही मिलती थी हम दोनों को—उन सब बातों और सवालो के बारे मे सोचने की जिनसे उन्हें डर लगता था। मेरा ख्याल था कि धीरे-धीरे वे सब-के-सब सवाल अपने आप ही मिट जायेंगे क्योंकि उनके ऊपर इतने सारे और तरह-तरह के फूल बिखरते जा रहे थे कि सिवाय उनके और कुछ नजर नही आता था। खुशी के उन क्षणो मे वे बिल्कुल आश्वस्त-सी हो जाती थी। लेकिन हर रात मुझे लगता कि वे बिखर रही हैं। हरसिंगार के फूल रात-भर चुपचाप झरते रहते थे। सोते हुए वे कई बार चौंक पड़ती और फिर मुझसे किसी छोटी बच्ची की तरह चिपटकर सो जाती।

जैसे-जैसे लौटने का दिन पास आता गया वे और खामोश होती गयी लेकिन साथ ही उन्होंने अपने आपको बड़े साफ-सुथरे ढंग से बाँध-सा लिया था। एक बिल्कुल ही नये ढंग का संयम उनके व्यक्तित्व में उभर आया था। वह मुझे अच्छा तो बहुत लगा था लेकिन कुछ उलझन-सी भी हुई थी उसे देखकर। चलते वक्त उन्होंने उस नौकरानी को कई कपड़े और मिठाई वगैरा दी और बड़े सहज ढग से उससे हँसती-बोलती रही। मैं सामान इत्यादि गाड़ी मे रखवाने मे व्यस्त रहा। आखिरी बार जब मैं उन कमरों मे गया—यह देखने के लिए कि कोई चीज छूट तो नही गयी, तो पलंग के सिरहाने, चादर के नीचे कुछ हेयर पिन्स और एक किताब थी—'कनुप्रिया'। मैं मुसकरा पड़ा। कई बार इस बीच मैंने उन्हें उस किताब को लेकर छेड़ा था क्योंकि अक्सर उसे पढते-पढ़ते वे कही दूर देखने लगती।

—ऐसा लग रहा है जैसे इम्तहानो की तैयारी कर रही हो तुम, उस सुबह वे झील के किनारे एक बैंच पर बैठी हुई थी—वह किताब अपनी गोद मे खोले और झील के पार देखते हुए। मैं सेलिंग के बाद उनके पास पहुँचा था।

—अच्छा ठीक है, तुम्हें मतलब ? उन्होंने तुनक कर जवाब दिया था।

मैं हँसते-हुए बैंच पर ही उनकी गोद मे सिर रखकर लेट गया था—मालूम है, जब मैं कॉलिज मे था तो लड़कियाँ तो छोड़ो कुछ लड़के भी रोने लगते थे इस किताब की कुछ कविताएँ पढकर, मैंने उन्हें बताया था।

—हाँ, लेकिन तुम उनमें से नही होगे ''आइ एम क्वाइट श्योर (मुझे पूरा विश्वास है) उन्होने मुझे चिढ़ाते हुए कहा था और फिर मेरे ऊपर झुकते हुए बोली थी—यू आर सच अ ब्रूट, यू बिग ऐप! (तुम तो इतने वहशी हो, वनमानुष कहीं के!)

मैंने वह किताब और वे हेयरपिन्स अपने बैग मे डाल ली और बाहर आ गया।

जब हम लोग काठगोदाम के पास आये तो उन्होने धीरे-से मुस्कराकर पूछा—तुमने अपने स्कूल के लिए जगह तो देखी ही नही !

—देखी न, मैंने उनकी तरफ देखकर कहा—तुम्हारे क्लीनिक के लिए भी

देखी एक दुकान !

—तो मुझे बताया क्यों नहीं ?

—इसलिए कि तुमने अभी तक कुछ तय ही नही किया, मैं हँसने लगा—बल्कि मैंने तो तुम्हारे क्लीनिक का नाम तक सोच लिया है !

—क्या ? वे हँसने लगी।

—डेंजीबोन्स क्लीनिक !

7

—नही, नही आपकी बात तो मैं कह ही दूँगी और अपनी तरफ से भी कह दूँगी, मेघना की आवाज थी, हँसती हुई। वह किसी से टेलीफोन पर बात कर रही थी। मैं पिछले दरवाजे से घर में दाखिल होकर सीधे बैडरूम में चला आया।

—अब क्या बतायें, कुछ निकलना ही नही हो पाता। आदित्य असल मे इतनी देर से लौटते हैं आजकल ऑफिस से···फिर कुछ थक भी जाते हैं तो लगता है थोड़ा आराम कर ले ··, लिविंग रूम से आवाज साफ सुनायी दे रही थी।

मैं अपने जूते खोलने लगा और उसके बाद बिस्तर पर आड़ा ही लेट गया।

—हाँआँ · काफी दिन हो गये अब तो। कुछ लिखा ही नही है इधर। कहते हैं कि छूट गया लिखना अब। मैं तो कई बार कहती हूँ कि काम का इतना जोर रहता है तो थोड़े दिन की छुट्टी ले लें। तब शायद मन करे कुछ लिखने का।

—···

—आप तो सचमुच कमाल करती हैं ··, और वह हँसने लगी—अब तो दो साल होने आये हम लोगो की शादी को और इनको तो आप जानती ही हैं ·· अगर बस चले तो अपना बिस्तर भी ऑफिस मे ही लगवा लें।

—···

—बिल्कुल ठीक कह रही है आप···अच्छा तो फिर ठीक है। आइए न आप लोग किसी दिन।

हाँआँ···क्यों नही ! ओके···

हँसते हुए वह बैडरूम मे दाखिल हुई—मिसेज पारीख का फोन था। कह रही थी लगता है आप लोगो का हनीमून अभी खत्म नही हुआ, और फिर बच्चो की तरह खिलखिलाते हुए वह मेरे पास आकर बैठ गयी और शरारत से मेरे बालों को बिखराकर बोली—निकल गया कचूमर !

—अभी तो नही निकला लेकिन अगर मिसेज पारीख के यहाँ चलना है तब

तो भगवान ही मालिक है, मैं मुस्कराया।

—लो ! तुम पर तो बिचारी मरती हैं और तुम्हारा ये हाल है···, मुस्कराते हुए वह मेरे सीने पर सिर टिकाकर लेट गयी और फिर टाई ढीली करके कमीज के बटन खोलने लगी—रिअली आइ थिंक शी हैज अ क्रश ऑन यू, गुड्डू बाबा ! (सच, मुझे लगता है कि उनका दिल तुम पर आ गया है !)

—उनको छोड़ो तुम अपनी बताओ, मैंने उसके बालों को सहलाया—बिना ये सब स्कोर रखे तुम्हें खाना हजम नहीं होता न !

—ध्यान रखना पड़ता है यार , वह हँसने लगी तुम चीज ही ऐसी हो।

—फिर बताऊँ कैसी चीज हूँ मैं ? मैंने धीरे-से उसके गाल पर चपत लगाते हुए कहा—ये तो नहीं कि कुछ चाय-वाय पिला दो। बस आते ही ऊट-पटाग बातें शुरू।

—अरे हांआंआं ··, एकदम से वह उठ बैठी और कमरे से बाहर जाते हुए बोली—मैं तो चॉप्स बना रही थी ··बस दस मिनट ठहर जाओ। तुम इतने चेन्ज कर लो, इतने में सब तैयार हो जायेगा।

मैं मेघना और मिसेज पारीख की बातचीत के बारे में सोचने लगा। सचमुच बहुत दिन हो गये थे मुझे कुछ लिखे हुए। यूँ मैं अपने-आपको दिलासा देता रहा था कि इस बीच नौकरी की जिम्मेदारियों ने मुझे इतना वक्त भी नहीं दिया था कि लिखना तो दूर मैं मेघना को भी ठीक से वक्त दे पाता। लेकिन सच यह है कि लिखने से मेरा मन बिल्कुल ही उचट गया था। कभी खयाल भी आता तो लगता कि जो सब मैं लिखना चाहता हूँ उसे फिर भी जी पाने की या उसका सामना करने की हिम्मत मुझमें अभी नहीं है। और यह भी लगता कि आखिर होगा क्या लिखने से भी। मुझे तो खुद ही समझ में नहीं आयी थी अपनी जिन्दगी की चाल, किसी दूसरे को मैं क्या बताता। लिखने का मतलब था मैं जिन्दगी के उन मुकामों पर वापिस जाकर वह सब ढूँढ़ता जो वहाँ खो गया था और बिखर गया था लेकिन उतनी मोहलत थी ही नहीं। जिन्दगी इतनी तेज रफ्तार से भाग रही थी कि पीछे मुड़कर देखना काफी खतरनाक साबित हो सकता था। और मेघना ! वह तो जिन्दगी के आगे-आगे दौड़ रही थी, खुशी से हँसती और गाती हुई। और मेरे पास कोई कारण नहीं था उसे रोकने का। अपनी साफ, उजली और गहरी आँखों से जब भी वो मुझे देखती तो मुझे लगता, यदि मैं पूरी तरह से अपने-आपको उन आँखों में डुबो नहीं देता तो मेघना के साथ वह एक बहुत बड़ी ज्यादती होगी—एक ऐसी लड़की के साथ जिसे सिवाय अपने और मेरे, और कुछ नहीं मालूम था··· वह लड़की जिसने हर बार मुझे अपने अँधेरों से किसी फरिश्ते की तरह उबारा था। जब तक हम दोनों दोस्त थे मैंने बहुत-सी बातें उससे छिपायी थीं। दोस्ती के बाद वह जो और गहरा रिश्ता हम दोनों के बीच सांसों किसी रस्सी के पुल की तरह झूलता रहा था उस दौरान भी मैंने विल्मा और अदिति को लेकर उसके एक बेईमानी-सी की थी। लेकिन अब वह मेरी पत्नी थी और न तो यह शादी किसी

मजबूरी के तहत हम दोनों ने की थी और न ही किसी और बाहरी दबाव या कारण से। और इसलिए जब तक कि कोई दुर्घटना ही न हो जाये, मैं उसके साथ पूरी ईमानदारी से न सिर्फ रहना चाहता हूँ बल्कि यह उसका मुझ पर हक भी है कि मैं ऐसा करूँ।

लगभग दो साल पहले जब वह अमरीका से लौटी थी तो उसने मुझसे कहा था—अब मैं जिद नहीं करूँगी कि तुम डैडी से बात करो या जल्दी करो एण्ड ऑल दैट ··

जिस दिन वह लौटी थी उसी शाम की बात है यह। शाम का खाना मैंने उसके और डैडी के साथ ही खाया था और खाने के बाद वह आइसक्रीम के बहाने मेरे साथ कनॉट प्लेस तक आ गयी थी। 'एम्बैसी' के सामने हम दोनों गाड़ी में बैठे बात कर रहे थे।

—क्यों ? मैंने मुस्कराते हुए उसे छेड़ा था—क्या इरादा बदल दिया ?

—जी नहीं ! उसने तुनक कर मुँह चिढ़ाते हुए कहा था—इरादा बदल दिया ! लेकिन अगले ही क्षण उसकी आवाज संजीदा हो गयी थी—नहीं आदित्य ···असल में हुआ ये है कि अब मुझे अच्छी तरह समझ में आ गया है कि जो भी है किस्मत के पास मेरे लिए—दुःख या सुख—है वो तुम्हीं से। और वह चुप गयी थी।

—मैंने तो सुना था कि अमरीका जाकर लोग साइंस और टैक्नॉलोजी के आधार पर बातचीत करने लगते है। तुम्हारा मामला तो बिल्कुल उलट गया ! मैंने हँसते हुए कहा—लग रहा है बजाय अमरीका के तुम अयोध्या घूमकर लौटी हो।

हँसी ने उसकी उदासी को दूर भगा दिया था। अगले महीने ही हम दोनों ने शादी कर ली थी।

—अरे ? तुम अभी तक ऐसे ही लेटे हो। परदा हटाकर कमरे में झांकते हुए मेघना ने कहा—चलो उठो भई, चाय तैयार है।

—हाँ···चलो, मैंने उठते हुए कहा।

हाथ-मुँह धोकर मैं टेबल पर पहुँचा और दिन की डाक देखने लगा कि इतने में ही मेघना ट्रॉली सरकाती हुई दाखिल हुई—गरम-गरम टिकियावाला···हरी-लाल चटनीवाला···, मस्ती में वह किसी खोम्चेवाले की तरह आवाज लगा रही थी। इस तरह के स्वाग भरने में उसे बेहद मजा आता था।

मैं उसकी तरफ देखकर मुस्करा पड़ा—मेरा खयाल है अब तुम लगा ही लो अपना ठेला भी बाजार में···

—फिर तुम क्या करोगे चटोरे लाल ? उसने गाते हुए कहा और फिर मेरे पासवाली कुर्सी पर बैठकर मुझे चॉप्स देने लगी।

—अरे हाँ, सुनो, कुछ देर बाद जैसे अचानक उसे कुछ याद आया—नहीं तो मैं भूल जाऊँगी बाद में। मिसेज पारीख ने फोन दरअसल इसलिए किया था,

उनका क्लब स्कूल के बच्चों के लिए एक मेडिकल कैम्प लगा रहा है। वो कह रही थी कि तुम कम्पनी से कुछ दवाएँ और विटामिन्स वगैरा डोनेट करवा दो।

—किस स्कूल में कर रही हैं कैम्प? मैंने मुस्कराकर पूछा।

मेघना ने शहर के एक नामी पब्लिक स्कूल का नाम बताया जिसमें अधिकतर अमीरों के बच्चे पढते थे।

—उस स्कूल में बच्चों को बीमारियाँ कम खाने की वजह से नहीं होंगी बल्कि ज्यादा खाने के कारण होंगी। मैंने धीरे-से कहा।

—मतलब?

—मतलब यह कि विटामिन्स की वहाँ कोई जरूरत नहीं होगी।

—ओफ् हो'''फिर की न वही लाल झण्डेवाली बात। वह मुझे छेड़ते हुए लेकिन साथ ही मनानेवाली आवाज में बोली—तुम्हें इससे क्या मतलब! और फिर बच्चे तो बच्चे होते हैं थोडी-बहुत दवाएँ कम्पनी से दिलवा दो किस्सा खत्म! इश्क की खातिर ही कर दो यार, वह हँसने लगी।

—खैर देखेंगे, मैंने बात बदलते हुए कहा—थोडी हरीवाली चटनी देना।

—दुबारा चटनी लेने पर अलग चार्ज लिया जायेगा''', हँसते हुए उसने चटनी प्लेट में डाली और बोली—दूसरी बात—मुलगावकर्स के यहाँ क्या देना है? मैं सोच रही थी थोडा जल्दी चलते तो बाजार से कोई ठीक-सी चीज ले लेते। रुपये देना अच्छा नहीं लगता कुछ।

—अरे हाँ''', मुझे याद आया कि मिस्टर मुलगावकर के लड़के की शादी में जाना था आज। थकान इतनी थी कि मैंने सोचा था खाना खाकर आज जल्दी सो जाऊँगा लेकिन जाहिर था कि वह अब सम्भव नहीं था।

—ठीक है। साढ़े-सात तक तैयार हो जाओ''', मैंने कहा।

कम्पनी में काम करते हुए मुझे अब आठ साल हो चुके थे। इस सारे दौरान सिर्फ मिस्टर मुलगावकर एक ऐसे व्यक्ति थे जिनके व्यवहार का खुलापन और मेरे प्रति एक खास ढंग का स्नेह बरकरार रहा था। वे अब डिप्टी जनरल मैनेजर बन गये थे और आफिस से बाहर की जिन्दगी में भी हम लोगों के सम्बन्ध काफी गहरे हो गये थे। महीने में कम-से-कम दो बार वे हमारे यहाँ जरूर आते थे और ऐसा ही हम लोग भी करते थे। इसका एक मुख्य कारण यह था कि घर पर वे कभी ऑफिस की बात नहीं करते थे।

कम्पनी के काम के लिए यूँ वे मुझे कभी का प्रशिक्षित कर चुके थे लेकिन सच यह था कि जिन्दगी को लेकर मैं अभी तक बहुत-सी बातें उनसे सीख रहा था। उस आदमी को देखकर मैं बार-बार हैरत में पड़ जाता था। मुझे आज भी याद है, जब बरसों पहले मैं पहली बार उनके घर गया था तो मुझे विश्वास नहीं हुआ था कि मेरे सामने वही व्यक्ति मौजूद है जिससे कम्पनी में लोग इतना घबराते थे कि बात करने की हिम्मत नहीं होती थी। यह जानकर कि मैं आया हूँ, उन्होंने मुझे डाइनिंग रूम में ही बुला लिया था। जब मैं वहाँ पहुँचा तो वे

डाइनिंग टेबल के बजाय एक कोने में चटाई पर बैठे अपनी माँ को खाना खिला रहे थे।

—आ जाओ, कुमार, इधर ही आ जाओ···, मुझे देखते ही हँसते हुए उन्होंने कहा था·· माँ से मिलो मेरी। और फिर उन्होंने मेरा परिचय करवाया था।

—ये रघु तो आपकी बहुत तारीफ करता है बेटा, उनकी माँ ने मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा और फिर हँसने लगी—मुझसे कई बार कहता है ये कि जैसे मैंने इसको पाला वैसे ही आपकी माँ ने भी आपको पाला होगा।

काफी देर तक हम लोग वहीं बैठे बात करते रहे थे। रह-रहकर मेरा ध्यान एक बहुत छोटी-सी बात पर जाता और उसी पर ठहरा रहता। वह मेरे अनुभव में अभी तक पहला मराठी परिवार था जहाँ किसी ने भी मेरे रहते आपस में भी मराठी में बात नहीं की थी। बाद में मैंने मजाक में जब इस बात का जिक्र मिस्टर मुलगावकर से किया तो वे मुस्करा पड़े और उसके बाद उन्होंने जोकुछ कहा उसे भूलना मेरे लिये मुश्किल है।

—वैसे तो इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण है कुमार, उन्होंने कहीं दूर देखते हुए कहा था—मेरे पिता फौज में थे लेकिन उनकी मौत उस दौरान हुई जब वे छुट्टी पर घर आये हुए थे। मैं तब बहुत छोटा था। वे सादे कपड़े पहने घर के किसी काम से बाजार गये थे। यह बात सन् सैंतालीस की है। तब हम लोग बम्बई में थे और भिण्डी बाजार के पास रहते थे। अचानक बाजार में भगदड़ मच गयी और देखते ही देखते मारकाट शुरू हो गयी। कुछ वहशी लोगों ने अन्ना को घेर लिया। वे उस समय जिस दुकान पर खड़े थे वह उनके बचपन के एक साथी की थी जो मुसलमान था। उस आदमी ने यह कहकर कि अन्ना मुसलमान हैं उन्हें बचा लिया और काफी देर तक उन्हें अपनी दुकान में ही छिपाये रखा···, मिस्टर मुलगांवकर चुप होकर कुछ देर तक न जाने क्या सोचते रहे।

—हुआ आखिरकार यह कि —एक बहुत उदास मुस्कराहट के साथ उन्होंने अपनी बात पूरी की—जब कुछ देर बाद उस दुकानदार को यह लगा कि मामला कुछ शान्त हो गया है तो वह अन्ना को बाजार के बाहर तक छोड़ने के लिए आया। वे लोग दुकान से बाहर निकले ही थे कि उसी तरह के वहशी लोगों का एक और झुण्ड वहाँ तलवारें लेकर आ गया। अन्ना ने बहुत कहा कि उनका दोस्त मराठा है···, और मिस्टर मुलगावकर की नजरें झुक गयी—और वह सब अन्ना ने मराठी में ही कहा था लेकिन उन लोगों ने उन दोस्तों के सिर धड़ से अलग कर दिये।

बहुत देर तक हम दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला था।

—लेकिन इस कारण के अलावा एक बात और भी है, उन्होंने आखिरकार एक दूसरी, मेरी जानी-पहचानी आवाज में कहा था—हम हिन्दुस्तानी लोगों के लिए अतिथि देवता की तरह होता है। कम-से-कम हम लोगों को तो यही बताया गया है। और यह भी छोड़ो, मेहमान के सामने यदि आप किसी ऐसी भाषा में

बात करते हैं जो वह नहीं समझता तो उसके मन में संशय पैदा हो जाता है। और उसका मतलब यह है कि आप बजाय आतिथ्य-धर्म निभाने के, शत्रु-धर्म निभा रहे होते है।

धर्म का ही तो रोना है इस मुल्क मे, मुलगावकर साहब, मैंने धीरे-से कहा था।

—लेकिन कुमार, उन्होने अपने आपमे खोये हुए-से कहा था—मै तो यह कहता हूँ कि वैसे भी जिन्दगी का सारा कारोबार जबान के जरिये ही चलता है। दिल मे क्या है—कौन परवाह करता है इसकी। लोग तो वह याद रखते हैं जो जबान कह जाती है। और जबानें कई आती हे आदमी को। जो लोग कामयाबी ढूँढने निकलते है, वे तो न जाने कितनी तरह-तरह की जबानें सीखते है। लेकिन अफसोस यह है कि सारी दुर्घटनाएँ इसीलिए होती हैं कि सही जगहों पर, और सही लोगों के साथ भी हम अक्सर एक गलत जबान में बहुत कुछ कह जाते हैं ··

मैं चुपचाप उनकी बात के बारे मे सोचता रहा था।

—तुम मे जिस बात ने मेरा ध्यान खींचा था वह दरअसल यही थी, उन्होंने मेरी तरफ देखकर कुछ देर बाद कहा था—एक तो तुम चुप रहते हो ज्यादातर और दूसरे मुझे हमेशा लगता है कि तुम जानते हो कि आदमी की जबान बहुत ताकतवर चीज होती है। मुझे बहुत खुशी हुई थी तुम्हारी कहानियो को पढकर। पता नहीं तुम अब लिखते क्यों नही !

—आप खुद ही इस सवाल का जवाब दे चुके है, मैं मुस्कराया—आदमी की जबान ताकतवर ही नही बहुत तेज धारवाली भी होती है·· मुझे उससे डर लगता है, मिस्टर मुलगावकर।

यह वाकई सच है। दिनोदिन अब मेरा यह डर बढ़ता ही जाता है। जबान हो या भाषा हम अक्सर उससे गलत काम लेते है। बिल्कुल गोंद की तरह उसका इस्तेमाल हम अपने अज्ञान या भोलेपन मे, चीजों को चिपकाने और एक-दूसरे से जोड़ने के लिए करते रहते हैं। जबकि उस काम के लिए जरूरत होती है चुपचाप कुछ करते रहने की, जी-तोड़ मेहनत की, पसीना और कभी-कभी खून भी बहाने की। जिन्दगी हो या साहित्य, भाषा या जबान कभी कुछ नही जोड़ सकती। उसका काम तो बस चीजों को बिल्कुल बेबाक ढंग से उघाड़ना, काटना, उधेड़ना और उनका रेशा-रेशा अलग कर देना है जिससे कि वे सच्चाइयाँ सामने आ सकें जिनकी, जिन्दगी हमेशा-हमेशा मुन्तिजर रहती है, उनको राह देखती है, आराम और चैन से खत्म हो सकने के लिए।

अदिति जरूर इसे समझती थी···

अब जब सोचता हूँ उनके बारे में तो सबसे पहली बात हमेशा यही याद आती है। अधिकतर जोकुछ भी वे कहती थी वह मुझे इसीलिए इतना तकलीफदेह और नागवार लगता था कि वह सबकुछ हमेशा चीजों को उघाड़-उघाड़कर देखता था। सिर्फ उन क्षणों को छोड़कर जब वे बिल्कुल बेबस और कमजोर हो जाती होंगी,

उन्होंने कभी मुझसे कुछ ऐसा नही कहा जिसे सुनकर मैं अपने-आपको उनसे जोड़ सकता था

नैनीताल से लौटकर जब मैं ऑफिस पहुँचा तो पता चला कि फौरन तीन हफ्ते के लिए बम्बई जाना है क्योंकि कम्पनी का एक ट्रेनिंग प्रोग्राम दूसरे ही दिन से शुरू होनेवाला था। जाने से पहले मैं जब उनसे मिलने गया तो यह खबर सुनकर वे मुस्करा पड़ी और अपने उसी चुलबुलेपन से मुझे छेड़ती हुई बोली—बहुत अच्छा हुआ ! बिल्कुल यही होना चाहिए तुम्हारे साथ। अब सारी अक्ल ठिकाने आ जायेगी तुम्हारी। छुट्टी देना तो सच्ची गुनाह है तुम्हें !

—मेरे बजाय ', मैंने उन्हें अपनी बाँहों में भरकर कहा था—तो तुम्हें कम्पनी का जनरल मैनेजर होना चाहिए था।

—अच्छा ? उन्होंने मुस्कराकर अपनी उँगलियो से मेरे होठों को सहलाते हुए धीरे-से कहा था—इस अपॉइण्टमैण्ट के बारे मे तो हमें मालूम ही नही हुआ।

—मुझे बम्बई से लौट आने दो, फिर अपॉइण्टमैण्ट लैटर इशू हो जायेगा, और शरारत मे मैंने उनकी एक उंगली को हल्के से अपने दाँतों के बीच दबा लिया।

—आह्···नही ··, उफ्फ , ये कसमसा उठी थी—छोड़ो न···क्या पागल हो गये हो ?

—यैस···! मैंने उँगली छोड़ते हुए कहा था—और अब थोड़े दिनों मे मैं अपने कपड़े फाड़कर सड़क पर लोगो को पत्थर मारा करूँगा···समझ गयी तुम ?

—समझ गयी, उन्होंने अपनी गर्दन झटककर अपने होठ भींचकर कहा—और फिर तुम्हें पागलखाने मे भर्ती करा दिया जायेगा···, और हँसते हुए वे मुझसे चिपट गयी थी।

उस रात के बारे मे मैं अक्सर सोचता हूँ, जबकि उस रात क्षण-भर के लिए भी कुछ सोचने का वक्त मुझे नही मिला था। रात-भर हम लोग बातें करते रहे थे। न जाने कहाँ-कहाँ की बातें उनको याद आती गयी थी और न जाने क्या देखती रही थी वे मेरे चेहरे पर, मेरी आँखो मे, मेरे होठो पर और मेरे सीने पर। मैं ही नही समझ पाया वर्ना वे होठ तो रात-भर छटपटाते-से, न जाने क्या-क्या कहते रहे थे मेरे रोम-रोम से। पिघलती रही थी वह देह और उसके भीतर कोई आत्मा जो अपने-आपसे हार मान चुकी थी और शायद तय कर चुकी थी कि कोई भी बन्धन उसे अब रोक नही पायेगा।

मैं यह समझता रहा था कि अदिति मेरे पास, उस समुद्र के बीचों-बीच, जी-तोड़ कोशिश करके इसलिए पहुँची थी कि वे भटक गयी थीं किनारो से बहुत दूर ··और शायद मेरे साथ वे वापिस लौटना चाहती थी किसी नये किनारे पर। लेकिन ऐसा बिलकुल नही था·· और यदि था तो वह मेरे मन का वहम-भर था। मेरे उस अकेले, कमजोर और हमेशा पीछे छूट जानेवाले 'मैं' की एक भोली लालसा। एक ऐसी चाह जिसने हमेशा सिर्फ अपने पीछे फैले हुए जगल को ही

देखा था। यह उसे बिल्कुल ही नहीं मालूम था कि हर व्यक्ति के पीछे उसका एक अपना, अबूझ जंगल होता है—रात गये उसमे से उठती आवाजें सिर्फ उस तक ही पहुँचती हैं। केवल वही जानता है उन आवाजो की भाषा, उनके शब्द, उनकी सिसकियाँ और उनकी कराहती जिद···और दुनिया का अगर दो-तिहाई हिस्सा समुद्र है तो बाकी एक तिहाई बस पहाड और जंगल हैं। आदमी तो बस बिखरा हुआ-सा है इस जमीन पर···

कितनी ही छोटी-छोटी बातें बतायी थी उन्होने उस रात अपने बारे मे—ऐसी बातें जो कई बार जिन्दगी-भर साथ रहने के बावजूद दो लोग एक-दूसरे के बारे में नही जान पाते।— मालूम है जब मैं छोटी थी तो क्या बनना चाहती थी बडे होकर? उन्होंने मेरी गोद में सिर रखकर लेटे हुए कहा था, मेरी तरफ देखते हुए—डान्सर! इतना मन था मेरा कथक सीखने का · लेकिन डैडी ने इजाजत नही दी।

—डॉक्टर बनने के बाद तुम्हे अब अच्छा नही लगता?

—नहो, अच्छा तो बहुत लगता है। बल्कि अब तो लगता है कि शायद यही ठीक फैसला था। इस तरह के प्रोफेशन्स एक-दूसरे ढग का आत्मविश्वास देते हैं···, वे धीरे-से मुस्करायी थी—और जिन्दगी मे उसकी काफी जरूरत पडती है। मैं चुपचाप उनके बालों को सहलाता रहा था।

—नैनीताल में जब तुम सेलिंग करते हुए बहुत दूर निकल जाते थे तो मालूम है मैं क्या सोचती थी? मेरी हथेलियो को पकडकर उन्होंने अपने सीने पर रख लिया था— मैं सोचती थी कि तुम्हारे साथ उस समय यॉट में किस तरह की लडकी होनी चाहिए। बहुत अच्छे दिखते हो तुम सेलिंग करते वक्त!

—मैं बताऊँ कैसी लडकी होनी चाहिए··

—नहीं, तुम तो पागल हो बिल्कुल, वे मुस्करा पडी—पता नही कम्पनीवालों ने क्यों तुम्हें इतना सिर चढा रखा है!

—अब कोई तो होगा हमारा कद्रदां···

—अच्छा एक बात बताओ, कुछ क्षणों बाद उन्होंने पूछा—कब आयी थी ये बात तुम्हारे मन मे?

—पता नही···, मैं मुस्करा पडा—शायद उसी दिन जब तुम्हें 'ला बोहीम' मे देखा था···

—ये कैसे हो सकता है···, उन्होंने अपने-आप से कहा।

कुछ देर बाद वे उठी और मेरी गर्दन में बाँह डालकर गोद में बैठ गयी—तुम इतनी देर से क्यों मिले हमें···हैंएंएं···

सुबह जल्दी ही मैं उनके पास से चला आया था। कोठी के गेट तक वे मुझे छोड़ने आयी थी—गाड़ी के साथ धीरे-धीरे चलती हुई।

—अच्छी तरह रहना तुम। चलते वक्त उन्होंने कहा था।

बम्बई से जब मैं लौटा तो मेज पर रखी डाक मे सबसे ऊपर उन्ही की चिट्ठी थी—

प्रिय आदित्य,

अब और सहन नहीं होता। और न ही जब तुम सामने होते हो तो मैं तुमसे कुछ कह पाती। कई बार कोशिश भी की तो तुम सुनते नहीं। और उतनी देर तुम्हारे सामने मेरे पाँव ही जमीन पर नहीं टिक पाते कि तुमसे अलग होकर कुछ सोच सकूँ या कह सकूँ। जब तुम चले जाते हो तो सबकुछ अपने साथ ले जाते हो। वह अच्छा ही है। क्योंकि वह सारा सुख जो तुम बार-बार मेरे सामने लाकर मुझे ललचाते हो वह मेरा है ही नहीं। हो भी नहीं सकता कभी। तुम खुद बताओ, कैसे हो सकता है? वक्त उल्टा कैसे चल सकता है आदित्य? और तुम! तुम तो सारी दुनिया का सुख पता नहीं कहाँ से लाकर मेरे सामने रख देते हो। घबराहट के मारे मैं तो उसे छूकर भी नहीं देख पाती थी। और अब, जब मैं अपने हिस्से का सुख एक बार पूरी तरह, अपने रोम-रोम से महसूस कर चुकी हूँ तो तुम सच मानना, मुझमें अब कुछ भी अधूरा नहीं बचा। तुम्ही थे आदित्य जिसके लिए मैं दुनिया में आयी थी। तुम्ही हो सकते थे वह, जिसके लिए मैंने महेन्द्र और सुधीर जैसे लोगों की ज्यादतियाँ सही। तुम न होते तो सोचो, कौन बताता मुझे कि औरत क्या होती है, क्यों होती है और किसलिए होती है। कौन विश्वास दिलाता मुझे कि दुनिया में सुख भी है और उसका एक इतना बड़ा हिस्सा सिर्फ मेरे लिए ही है! सिवाय तुम्हारे किसी और ने नहीं रखा उसे सहेजकर मेरे लिए। मैं, जो इतने पीछे छूट गयी थी जिन्दगी में कि उम्मीदें तक साथ नहीं दे पायीं। तुम्हारे सिवा मैंने किसी को नहीं देखा वक्त की गली में वापिस दौड़ते हुए। इससे इन्कार नहीं कि तुम मुझे साथ लेकर फिर दुनिया के साथ-साथ दौड़ने लगोगे। आखिर तक। लेकिन मैं तब तक रीत जाऊँगी। और फिर बहुत तकलीफ होगी तुम्हे।

कितना चाहा कि तुमसे दूर रहूँ। नहीं हुआ। फिर यह चाहा कि जमीन की तरह सारी जिन्दगी समेटे तुम्हारे गिर्द घूमती रहूँ। तुम्हारे कारण अपने दिन और रातों का हिसाब रक्खूँ, लेकिन रहूँ तुमसे दूर ही। वह भी नहीं हुआ। फिर यह चाहा कि तुम्हारे पास रहूँ। इतने पास कि देख सकूँ एक बार डूबकर—उस सुख में, जो कहते हैं कि किसी को भी उबरने नहीं देता। वह भी नहीं हुआ। क्योंकि तुम तो एकदम समुद्र ही बन गये। और मैं घबरा गयी। डर गयी अपने लालच से। और तुम्हारी गहराई से। मैं—जो समझती थी कि प्यार उन परिन्दों का नाम है जो लोग अपने-अपने पिंजड़ों में बन्द कर के आँगन में लटका देते हैं। अब कोई मुझसे पूछेगा तो मैं कहूँगी, प्यार वो परिन्दे नहीं बल्कि वह पिंजड़ा है जो अगर खाली भी हो जाये

तो कोई फर्क नहीं पडता। पिंजडा ही तो होता है जो कुछ ही दिनों में उन परिन्दों को उड़ना तक भुला देता है।

मुझे बताया ही नही किसी ने आदित्य, कि अदिति आदित्य के ही कारण होती है। माँ-बाप ने कहा कि लडकी का जीवन उसके पति के लिए होता है। पति ने कहा कि पत्नी का जीवन खानदान की इज्जत के लिए है। और जो जीवन के बारे मे सोचता और लिखता है उसने कहा कि हरेक का जीवन सिर्फ उसकी समस्या है। और रही औरत तो वह सिर्फ रात के लिए होती है। रात ही थी वह बहुत लम्बी और डरावनी। सुबह तो तब हुई जब तुम आये। और बावजूद इसके कि कुछ नहीं था मेरे पास, तुमने मुझे अदिति बना दिया।

एक पूरी जिन्दगी सिर्फ पाँच हफ्तों की हो सकती है, कोई विश्वास नही करेगा। तुम भी नही, मैं जानती हूँ। लेकिन मैं तुम्हे कैसे समझाऊँ कि अब कुछ नहीं बचा जो मुझे चाहिए। तुम तो ठहरे सूरज। तुम्हें भला कौन-सी चाह बुझा पायेगी। लेकिन अदिति तो नश्वर है। उसकी सारी सार्थकता इसी में है कि नष्ट होने से पहले वह एक बार सन्तुष्ट हो ले—मन से और तन से।

तुम मानोगे नहीं! और मैं सह नहीं पाऊँगी उस सुख को आदित्य, जिसे देख मेरा मन ललचा रहा है। बहुत कुछ सालता रहेगा मुझे भीतर-ही-भीतर। तुम जब मुझे प्यार करते हो तो सच मानो एक-एक पत्ती झर जाती है उस वृक्ष की जिसकी छाया मैं तुम्हारे ऊपर फैलाना चाहती हूँ। तुम जब थककर मेरे पास लेटते हो तो मेरे पास सूखी टहनियों जैसी सूनी बाँहों के अलावा और कुछ नहीं होता। उसके लिए—जिसने क्या कुछ नहीं दिया मुझे!

जब तक तुम्हें यह चिट्ठी मिलेगी मैं यह शहर छोड़ चुकी होऊँगी। कुछ साल अभी मैं विदेश रहूँगी। फिर सोचूँगी कुछ और। तुम अगर अपनी जिद छोडकर मेघना के साथ अच्छे से रहने लगोगे तो मेरा मन भटकेगा नहीं। और मुझसे नाराज मत होना, आदित्य! तुम बिलकुल बच्चों की तरह जिद करने लगते हो। और मेरा भी फिर बस नहीं चलता। इसीलिए तुमसे एक बार और मिले बिना, इस तरह से जा रही हूँ।

जा कहीं नहीं रही मैं आदित्य! कहाँ जाऊँगी अब? लेकिन सच मानो अभी तो मुझे इतना वक्त भी नहीं मिला कि एक बार देख तो लूँ वह सब जो तुमने अपनी अदिति को दिया है। बहुत वक्त लगेगा उसमें तो! और उसके बाद, अगर मन नहीं माना और हिम्मत ने साथ नहीं दिया तो फिर तुम्हारे पास ही आऊँगी। लेकिन तुम इन्तजार नहीं करना।

देखो, परेशान मत होना बिल्कुल। जिस रात तुम गैस्ट हाउस के सामने फुटपाथ पर बैठे-बैठे सो गये थे, उस रात घर आकर मैंने पूरी कोशिश की थी अपने-आपको खत्म करने की। लेकिन जब तक तुम हो, मैं कैसे खत्म हो सकती हूँ!

गुड्डू! अच्छे-से रहना! तुम बहुत जिद्दी हो। लेकिन बस यह बात मान लो अपनी अदिति की। एक तुम्ही तो हो जिसने मुझे सबकुछ दिया है। और जिससे मैं कुछ माँग सकती हूँ।

—तुम्हारी, अदिति

चिट्ठी मैंने मोड़कर उसी लिफाफे मे रख दी।

एक गहरी खामोशी चारो तरफ फैल गयी थी और उससे घिरा मैं किसी निर्जन द्वीप की तरह बैठा रहा। मन ने कहा कि फौरन उनकी कोठी पर जाकर देखूँ, फोन करूँ, उन सब लोगो से जाकर पूछूँ जो उन्हे जानते थे। लेकिन मैं जानता था कि वे जा चुकी हैं। बाहर जाकर यदि मैं कोशिश भी करूँगा तो वे ओझल हो चुकी होंगी। समुद्र पार जा चुकी थी वे—वह समुद्र जो भीतर कहीं मचल रहा था, नाराज था, उफन रहा था सबकुछ डुबो देने के लिए। खत्म कर देने के लिए उन सब चीजो को जिन्हें मैंने उनकी उम्मीद मे, उनके लिए, न जाने कहाँ-कहाँ से और किस-किस तरह बटोरा था।

मथ डाला था अपने-आपको उस समुद्र ने अपने दुःख और गुस्से में। और मुझे बाहर निकाल फेंका था उस अकेले, उजाड द्वीप की तरह जहाँ कोई कभी नही पहुँचेगा। अभी तक उसी तरह सूना और अपने अकेलेपन से पनाह माँगता हुआ जमीन का वह टुकडा मेरे भीतर उगा हुआ है। कोई नही आयेगा वहाँ। मेघना है। वह मुझे बहुत प्यार करती है। हमेशा किया है उसने। और मेरे लिए तो वह अब सबकुछ ही है। सिवाय उस पिंजडे के, जिससे मैं बाहर आ चुका हूँ लेकिन अब उड नही सकता।

जाना भी कहाँ है मुझे अब। सबकुछ तो है मेरे पास ही। मेघना जब तक जागती रहती है मेरा मन बिल्कुल नहीं भटकता। अक्सर मैं सो भी जाता हूँ गहरी नींद मे—उसकी बाँहो मे ही। दिन-भर की सारी थकान और बाहरी जिन्दगी का वह सारा जहर जो लोग डस-डसकर मेरे भीतर छोड देते हैं—मेघना के होंठ रात के सन्नाटे मे चुपचाप चूस लेते हैं। मैं बिल्कुल अच्छा हो जाता हूँ और फिर मेघना को बहुत प्यार करता हूँ—कृतज्ञ होकर ही नही, बल्कि उसके प्यार मे डूबकर। दूर तक फैली हुई नदी की तरह वह मुझे बहा ले जाती है नींद मे अपने संग। हफ्तों, कभी-कभी महीनों गुजर जाते हैं इसी तरह।

फिर अचानक किसी रात पिछले पहर नींद खुल जाती है। लगता है कोई पास खड़ा है, चुपचाप। मैं कुछ कहना चाहता हूँ तो वे मेरे होठों पर उँगली रख देती हैं। फिर भी जब मैं नही मानता तो मेरे होठों को वे अपने होठो में भर लेती

हैं। वे होंठ मेरे होंठों से कहते है—कहो मत अब कुछ भी ! मैं तो तुम्हें देखने आयी थी। मुझे मालूम था···तुम मेरी बात मान जाओगे। और उसी तरह चुपचाप वे चली जाती हैं। हालांकि उस वक्त मेघना मेरे पास सो रही होती है लेकिन मैं नहीं होता उसके पास। हो भी कैसे सकता हूँ—मैं तो एक द्वीप हूँ। गहरी रात के अँधेरे में, तूफानी लहरों से घिरा हुआ, अपनी पूरी ताकत से पागलों की तरह मैं चीखता हूँ·—अदिति लौट आओ ! लेकिन वे नही सुनती। उन तक आवाज ही नही पहुँचती। उन तक क्या, खुद मुझ तक नही पहुँचती मेरी वह आवाज—समुद्र का इतना भयंकर शोर होता है उस वक्त।

किसी मौसम में वे परिन्दे कभी-कभी नजर आते है जो समुद्र पार जाकर लौटते हैं। जगह-जगह जिन्हें देखने के लिए नैनीताल के रास्ते मे वे गाडी रुकवा लेती थी। मैं भौंचक्का-सा उन्हें देखता रह जाता हूँ। लगता है वे मुझे ही देख रहे हैं और शायद कुछ कहेंगे। मैं बिल्कुल भूल जाता हूँ उन क्षणो मे कि परिन्दे इन्सान से कभी कुछ नही कहते। बहुत इज्जत करते हैं वे आदमी के दु:ख की। सिर्फ लोग ही हैं जो नही समझते कुछ और क्या-क्या कह जाते हैं।

माना नही था मन लेकिन। उनके क्लीनिक पर जब गया तो उसी बोर्ड पर एक दूसरा नाम लिखा हुआ था। लेडी डॉक्टर बैनर्जी उनकी सहयोगी रही थी। मेरे सवाल के जवाब मे उन्होंने कहा—पता नहीं एकदम क्या सूझा उन्हें। सबकुछ वाइण्ड-अप (समाप्त) कर दिया। वैसे कहती तो कई बार थी कि कुछ साल विदेश में रहना चाहती हैं। लेकिन इतने अचानक प्रोग्राम बना लिया कि कुछ समझ में ही नही आया। कोठी भी बेच दी। कह गयी थी कि वहाँ जाकर चिट्ठी लिखेंगी लेकिन अभी तक तो कोई खबर आयी नही ··

मैं चला आया था। वह शाम बहुत मुश्किल साबित हुई थी···

उन्हें गये कई महीने हो चुके थे। इस बीच मुझे कुछ नही सूझा था अपने-आपको संयत करने के लिए। बस एक ही तरीका मुझे मालूम था किसी भी तरह की उलझन के काँटों के साथ रहने का—काम का बोझा ढोना, जो फिर इतना थका दे कि नींद बेहोश कर दे उन काँटो के ऊपर लेटे शरीर को। आज भी मुझे लगता है कि बस एक यही उपाय है मन के पागल घोड़ो को रोकने का। हालांकि कभी-कभी यह भी काम नही आता। उस शाम यही हुआ था। उनके जाने के बाद वह पहली शाम थी जब मैंने बीयर पी थी। कम्पनी के कुछ लोगो को मैंने गैस्ट हाउस बुलाया था—एक नये मार्केटिंग प्लान की तैयारी के सिलसिले में। काम कुछ जल्दी ही निबट गया था और उन लोगों को कुछ देर और रोकने के लिए मैंने बीयर मँगवा ली थी। सोचा मैंने यह था कि उन्हीं लोगो के साथ खाना खाकर मैं सो जाऊँगा। हुआ कुछ ऐसा कि किसी कारणवश उनमें से किसी एक को जल्दी जाना पड़ा और बैठक कुछ उखड़-सी गयी। नौ बजते-बजते सब लोग चले गये और मैं अपने-आपसे ही धोखा खाकर घबराया-सा बैठा रहा, अकेला। तरह-तरह से मैंने अपने-आपको बहकाना चाहा लेकिन हारकर मैं अपने कमरे मे आ गया और

बियर पीता रहा। वह चिट्ठी निकालकर मैंने कई बार पढ़ी और जब बिल्कुल ही असहाय हो गया तो बिस्तर पर लेट गया और न जाने उनसे क्या-क्या कहने लगा। फिर उठकर मैंने अल्मारी खोली और वे तस्वीरें निकाल लीं जो मैंने नैनीताल में खींची थीं। उसी बीच मेरी नजरें उस बैग पर पड़ीं जिसे मैंने नैनीताल से आकर अभी तक खोला ही नहीं था। उसमें वह किताब थी और वे हेयर पिन्स। बिस्तर पर वापिस आकर मैं उन सब तस्वीरों को देखता रहा। आखिरी तस्वीर में वे बिस्तर पर पेट के बल लेटी कोई किताब पढ़ रही थीं। तस्वीर में वे बजाय पढ़ने के कहीं और देख रही थीं और किताब सामने खुली पड़ी थी। तस्वीरें रखकर मैंने वह किताब खोली—पहले पेज पर जहाँ शीर्षक और लेखक का नाम था—कनुप्रिया—धर्मवीर भारती, वहीं दायें ऊपरी कोने में उनकी लिखावट थी—अदिति और उसके नीचे लिखा था अप्रैल, 1960।

अन्यमनस्क-सा मैं पन्ने पलटने लगा और एकाएक फिर रुक गया। सूखे हुए डेजी के फूलों का एक छोटा-सा गुच्छा मुझे देख रहा था। नैनीताल जाते वक्त एकाएक सड़क के किनारे बहुत-से डेजी के फूलों ने उन्हें रोक लिया था।

—अरे, अरे ' गाड़ी रोको न ', उन्होंने मेरी तरफ घूरकर देखते हुए कहा था और गाड़ी रुकते ही उतरकर दौड़ने लगी थीं। ढेर सारे फूल अपने आँचल में भरकर वे लौटी थीं और मुस्कराकर मुझसे कहा था—दिखता ही नहीं तुम्हें तो कुछ ! बड़े आये लेखक कहीं के'''

नैनीताल पहुँचकर होटल के उस कमरे में उन्होंने सिरहानेवाली बैड टेबल पर उन्हें सजा दिया था और फिर मुझसे चिपटते हुए बोली थीं—अब ये गवाह रहेंगे ''अगर तुमने कोई बदतमीजी की या हमें परेशान किया तो'''

एक बेजान, सपाट तह में कैद थे वे फूल अब। और उनकी गवाही भी बदल चुकी थी। उस पन्ने पर वह कविता थी—'आम्र बौर का गीत'। एक-एक शब्द आँखों में धुँधलाता गया—

रात गहरा आयी है
और तुम चले गये हो
और मैं कितनी देर तक बाँह से
उसी आम्र डाली को घेरे चुपचाप रोती रही हूँ
जिस पर टिक कर तुम मेरी प्रतीक्षा करते हो

और मैं लौट रही हूँ
हताश और निष्फल
और ये आम के टूटे बौर के कण-कण
मेरे पाँवों में बुरी तरह साल रहे हैं।

पर तुम्हें यह कौन बतायेगा साँवरे
कि देर में ही सही

पर मैं तुम्हारे पुकारने पर आ तो गयी
और माँग-सी उजली पगडण्डी पर बिखरे
ये मंजरी-कण भी अगर मेरे चरणों मे गड़ते हैं तो
इसलिए न कि कितना लम्बा रास्ता
कितनी जल्दी-जल्दी पार कर मुझे आना पड़ा है
और काँटों और कांकरियों से
मेरे पाँव किस बुरी तरह घायल हो गये हैं।

यह कैसे बताऊँ तुम्हे
कि चरम साक्षात्कार के ये अनूठे क्षण भी
जो कभी-कभी मेरे हाथ से छूट जाते है
तुम्हारी मर्म-पुकार जो कभी-कभी मैं नही सुन पाती
तुम्हारी भेंट का अर्थ जो नही समझ पाती
तो मेरे साँवरे लाज मन की भी होती है

एक अज्ञात भय,
अपरिचित सशय
आग्रह भरा गोपन,
और सुख के क्षण
में भी घिर आनेवाली निर्व्याख्या उदासी—

फिर भी उसे चीरकर
देर मे ही आऊँगी प्राण,
तो क्या तुम मुझे अपनी लम्बी
चन्दन बाँहो में भरकर बेसुध नही
कर दोगे ?

वे शब्द सन्नाटे में घण्टियों की तरह फिर बजते रहे। अनन्त काल से गूँजता आया यह सन्नाटा और उसमे निरन्तर बजती हुई वे घण्टियाँ—उस आरती की जो हमेशा ही 'इष्ट' की अनुपस्थिति मे कोई करता है। बिना कुछ माँगे, मन की लाज की खातिर···

अनजाने ही अब मैं घर पर ज्यादा वक्त बिताने लगा था। हफ्तों हो जाते मुझे कम्पनी गैस्ट हाउसवाले फ्लैट को खोले। अम्माँ और बाबा को थोड़ा आश्चर्य भी हुआ था कि एक तो मैं इतने लम्बे अर्से तक बहुत दिनों बाद घर मे रह रहा था और दूसरे ऑफिस से आने के बाद मैं शायद ही कभी बाहर जाता था। लेकिन वे दोनों बहुत खुश थे इन दोनों ही बातो से। मेरे लिए भी यह एक नया अहसास था। यूँ हम लोगों मे अब ज्यादा बातचीत नही होती थी। सिवाय घरेलू

बातों के कुछ भी ऐसा नही था जिसको लेकर मैं अम्माँ या बाबा से बात कर सकता था। वे दोनों भी उन सब बातो को लेकर पूरी तरह सन्तुष्ट और बेफिक्र थे जिनकी फिक्र माँ-बाप को अपनी औलाद से एक खास ढंग से जोड़े रखती है। बस एक दुःख था उन्हे मुझको लेकर---मेरा ब्याह और उसके बारे में अब अम्माँ ने भी बात करना छोड दिया था। मुझे कई बार लगता कि अम्माँ जैसे मन-ही-मन आश्वस्त हो चुकी हैं कि मैं मेघना के लौटने का इन्तजार कर रहा हूँ।

मेघना की चिट्ठियाँ नियमित रूप से आती रही थीं। हर चिट्ठी में वह कोई-न-कोई बात ऐसी लिखती थी कि मैं घबरा जाता था उसे वह सच बताने में जो मैं जानता था कि उसे नष्ट कर सकता था। नैनीताल जाने से पहले तक मैंने कई बार कोशिश की उसे वह खत लिखने की जिसकी बातें मुझे कभी-कभी न सिर्फ बहुत ही परेशान करती थी बल्कि अपनी ही नजरों मे मुझे इतना गिरा देती थी कि कई बार अदिति की तरफ उठती मेरी बाँहें भी रुक-सा जाती थीं। लेकिन जैसे ही अदिति मेरी तरफ देखती मैं सबकुछ भूल जाता था।

उनके जाने के बाद भी अब तक मेघना की कई चिट्ठियाँ आ चुकी थीं। अब कोई मुश्किल नही थी मेरे सामने। किसी भी तरह का संकट नहीं था लेकिन इसके बावजूद मेघना को जवाब मे लिखे गये मेरे खत पहले की तरह ही खामोश-से रहे थे।

यह अहसास कि जिन्दगी मे मैं अभी आधे रास्ते भी नही पहुँचा था कि वे सब लोग मुझसे बहुत दूर जा चुके थे जिनके इर्द-गिर्द मैंने जिन्दगी-भर के लिए कितनी ही बातें कब से तय कर ली थी, धीरे-धीरे उभर रहा था---दर्द की तरह, चोट लगने के काफी देर बाद। और अपने आसपास जब मैं उस यथार्थ को देखता जिसकी बिसात पर लोग तरह-तरह की कहावतो और तारीफो के जरिये मेरा जिक्र करते थे तो मैं और भी बौखला जाता। भौतिक सुख और सफलताओं को लेकर दुनिया मे कितना शोर होता है कि आदमी की अस्मिता किसी कोने में सहमी-सी खडी रहती है। लोग सफलताओ को जंगली जानवरों की तरह पकड़कर मोटी-मोटी सलाखोंवाले पिंजरो मे बन्द कर लेते हैं। जो उन्हे बाहर से, दूर से देखते हैं एक अजूबा-सा समझते हैं। जिनके पिंजरो मे वे बन्द होती हैं, उनके लिए वह एक खेल होता है सुबह-शाम का। जिनके पास बहुत-से पिंजरे होते हैं वे उन्हें लेकर जगह-जगह घूमते हैं, अपने तम्बू तानते हैं और सर्कस का खेल दिखाते हैं जिसमें जानवर तो जानवर आदमी भी ऐसे-ऐसे करतब दिखाते हैं कि देखनेवाले दंग रह जाते हैं। यह कोई नही कहता कि कैसी भी सफलता, कम-से-कम भौतिक जीवन की, एक बेहद मामूली और स्वाभाविक-सी प्रक्रिया है, यदि आदमी तरह-तरह के पिंजरो में रखी रोटी या बोटी के टुकड़ो का लालच थोड़ी देर के लिए रोक ले। ज्यादातर लोगों के लिए लालच उस रोटी का नही होता बल्कि पालतू बन जाने की एक ऐसी सहज मनोवृत्ति होती है जो उस जमीन पर जंगली घास की तरह उग ही आती है जिस पर कोई हल नहीं चलाता, जिसके कंकड़-पत्थर

कोई बीनना ही नही चाहता। और यह सहूलियत तो लोगों के पास बुनियादी हक की तरह होती ही है कि अपनी कमजोरी को वे किसी गुप्त रोग की तरह तब तक छिपाये रखते हैं जब तक कि वह पूरे समाज मे नही फैल जाती। किसी बडे-से शब्द को फिर एक छाते की तरह तान लिया जाता है प्लेग, महामारी, दैवी प्रकोप, सामाजिक संकट, कुण्ठा, संत्रास, व्यक्तित्त्व का संकट, मूल्यहीनता का बोध···और इसी तरह के नये-से-नये शब्द जो आते ही शोध का विषय बन जाते हैं।

मैं एकटक देखता अपने चारो तरफ बिखरे हुए लोगो को। बहुत कम लोग नजर आते जिन्दगी पर सवार, जीते हुए। बहुतायत ऐसे लोगों की होती जिन्हें खयाल तक नही होता जिन्दगी का। वे न कुछ चाहते थे, न किसी से प्यार करते थे, न उन्हे गुस्सा आता और न वे हँसते थे। जैसे रवि हँसता था। वे तो बस किसी बीमार की तरह या तो चुपचाप पड़े रहते थे और या फिर सन्निपात की हालत में रोने और चीखने लगते थे।

सालो बाद मैंने उस मोहल्ले और पडोसवाले घर को गौर से देखा था। हमारे घर से लगे हुए उस घर मे गुप्ताजी रहते थे जिन्हें मैं बचपन से ही मामाजी कहता आया था। मौहल्ले मे वे बिजलीवाले गुप्ताजी के नाम से जाने जाते थे क्योंकि वे सरकारी बिजली के महकमे मे इलैक्ट्रीशियन थे। उनकी शादी मेरे सामने ही हुई थी। तब मैं चार या पाँच साल का था और तब उनके माता-पिता भी जीवित थे। उनके पिता पूजा-पाठ बहुत करते थे और माँ पड़ोस की औरतों से आये दिन झगड़ती और खूब गालियाँ बकती थी। गुप्ताजी मिडिल फेल थे और उसके बाद ही उनके पिता ने उनकी नौकरी लगवा दी थी। उनकी पत्नी जिन्हें मैं मामी कहता था देखने मे काफी अच्छी थी। मुझे याद है शादी के मुश्किल से एक-डेढ़ साल बाद ही एक दिन गुप्ताजी ने अपनी पत्नी को बहुत पीटा था। उस समय रात के दो बजे थे। रात की ड्यूटी से वे अचानक घर आ गये थे और उस समय उनकी पत्नी के पास वह आदमी था जिसकी पीछेवाली गली मे लोहे की दुकान थी। उस समय की तो मुझे बस यही याद है कि वे बहुत देर तक अपनी पत्नी को लातों और घूसों से मारते रहे थे। न उनके माँ-बाप ने उन्हे रोका और न ही किसी मौहल्लेवाले ने कोई बीच-बचाव किया। बड़े होने पर जब भी यह घटना याद आयी मुझे हमेशा इस बात पर आश्चर्य हुआ कि गुप्ताजी ने उस आदमी से क्यो बिल्कुल कुछ नही कहा? बहरहाल उनकी पत्नी बजाय सुधरने के बिगडती ही गयी थी। मुझे आज भी याद है कि वे अक्सर मुझसे पान मँगवाती थी। पान खाने का उन्हे बेहद शौक था और जब वे अपने मुँह मे पान दबाये मुझसे कहती थी—गुड्डू भैया, इस मोहल्ले मे बस एक तू ही है जो मुझे अच्छा लगता है, तो मुझे भी वे बहुत अच्छी लगती थी। हालाँकि मन-ही-मन मेरे लिए वे एक बहुत रहस्यमय महिला थी। कभी-कभी उन्हे देखकर मुझे बायस्कोपवाली उस तस्वीर की याद आ जाती थी जिसे दिखाते वक्त उस पेटी का मालिक जोर से अपनी मुट्ठी

बजाकर कहता था—और अब देखो बारह मन की धोबन, जिसका खिला है पूरा जोबन ! मैं सडक पर घुटनों के बल बैठा, उस गोल खिड़की में अपना चेहरा फँसाये बहुत ध्यान से उस लेटी हुई सुन्दर-सी औरत की तस्वीर को देखता जिसकी देह भारी तो जरूर थी लेकिन मोटी वह हरगिज नहीं थी। बस एक झीना-सा दुपट्टा लिपटा होता था उसकी देह पर और करवट से लेटी, कोहनी मोड़कर अपना सिर टिकाये उस औरत की आँखें मुझे बिजलीवाली मामी की आँखों की तरह लगती।

गुप्ताजी अब लगभग पैंतालीस साल के हो चुके थे। अपने पिता की ही तरह उन पर भी पूजा-पाठ का भूत सवार रहता। सुबह जब मेरी नींद खुलती तो बराबर वाले कमरे से पूजा की घण्टी और गुप्ताजी की आरती गाती हुई आवाज मेरे कानों में पड़ती। दस बजते ही वे बिजलीघर चले जाते और फिर देर रात को लौटते। उनकी पत्नी को देखकर मेरी नजरें झुक जाती थीं। वे लगभग पैंतीस की होंगी लेकिन हमेशा इतनी बनी-ठनी रहती थीं कि अजीब-सा लगता था। शाम को जब मैं आफिस से लौटता तो कभी-कभी वे हमारे यहाँ आ जाती थीं। उन्हें देखकर मुझे अब भी घबराहट हो आती। फिर मुझे कम्मो की याद आ जाती, खासतौर पर उन दिनों की कम्मो जो मुझे साथ लेकर सदर बाजारवाले उस डॉक्टर के पास गयी थी। कभी-कभी मुझे सुधीर मेहता की भी याद आ जाती 'बिजलीवाली मामी' को देखकर। कई बार मुझे लगता कि कहीं मैंने अनजाने ही वह गलत फैसला तो नहीं कर लिया था बचपन में—इस माहौल से फरार होने का ! क्या सचमुच सम्भव है यहाँ से भागना ? भूल पाना कम्मो को, जिसे इसी पड़ोस और इसके माहौल ने आखिरकार खत्म कर दिया। लेकिन 'बिजलीवाली मामी' जैसे-जैसे बूढ़ी होती जा रही थीं, उनका रख-रखाव, बनना-ठनना और आत्मविश्वास बढ़ता ही जा रहा था ! अब जबकि उन्हें देखकर मेरी नजरें झुक जाती थीं, वे जब आतीं तो सीधे चारपाई पर आकर बैठ जातीं, जहाँ मैं लेटा हुआ कुछ पढ़ रहा होता था। एक अजीब खिसियानी-सी हँसी के साथ मुझसे वे बातें करती रहतीं—इस कोशिश में कि मैं उनके इशारों-किनारों को किसी तरह पकड़ लूँ। उन क्षणों में मैं सोचता कि यह तो ठीक है कि उनकी यह हालत मुख्यतः उनके पति के कारण हुई, लेकिन गुप्ताजी ? आखिर क्या कारण था कि पिछले बीस सालों में वे उसी नौकरी पर रुके रहे थे। सरकारी नौकरी होने के कारण उनकी तनख्वाह जरूर अपने ग्रेड (वेतनमान) की अधिकाधिक राशि हो गयी होगी लेकिन बीस सालों में भी उन्होंने कभी मिडिल क्लास पास करने और प्राइवेट इम्तहानों के जरिये आगे पढ़ने की कोशिश क्यों नहीं की थी। उस रात जब उन्होंने अपनी पत्नी को किसी जानवर की तरह पीटा था, क्यों उन्होंने उस आदमी से कुछ नहीं कहा ? आखिर क्यों वे एक इतनी सीधी-सादी बात नहीं सुन और समझ पाये जिसे पूरा मोहल्ला धीरे-धीरे खुलेआम कहने लगा था कि 'गुप्ताजी की बीवी का काम अपने आदमी की तनख्वाह में नहीं चलता, तो बिचारी खुद भी कमाने लगी !'

आज भी जब मैं सोचता हूँ 'बिजलीवाली मामी' के बारे में तो मुझे लगता है आमतौर पर दो ही जवाब लोगों के पास हैं इस स्थिति के बारे में। पहला—भाग्य और दूसरा—अज्ञान, अशिक्षा और गरीबी जैसी सामाजिक बुराइयाँ! जिनकी जिम्मेदारी किसी पर नहीं है—उन लोगों पर तो बिल्कुल ही नहीं जो इन सबके बारे में सालों भाषण देते रहते हैं या मोटे-मोटे ग्रन्थ लिखते रहते हैं।

इस बीच दुर्भाग्य से मेरी मुलाकात एक ऐसे ही सज्जन से हुई। सुधीर ने उनका परिचय यह कहकर करवाया—इनसे मिलो भई आदित्य! मेरी तो कट गयी लेकिन तुम्हें तो बहुत पेंच लड़ाने पड़ेंगे अभी इनसे"

पता चला कि वे एक बहुत ही कुख्यात आलोचक थे जिनका नाम मैं अक्सर पत्र-पत्रिकाओं में देखता रहता था। उन्हें रू-ब-रू देखकर मैं थोड़ा निराश हुआ क्योंकि सुधीर के कहकहे ने उनके होंठों को बजाय खोलने के बिल्कुल सी-सा दिया। मेरा अपना संकट यह था कि एक तो मैंने उन्हें बिल्कुल ही नहीं पढ़ा था क्योंकि सिवाय आलोचना के उन्होंने कुछ नहीं लिखा था और आलोचना में मेरी दिलचस्पी बिलकुल ही नहीं है। विशेष रूप से साहित्य के सन्दर्भ में आलोचना की जो स्थिति हिन्दी में रही है उससे तो मुझे और भी वितृष्णा-सी होती है। बहरहाल, इसके पहले कि सुधीर स्नेहवश मेरे बारे में कुछ और कहकर स्थिति को और दुरूह बनाते, आलोचक महोदय ने पान को दूसरे कल्ले में पहुँचाकर मुझसे पूछा—लिखते हैं, क्या आप भी?

—जी'''कतई नहीं, मैंने मुस्कुराकर कहा—मैं दरअसल दवाइयों की एक कम्पनी में काम करता हूँ। सुधीर को तो—जाहिर है आप जानते ही हैं'''इनकी बातों का विश्वास बिल्कुल मत कीजिए।

—बन्धु'''आज तक नहीं किया! उन्होंने कहा और इतने ज़ोर से हँसे कि सुधीर का कुछ क्षणों पहले का कहकहा तो मरने और खत्म होने के बाद भी शर्मिन्दा-सा हो गया—ये ठहरे व्यक्तिवादी! और हम? तो आप देख ही रहे हैं कि तन ढाँकने के लिए भी गाँधी आश्रम की यह धोती और कुर्ता ही पहिने हैं''' क्योंकि? और उन्होंने आँखें फाड़कर मेरी तरफ देखा—इस समाज का यह वर्ग बनाता है, बुनता है अपने हाथों से'''जिसके लिए बापू जीवन-भर एक लंगोटी में ही घूमते रहे।

—फर्क बस इतना है आदित्य, सुधीर ने अपनी शरारती मुस्कराहट के साथ कहा था—कि बापू की लंगोटी बहुत कसी हुई थी और इनकी धोती हमेशा खुलने का बहाना ढूँढती रहती है।

हँसते-हँसते मेरी आँखों से पानी बहने लगा था। आलोचक महोदय बगलों के साथ-साथ अपने गिलास में भी झाँकने लगे थे जो खाली हो चुका था।

—खैर प्यारे''', सुधीर ने उनके गिलास में ह्विस्की डालते हुए कहा था—तन की चिन्ता छोड़ो, वह तो बिना नंगा हुए किसी काम का है ही नहीं, तुम तो फिलहाल अपना मन ढाँको! बिछा के तो देखो यार एक बार ये गुलाबी अपनी

तबियत पर···! इत्मीनान रक्खो ···मैं तुमसे बिल्कुल नही कहूँगा समीक्षा के लिए···। और वैसे भी उसका कोई मतलब नही है अब। तुम तो मुझे पहले ही दफना चुके हो और हिन्दी साहित्य का इतिहास भी तुम्हारे चेले लिख चुके हैं !

—तो क्या हुआ मित्र ! उन्होने एक लम्बा घूंट लेकर कहा—जब दफना सकते है तो क्या पैदा नही कर सकते हम तुम्हें दुबारा ?

—लेकिन यार तुम तो 'निरोध' के पक्षधर हो ! राष्ट्रीय संकट पैदा हो जायेगा। और सुधीर के उस कहकहे ने फिर आलोचक महोदय के कुर्ते और धोती—दोनो को ही खोल दिया और नंगेपन ने मुझे खामोश कर दिया।

— फिर वही बात की तुमने ? आलोचक महोदय उबल पड़े, फट पड़े, उफन गये और बिखर गये—ये तुम्हारी अपनी कुण्ठा है। साहित्य-वाहित्य की ऐसी-की-तैसी ! तुम हमेशा मौका ढूंढते हो मुझे जलील करने का। मै नही, सरकार मेरे पीछे घूमती है और उससे···उससे तुम जलते हो···

बिना किसी उकसावे के उन्होंने जितनी भी बाते कही वे एक-से-एक ओछी और इतनी भद्दी थी कि मुझे शर्म-सी आने लगी। जाहिर था कि वे नशे मे थे और शायद इसीलिए सुधीर बिल्कुल खामोश बैठे सुनते रहे उनके अनर्गल प्रलाप को। आखिरकार जब वे चुप हो गये तो सुधीर ने मुस्कराकर धीरे-से कहा—अब क्या लिखकर छपवाओगे भी ये सब बाते ?

—ये तो बन्धु समय ही बतायेगा कि मैं क्या करूंगा, और उसके बाद उन्होंने दो-तीन लम्बे-लम्बे घूंट लेकर बड़े जोर-से अपने गिलास को मेज पर रखा और बिना कुछ कहे कमरे से बाहर चले गये।

वे मुश्किल से नीचे तक ही पहुँचे होंगे कि सुधीर ने एक काफी जोरदार कहकहा लगाया—देखा तुमने ! ये तो इनका हाल है जो बाकायदा धोती पहनते हैं। जबकि आलोचना के कारखाने मे ज्यादातर काम आजकल ऐसे लौंडे-लपाड़े कर रहे हैं जिन्हें अभी जाँघिया बाँधना भी नही आता !

जब मेरी हँसी रुकी तो मैंने पूछा—लेकिन बात क्या थी ? आखिर इतने एकाएक कैसे उखड़ गये ?

भगवान जाने यार···, उन्होंने सिगरेट जलाते हुए कहा—मुझे तो अपनी व्हिस्की का अफसोस है। खैर छोड़ो··· तुम बताओ ? कहाँ रहे तुम ? सालों हो गये तुमसे मिले तो !

—हाँ, कुछ ऐसे ही रहा, मैंने व्हिस्की का एक छोटा-सा घूंट लेकर कहा—असल मे कम्पनी ने किसी शरीफ आदमी से मिलने-जुलने के काबिल ही नही छोड़ा अब तो।

—लेकिन भई मैं कहाँ आता हूँ उस श्रेणी मे ? एक और कहकहा।

मुझे कोई जवाब नही सूझा और मैंने बात बदल दी—खैर, बताइए तो क्या चल रहा है ?

—कुछ नही यार···, उन्होंने एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—जो चलता

था वो सब तो कभी का चल चुका। अब तो बस खोटा माल है सब।

—ये तो कुछ समझ में नहीं आयी बात।

—हाँ···अपनी भी समझ में नहीं आयी, वे मुस्कराये—तुम सुनाओ, तुमने तो कुछ लिखा ही नहीं इस बीच? या लिखा है?

—बिल्कुल नहीं, मैंने नजरें झुका लीं—और न ही कोई इरादा है।

—क्यों?

—यूँ ही। ख्याल ही नहीं आता अब।

—हूँअअ···, और वे चुप हो गये।

मैं सचमुच बहुत अर्से बाद मिला था उनसे। दिन में कनॉट-प्लेस में यूँ ही मुलाकात हो गयी थी। उस वक्त मैं कम्पनी के कुछ लोगों के साथ था। उन्होंने बहुत इसरार से मुझे शाम को घर बुलाया था। मैं जब पहुँचा था तो आलोचक महोदय पहले से ही वहाँ विराजमान थे।

—लेकिन यह बात ठीक नहीं है आदित्य, कुछ देर बाद उन्होंने अपने खास अन्दाज में कुछ सोचते हुए कहा था—मैं यह नहीं कह रहा कि सिर्फ लिखने के लिए ही लिखो—वह तो शायद तुम कर ही नहीं सकते। लेकिन तुम जैसे आदमी का लिखना कई अर्थों में बहुत महत्त्वपूर्ण है। अब तो कई साल हो गये मुझे तुम्हें देखते हुए। जितने डूबकर और जितना व्यस्त जीवन तुम जीते हो, कितने अलग-अलग तरह के अनुभव तुम्हें होते हैं बाहर के जीवन में···वह सब एक लेखक के लिए बिलकुल बुनियादी महत्त्व की चीज होती है। फिर तुम तो इतने संवेदनशील हो··· और इतने संयम से काम लेते हो!

मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

— हमारे यहाँ यही तो असली संकट है, उन्होंने अपनी बात जारी रखी थी—लोग रातों-रात न सिर्फ लेखक बन जाना चाहते हैं बल्कि अभिलेखों में अपना नाम दर्ज कराने की चिन्ता में पागल-से हो जाते हैं। न वे कुछ और करना चाहते, न कोई संवेदना है उनके पास—आसपास के जीवन के प्रति। और रही-सही कमी राजनैतिक विचारधाराओं के झण्डे पूरी कर देते हैं। पता नहीं क्या-क्या लिखते रहते हैं भाई लोग?

—जाहिर है लोग जो पढ़ना चाहते हैं वही लिखा भी जाता है उस समय में, मैंने धीरे-से कहा।

—हाँ, लेकिन यदि यह बात है तो फिर तो इस देश में ज्यादातर लोग सस्ती, फिल्मी और सनसनीखेज चीजें पढ़ते हैं। तुम्हारा इशारा जिस ओर है मैं समझ रहा हूँ। लेकिन कौन पढ़ता है यह सब बकवास। तुम्हें आश्चर्य होगा कि ऐसे लोग भी नहीं पढ़ते उस तथाकथित प्रतिबद्ध लेखन को जिसके बारे में लिखकर वे अपनी रोजी-रोटी और मान-प्रतिष्ठा कमाते हैं।

—हाँ, लेकिन बहरहाल हावी तो है ही उस तरह का लेखन सारे दृश्य पर।

उनके चेहरे पर बड़ी विद्रूपभरी मुस्कान छा गयी—हाँ···शायद हावी होने

के लिए ही लिखा जाता है वह सब। और कुछ रुककर वे बहुत धीरे-से बोले थे—जिन पर सिर्फ झूठ हावी है, उन्हें खुद किस चीज पर हावी हो सकने की आशा है ?

देर रात तक हम लोग बातें करते रहे थे उस विषय पर। बीच-बीच में और भी बातें निकल आतीं। सारी शाम मुझे आशंका रही थी कि शायद सुधीर अदिति के बारे में कुछ कहें या पूछें। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। और वह एक तरफ तो बहुत बड़ी राहत थी लेकिन दूसरी तरफ एक ऐसी याद थी कि फिर रात-भर मेरी नींद के सामने कुण्डली मारे बैठी रही थी।

जाहिर था कि सुधीर को मेरे और अदिति के सम्बन्धों के बारे में पता नहीं था। लेकिन मुझे उस रात यह सोचना बहुत अजीब लगा कि हम दोनों ने अलग-अलग समय में उस एक व्यक्ति को जाना था, उसके साथ रहे थे और उसे प्यार किया था जो अब हम दोनों की ही दुनिया में नहीं है। रह-रहकर मुझे अदिति का वह चेहरा याद आता रहा जो मेरी याददाश्त में सुधीर की पत्नी की हैसियत में आज भी सुरक्षित है। सुरक्षित इसलिए कि वही वह चेहरा था—उदास-सा, जिसने मेरे भीतर उस ज्वालामुखी को जगा दिया था जो न जाने कब से सोया पड़ा था। कहते हैं कि ज्वालामुखी के ढलानों पर अंगूर की खेती होती है। उस रात मुझे पहली बार लगा कि वह कहावत बिल्कुल सच होगी। जब भी मैं अपने काम, नौकरी और व्यावसायिक सफलताओं के बारे में सोचता हूँ तो मुझे खुद अपना सफर कई बार अब आश्चर्यजनक लगता है। यह ठीक है कि उसके लिए मैंने इतनी जी-तोड़ मेहनत की थी कि वे लोग तक दंग रह गये थे जो सिर्फ शरीर में से—वह कबूतर का हो या इन्सान का—केवल इतना खून निकालना जानते थे कि उड़ान सम्भव न हो सके। और भी कई कारण रहे हैं उस जी-तोड़ मेहनत के पीछे लेकिन मुझे लगता है कि एक कारण यह भी था, खासतौर पर नौकरी में आने के बाद, कि अदिति ने ही उस 'जी' को तोड़ दिया था जो भौतिक सफलताओं के साथ ही कुछ और भी चाहता है। और जब वह टूट गया तो मैंने उसे किसी लाश की तरह श्मशान तक ढोकर जलाना चाहा था। मुझे क्या पता था कि उसके साथ वह प्रेत भी मैं जला रहा था जो भौतिक संसार में आदमी को फिर कुछ नहीं करने देता। रवि ने भी बिल्कुल यही किया था शुरू से। उसे तो न जाने बचपन से ही ऐसे कितने प्रेतों ने घेर रखा होगा। 'जी' के नाम पर और उसके धोखे में अनाथालय की ढीली चारपाई पर वह जिस चीज को किसी गुड़िया की तरह सीने से लगाकर सोता होगा वह दरअसल टूटा हुआ एक काँच का टुकड़ा था जिसने धीरे-धीरे उसकी छाती और कलेजे को बिल्कुल जख्मी कर दिया था। एक वही था जिसमें इतनी हिम्मत थी कि बचपन के उन दिनों में भी, अपने छोटे-छोटे कन्धों पर वह उस प्रेत की लाश को श्मशान तक ढोकर ले गया था।

दिन बीतते गये थे। छुट्टी के दिन का मतलब मेरे लिए बिल्कुल ही बदल गया था। वे दिन जिन्होंने अभी तक की जिन्दगी में मुझे क्या कुछ नहीं दिया था, अब

एकाएक किसी नाराज बच्चे की तरह मुझसे सबकुछ छीन चुके थे। मैं निस्सहाय-सा हो जाता अब छुट्टी के किसी भी दिन के सामने। मुझे डर लगने लगा था ऐसे किसी दिन से जब मैं न अपने दोस्त के पास जा सकता था और न उस औरत के पास जिसने उस दोस्त के न रहने के बाद मुझे अपनी बाँहों में सँभाल लिया था। न मैं कुछ पढ़ पाता उस दिन, न कुछ लिख पाता—चिट्ठियाँ तक नहीं। न कहीं जाने का मन होता, न किसी को बुलाने का। न मैं बीती हुई जिन्दगी के बारे में सोचना चाहता था उस दिन और न आगे ही कुछ नजर आता था। बस सारे दिन अपने सामने मैं अकेला बैठा रहता—अपने उस 'मैं' के सामने जो अब किसी गूँगे और बहरे बच्चे की तरह मुझे यह तक नहीं समझा पाता था कि ऐसी कौन-सी चीज थी जो उसे थोड़ी देर के लिए भी खुश कर सकती थी। मैं जिसने अपनी क्षमताओं और सफलताओं से लोगों को अवाक् और आतंकित-सा कर दिया था, मैं जो अपने मोहल्ले में एक उदाहरण बन चुका था, मैं जिसे कम्पनी बेहिचक कुछ भी दे सकती थी और मैं जो बहुत समझदार था, व्यवहारकुशल और सफल आदमी—अपने उस 'मैं' के सामने इतना शर्मिन्दा हो जाता था कि कुछ कहना या पूछना तो दूर, मैं उसके सिर पर हाथ रखकर खामोशी से भी कोई तसल्ली उसे नहीं दे सकता था। जब भी कोई छुट्टी का दिन आता, मुझे लगता मैं अपने-आपको धोखा दे रहा हूँ। बिल्कुल झूठ-मूठ की दुनिया में जी रहा हूँ मैं। भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे अभी तक मैं भागता चला जा रहा हूँ, इसके बावजूद कि उनकी निरर्थकता मैं रवि के सन्दर्भ में अच्छी तरह देख चुका हूँ। जब मैं बहुत हिम्मत करके अपने-आपसे पूछता कि आखिर मैं क्यों कर रहा हूँ ऐसा तो अपने चेहरे से मुझे अपने सवाल का जवाब मिल जाता। ऐसा घबराया हुआ और डरा हुआ होता मेरा वह चेहरा—सिर्फ एक दिन की बढ़ी हुई दाढ़ी के कारण, जिसे मैं छुट्टी के दिन बनाता नहीं था, कि मैं चुपचाप आइने के सामने से हट जाता। जैसे-जैसे सूरज आसमान में आगे बढ़ता, साये लम्बे होते जाते—बहुत दूर खड़े हुए लोगों के साये जो एक भ्रम-सा पैदा कर देते और उसके कारण मैं बुरी तरह से छटपटाता—सायों के पीछे, बहुत दूर खड़े हुए उन लोगों तक पहुँचने के लिए।

विल्मा की चिट्ठी ने मुझे दुनिया में वापिस खींचा था। अदिति के जाने के लगभग साल-भर बाद एक दिन डाक में वह बड़ा-सा लिफाफा आया जिसके ऊपर उसने मेरा पता लिखने के साथ ही अपने खास-अन्दाज में लाल स्याही से बड़े-बड़े अक्षरों में एक कोने में लिख रखा था—"लव इनसाइड—हैण्डल विद केयर" (अन्दर प्यार है—सावधानी से पकड़िए)। लिफाफे के अन्दर हमेशा की तरह कुछ तस्वीरें थीं—उसकी और उसकी कुछ पेंटिंग्स की। एक काफी लम्बी चिट्ठी थी, उसी बड़ी-बड़ी लिखावट में और उसकी मजेदार अंग्रेजी में—

मेरे प्यारे शर्मीले प्रेमी,

तुमसे मिले और तुमसे इतना प्यार करते हुए अब मुझे कितने साल हो गये? मैंने पिछली रात हिसाब लगाया—पूरे आठ साल। सुन्दर तो

मैं अभी भी हूँ जैसाकि वह जवान और उम्र में मुझसे छोटा पेण्टर लडका मुझसे दिन मे एक दर्जन बार कहता है, जिसे मैंने कुछ महीनों से अपने स्टूडियो मे रख रक्खा है। लेकिन अब मैं उतनी सुन्दर नही बची जितनी तुमने देखी थी और जितनी मैं तुम्हारे लिए अपने-आपको अब भी बना सकती हूँ—सिर्फ तीन हफ्ते मे। मैं इधर शराब बहुत पीने लगी हूँ और जब मुझे नशा हो जाता है तो दिल करता है कि कोई मुझे खूब प्यार करे। वह पेण्टर लडका इसीलिए मैंने बुला लिया। जब नशा नही होता और अपने काबू मे रहती हूँ तो लगता है कि तुम मुझे बहुत प्यार करो और यह शिकायत भी करो कि मेरी कमर अब मोटी और थुलथुल होती जा रही है। लेकिन तुम तो किसी प्राचीन भारतीय योगी की तरह पता नही किस तपस्या मे लीन हो। और तुम्हारी प्रतीक्षा मे मैं मोटी होती जा रही हूँ, बदसूरत और शराबी। जबकि एक प्रसिद्ध कहावत कहती है कि प्यार लोगों को सुन्दर बनाता है।

लोगो को प्यार के बारे में कुछ भी नही मालूम आदित्य? करते ही नही प्यार वे। अब सोचो यह पेण्टर लडका जो रात को पहले तो किसी बन्दर की तरह मेरे ऊपर चढ़कर मुझसे खेलता रहता है और उसके बाद किसी शिशु की तरह मेरे स्तन से मुँह लगाये ही चिपटकर सो जाता है—उसे भी यदि मैं कल सुबह भगा दूँ तो वह चुपचाप चला जायेगा। आखिर मेरे जैसी लडकियो की दुनिया मे कोई कमी तो है नही! लेकिन जो बात मुझे ज्यादातर उदास और कभी-कभी बहुत नाराज कर देती है वह यह है कि यह दयनीय हरामी जो प्यार करते वक्त मुझसे बिल्कुल कुछ भी नही कहता, उस समय भी कुछ नहीं कहेगा, न रोये-चिल्लायेगा, न मारने-मरने की बात करेगा जब मैं इसे अपने स्टूडियो से पेण्ट की किसी खाली और पिचकी हुई ट्यूब की तरह बाहर फेंक दूँगी। शायद ज्यादातर आदमी ऐसे ही होते हैं। औरत की जाँघो के बीच दुनिया की सबसे रहस्यमय दरार को वे सरकारी मिल्क बूथ की खिडकी-भर समझते है—जहाँ से वे सिर्फ एक कार्ड के सहारे बिना कुछ कहे अपनी रोजमर्रा की जरूरत की एक चीज ले जाते हैं। और प्यार? अगर घोड़े की लीद भी है तो उनकी बला से।

हर बार जब मैं इस तरह के मर्दों से मिलती हूँ तो उनकी नपुसकता पर तो मुझे गुस्सा आता ही है, उससे ज्यादा तुम पर आता है। जब तुम्हें अच्छी तरह मालूम है कि एक लड़की तुमसे इतना प्यार करती है और तुम भी उससे नफरत नही करते तो फिर क्यों तुम इतनी दूर बैठे हो? न सही शादी लेकिन कम-से-कम मुझे अच्छी तरह

प्यार करने के लिए तो तुम कभी-कभी आ ही सकते हो। या मुझे बुला सकते हो। मैं जानती हूँ कि मेरी सबसे बड़ी समस्या यह है कि अपनी बात मैं कभी भी यथोचित गम्भीरता से नही कह पाती। लेकिन तुम मेरे एक ही और अकेले प्रेमी हो और यह बात मैं मजाक में नही कह रही। वैसे मैं तुम्हारे बिना बुलाये भी भारत और तुम्हारे पास आ सकती हूँ लेकिन क्योंकि तुम कभी यह नही कहते इससे मुझे लगता है कि कोई और लडकी तुम्हे ऐसा नही करने देती। और इसी चक्कर में मेरी सुन्दरता खत्म होती जा रही है कि तुम अभी खाली नही हो। यह कहना तो बेवकूफी ही नही बुद्धूपना भी होगा कि मैं तुम्हे प्यार करना बन्द कर दूं क्योंकि उसका कोई भी इस तरह का कारण या परिणाम नही है या हो सकता है। डैडी कहते थे—प्यार बिल्ली के उस छोटे बच्चे की तरह होता है जो टोकरी मे अपनी आँखें बन्द किये पडा रहता है—सारे खतरों और अन्देशो के सामने। इसीलिए मुझे अब समझ मे आया कि बिल्ली के छोटे-छोटे बच्चे क्यो इतने सुन्दर और प्यारे लगते है। जो औरत प्यार करती है वह भी ऐसी ही होती है—उतनी ही भोली, सुन्दर, प्यारी और असहाय। वे सब लोग जो उसका फायदा उठाते है, बहुत ही घटिया किस्म के हरामी होते हैं और दुनिया मे उनकी भरमार है—हर रंग और साइज में वे टँगे रहते हैं दुकानों पर। मैं आश्वस्त हूँ कि भारत मे भी उनकी कोई कमी नही होगी ''लेकिन तुम जैसे बिल्ली के बच्चे भी तो वहाँ हैं—जिनकी आँखें तो खुल जाती है लेकिन उसके बाद भी वे ऊन की गेंदो से खेलते रहते है। तुम्हारी ऊन की गेंद किस रंग की है, प्रेमी बालक?

अब एक जरूरी बात—मैं कुछ दिनों के लिए फिर से तुम्हारे संग रहना चाहती हूँ। यदि कोई और लडकी तुम्हारी जिन्दगी मे है भी तो उसे थोड़ा-सा धोखा मेरे लिए तुम्हे देना पड़ेगा। पिछले कई महीनों से मुझे तुम्हारी बहुत याद आती है। इसलिए भी कि मेरी देह अब सचमुच ढलने लगी है और मैं चाहती हूँ कि मैं और तुम एक बार इसको जी-भर के भोग तो लें। फिर भटकने के लिए सिर्फ मन रहेगा! और उसका इलाज तो न हिप्पोक्रेटीज के पास था, न सोफोक्लीज के, न अरस्तू के और न मेरे या तुम्हारे पास।

जो पेन्टिग्स मैंने इस बीच बनायी उनकी तस्वीरें भेज रही हूँ। तुम खुद देख सकते हो कि मैं कितनी बेकार होती जा रही हूँ।

जब मैं भारत आऊँगी तो हम आगरा मे उस होटल के उसी कमरे मे रहेंगे जहाँ तुमने मुझे उस रात प्यार किया था। वह कमरा मेरा घर है। और तुम मेरे प्रेमी, मेरे मर्द और वह व्यक्ति जिसके

लिए मैं पैदा हुई थी। ये बातें तुम्हें किसी पागल लड़की की लग सकती हैं। लेकिन और प्यार भी कौन कर सकता है किसी ऐसी लड़की के सिवा ?

तुम्हें चिट्ठी लिखते-लिखते मैं इतनी उत्तेजित हो चली हूँ कि इसी क्षण अपने-आपको खत्म कर सकती थी यदि मुझे उस क्षण का इन्तजार नहीं होता जब तुम मुझे एक आखिरी बार और प्यार करोगे…

यदि इस वक्त तुम मेरे पास होते तो मैं तुम्हें कच्चा चबा जाती—प्यार में भी और गुस्से में भी—

तुम्हारी, विल्मा।

पुनश्च :

प्यार के बारे में कभी सोचना नहीं चाहिए आदित्य ! क्योंकि बिल्ली का बच्चा जब बड़ा हो जाता है तो बहुत चालाक और गन्दा हो जाता है। —विल्मा

वह चिट्ठी पढ़कर मैंने मेज पर रख दी। लगा जैसे विल्मा कमरे में घूम रही है—लगातार बातें करती हुई। कभी ड्रेसिंग टेबल के आइने के सामने खड़ी होकर तरह-तरह से अपने को निहारते हुए, कभी मेरे सामने खड़े होकर अपने होंठों पर लिपस्टिक लगाते हुए और कभी बिल्कुल सादे लेकिन तपते हुए होंठों से मुझसे वह सब फिर से कहती हुई। कितने ही दिनों और हफ्तों उस चिट्ठी ने मुझे किसी वीरान बावड़ी की तरह बारिश-सा घेरे रखा। छोटी-छोटी बूँदों और बीच-बीच में उन तेज महीन फुहारों से भरा वह बरसता हुआ सन्नाटा, ठहरे हुए पानी की निचली सतह से कभी अदिति को उबार लाता, कभी सुधीर को, कभी मेघना को, कभी रवि को और रह-रहकर खुद मुझे भी। फिर वह बरसात मुझसे अपनी एकरस आवाज में किसी संन्यासी की तरह कहती—

रुको मत
ठहरो भी नहीं
कोई नहीं ठहरा
मैं भी नहीं ठहरूँगी
बस, धरती जरा नम हो जाये
फिर मेरा क्या काम ?
प्यार ही है धाम
लेकिन तब तक तो
बरसना है
बूँद-बूँद टपकना है
खाली हो जाना है

क्योंकि
भरी रहूँगी अगर
तो अन्त कहाँ डगर?
और अन्त नहीं यदि
तो प्यार कहाँ कभी?
बरसते रहो तुम
क्योंकि एकाएक
सूरज चमकेगा
और वह इन्द्रधनुष
आकाश के आर-पार
तन जायेगा
कोई नहीं पूछेगा फिर
तुमसे
कि प्यार क्या है?

विल्मा को आखिरकार मैंने वह खत लिख दिया था। जिस दिन उसे वह पत्र मिला, उसी रात वह स्पेन से चल दी थी। चलने से पहले उसने कम्पनी के फोन पर मुझसे बात की थी और बताया था कि उसकी फ्लाइट सवेरे चार बजे पालम पहुँचनेवाली थी।

—इस हवाई अड्डे से चलकर हम आगरा आठ बजे तक तो पहुँच ही सकते हैं! उसने फोन पर पूछा था—है न? तुम कमरे का रिजर्वेशन अभी फोन करके करवा लो। कमरा नम्बर 112 है! नोट कर लो! 112। बस'''अब कल सुबह बात करूँगी।

अगली सुबह जब वह हवाई जहाज से उतरी तो मुझे देखकर पागलों की तरह दौड़ने लगी। पागलों की तरह नहीं बल्कि सूरज की तरह क्योंकि सिक्योरिटी चैक से जैसे ही वह बाहर आयी तो आसमान सुर्ख-सा हो गया। कस्टम कर्मचारी और उसी हवाई जहाज की दो परिचारिकायें हम लोगों को देखकर शर्म के बावजूद मुस्कराने लगी थी। विल्मा ने मेरा चेहरा अपने होंठों की लिपस्टिक से रँगने के बाद पास खड़ी उन परिचारिकाओं से कहा था—लुक एट हिम नाउ!! इजण्ट ही द वे आइ वाज टैलिंग यू'''? (अब देखो इसकी तरफ! नहीं है क्या वैसा, जैसा मैंने तुम्हे बताया था?)

वे दोनों लड़कियाँ हँसते-हँसते पागल हो गयी थी। विल्मा मुझे देखती खड़ी थी—सूरज की किरणों की तरह।

—मैंने असल में उसी दिन अपना टिकिट खरीद लिया था जिस दिन तुम्हें वह चिट्ठी डाली थी—गाड़ी में बैठकर उसने मुझसे कहा था—क्या तुम सोच सकते हो कि मुझ जैसी लड़की कभी रो पड़े! लेकिन उस रात यही हुआ।

मैं उसकी तरफ देखकर मुस्करा पड़ा।

—अब तुम आगरा पहुँचने से पहले जल्दी-जल्दी मुझे सबकुछ बता दो और अपनी आँखें सड़क पर रखो, वह हँसने लगी—अब मैं घूरने लायक नहीं बची !

—सबकुछ मतलब ?

—सबकुछ मतलब सबकुछ, चहचहाते हुए उसने कहा—क्या-क्या हुआ जिन्दगी में। मेरी तुम्हें कितनी याद आयी। जब याद आयी तो क्या किया ? और वे ऊन के गोले जिनसे तुम इस बीच खेलते रहे, वगैरा-वगैरा···

हम दोनों हँसने लगे। आगरा तक फिर बातें होती रहीं। वह खोद-खोदकर कितनी ही बातें पूछती रही और मैं उनके जवाब देता रहा। उसमें अदिति के बारे में भी बहुत-सी बातें शामिल थी। बहुत दिनों बाद मैंने किसी से इतनी बातें की थी। लगा था जैसे मैं रवि से बात कर रहा हूँ। बल्कि शायद यह कहना भी ठीक नहीं। मैं विल्मा से ही बातें कर रहा था क्योंकि उस जैसा दोस्त मेरी जिन्दगी में आज तक कोई और नहीं है। केवल एक वही था जिसके पास न जाने कैसे उस तहखाने की एक चोर-चाबी थी जिसे मैं भी अब खोलते हुए घबराता था। अपनी छेड़-छाड़, हँसी-मजाक और समझभरी खामोशी की सीढ़ियों पर से, बातों-ही-बातों में वह मेरा हाथ पकड़कर उस तहखाने तक पहुँच गयी थी जहाँ सबकुछ जस-का-तस रक्खा था, अदिति के जाने के बाद। मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ था कि कोई ऐसा व्यक्ति जिसके संग बस कुछ देर का साथ रहा हो, कैसे उन सब बातों को मेरे भीतर से एक के बाद एक निकालता जा रहा था जो नितान्त व्यक्तिगत थी। बचपन में एक बार मैंने घर के पीछेवाली गली में एक कुआँ साफ होते देखा था। जिस कुएँ से हम सब बच्चे इतना डरते थे और जिसके बारे में तरह-तरह की कहानियाँ मोहल्ले में प्रसिद्ध थी, उसी में दो-तीन आदमी बहुत ही मामूली-सी रस्सीवाली सीढ़ी लटकाकर उतर गये थे और शाम तक उन्होंने कुँआ बिल्कुल साफ कर दिया था। कीचड़ के उस ढेर में हम लोगों को न जाने क्या-क्या मिला था—रेजगारी, खिलौने, वे गेंदें जो पिट्टू खेलते-खेलते उसमें चली जाती थी। चूड़ियों के टुकड़े और न जाने क्या-क्या।

शाम होने तक विल्मा ने भी बिल्कुल वैसा ही किया था। आगरा पहुँचकर हम लोग जब होटल के उसी कमरे में पहुँच गये तो विल्मा ने सबसे पहले बहुत सारे फूल आर्डर किये। लाल, देसी गुलाब के फूल जो उसने फिर कमरे में हर जगह सजा दिये और जब हाउसकीपर चली गयी तो उसने कमरे के बीचों-बीच खड़े होकर मुझे अपनी बाँहों में भर लिया और मेरा चेहरा अपने होठों पर झुकाती हुई बोली—अब तुम्हारी बारी है चूमने की। मुझे तब तक चूमते रहो जब तक कि मेरा दम घुटने लगे ·

—मुझे मालूम था कि ऐसा ही कुछ हुआ होगा तुम्हारे साथ, कुछ देर बाद बिस्तर पर मेरी गोद में लेटे हुए उसने बहुत धीमी और ठहरी हुई आवाज में कहा था—जब इन्सान बहुत प्यार करता है तो उसके साथ ऐसा ही होता है। हालाँकि हम लोगों को लगता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए। लेकिन वह लालच है। और

लालच उस कुत्ते का नाम है जो छोटे-छोटे बिल्ली के बच्चों को खा जाता है।

कमरे की खामोशी में विल्मा की बात बहुत देर तक गूंजती-सी रही।

—यह औरत··· ऐडिटी··· यही नाम है न उसका? कुछ देर बाद उसने उसी आवाज में कहा— बहुत सुन्दर होगी न! और उसके बाद वह उठकर बैठ गयी और धीरे-धीरे मेरे बालों को सहलाते हुए बोली—तुम्हें इतना उदास नहीं होना चाहिए। तुम अच्छी तरह जानते हो कि उसने जोकुछ भी तुम्हे दिया है वह जिन्दगी में कोई दूसरा कभी नहीं दे सकता। ज्यादातर लोगों को तो यह विश्वास ही नहीं है कि जीवन में एक व्यक्ति ऐसा भी आता है जो सिर्फ उपहार देने ही आता है—सान्ता क्लॉस की तरह। और हमें उस उपहार की खुशी होनी चाहिए न कि सान्ता के चले जाने की। नहीं क्या?

—हाँ···लेकिन···, मैंने कहना चाहा पर उसने बीच में ही मेरी बात काट दी।

—बस··, सारी मुसीबत की जड़ एक यही शब्द है 'लेकिन'! क्योंकि यह आदमी के दिमाग की उपज है··, वह एकाएक उत्तेजित हो गयी—डर के सामने यह आदमी की खिलौनेवाली बन्दूक है। लेकिन यह भी, लेकिन वह भी, लेकिन ऐसा क्यों नहीं, लेकिन फिर क्या होगा, लेकिन आखिरकार··वह सब बकवास सिर्फ इन्सान ही करता है। देखी है कभी तुमने किसी पेड़-पौधे पर इस शब्द की पत्ती? सुना है कभी यह शब्द किसी जानवर की गुर्राहट में? उसे क्या मतलब इस बेकार के शब्द से। उसे डर थोड़ी लगता है जिन्दगी से? यह तो बस आदमी का बच्चा है जिसकी लंगोटी हर थोड़ी देर में गीली हो जाती है। मुझे बताओ तुम, दिमाग के अलावा और क्या है जो आदमी को डराता है?

—लेकिन···, मैं मुस्कराया—दिमाग हिम्मत भी देता है, सोचने-समझने की शक्ति भी···

—बिल्कुल गलत! उसने अपना सिर झटकते हुए कहा—जो खुद डर की फिक्र में रहता है, हमेशा बचाव के रास्ते ढूँढता रहता है, जिसका काम ही आसानी की तलाश है वह क्या देगा हिम्मत? और सोचने-समझने की ताकत। कितना घटिया लतीफा है यह! हिटलर के पास यही ताकत तो थी और···और यहूदी तो अपने दिमाग और उसकी ताकत के लिए प्रसिद्ध हैं दुनिया में। किसी भी क्षेत्र को ले लो—कला, साहित्य, संगीत, विज्ञान, जो कुछ तुम चाहो, हर जगह यहूदियों का बोलबाला है लेकिन क्या दिमाग के कारण? दिमाग के कारण तो वे चूहों की तरह मारे गये थे···दिमाग ही है जिसने आइन्स्टीन से एटम बम बनवाया। हालांकि वह बूढ़ा यहूदी आखिरी दम तक अपने दिल की बात कहते-कहते खत्म हो गया कि उससे वह बहुत बड़ी गलती हुई है।

बोलते-बोलते उसका चेहरा लाल सुर्ख हो गया था और आँखें कोयलों की तरह दहकने लगी थीं। कुछ क्षणों तक वह कहीं दूर कुछ देखती रही और फिर नफरत से उबलती हुई आवाज में उसने कहा—दिमाग! दिमाग तो दलाल है

शरीर, मन और आत्मा का ! एक बहुत ही बूढ़ा, पोपला, खूसट दलाल जो इन तीनों सुन्दर चीजों को बिल्कुल रण्डी बना देता है। ऐसी रण्डियाँ जिनके साथ कुछ भी किया जा सकता है···और एदित्या ! रण्डियाँ खत्म हो जाती हैं—धन्धे से बाहर हो जाती हैं···भयानक योनि रोग उन्हें मार देते हैं लेकिन दलाल···कभी नहीं मरते। इसीलिए उनकी इतनी महिमा है दुनिया में !

मैं चुपचाप उसे देखता रहा। उसके बातूनीपन ने अचानक एक आग-सी जला दी थी जिसके पीछे सुर्ख-सुनहरी लपटों की रोशनी में एक ऐसी लड़की खड़ी थी जिसे मैं अभी तक बिल्कुल नहीं जानता था एक बहुत भोली, ईमानदार और बहादुर लड़की जो इतनी बड़ी दुनिया में बकौल उसके, सिर्फ एक छोटे-से उपहार का इन्तजार कर रही थी···

रात को हम लोग ताजमहल देखने गये थे। हल्की-सी चाँदनी और बहुत-से बादल थे उस रात और उनके कारण एक धीमी-सी दूधिया रोशनी में सबकुछ नहाया हुआ था। वह चुपचाप मेरी गोद में बैठी रही थी। देर रात तक हम दोनों वहाँ रहे थे। उसने कुछ भी नहीं कहा मुझसे उस सारे दौरान, बस रह-रहकर उसके होंठ मेरे होंठों से कुछ कहते। हर बार वह कोई अलग बात होती···

होटल वापिस आकर वह बिल्कुल बदल गयी। जाने से पहले उसने रूम सर्विस से शैम्पेन की दो बोतलों के लिए कहा था। सोफे के सामनेवाली मेज पर उन्हें बड़ी-सी आइस-बकेट में बर्फ में दबी देख वह किसी बच्चे की तरह खुश हो गयी—आह ''दैट्स ग्रेट। जस्ट द वे आइ हैड थाट, एडी ! (आह···यह तो महान है'' बिल्कुल जैसा मैंने सोचा था !) और उसने खड़े-खड़े ही अपनी ऊँची एड़ीवाली सैण्डिल्स को एक-एक करके उतारा और लापरवाही से इधर-उधर फेंकते हुए बोली—नाउ जस्ट लैट मी ड्रैस अप फॉर द ऑकेजन, लवर बॉय। (अब बस मुझे जरा इस खास मौके के लिए कपड़े पहन लेने दो, प्रेमी बालक !), और हँसते हुए वह बाथरूम में चली गयी। कुछ देर बाद वह नहाकर जब बाहर निकली तो उसने कुछ भी नहीं पहन रक्खा था। मुस्कराते हुए किसी फैशन मॉडल की तरह वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी और बोली—अब पहले मुझे यह बताओ कि मैं अब भी सुन्दर हूँ, फिर शैम्पेन खोलो ! और खबरदार ! जो उसका कॉर्क मुझे मारा तो ! और हँसती हुई वह मुझसे चिपट गयी।

कुल मिलाकर हम लोग तीन हफ्ते उस कमरे में रहे। विल्मा सचमुच घर की तरह रहती थी उस कमरे में। अपने ढंग से उसे सजाना, और अपने ढंग से रहना। दिन-भर वह मुझसे बतियाती रहती। दुनिया-भर की बातें उसके पास थीं मुझे बताने के लिए। शाम और रात के उस हिस्से में वह बिल्कुल बिल्ली के बच्चे की तरह अपनी आँखें मूँदे मेरी गोद में पड़ी रहती। होटल वापिस आकर उसे सँभालना मुश्किल होता। एक नशा-सा उस पर सवार रहता और कभी-कभी जब सुबह हो जाती तो वह उछलकर बिस्तर से कूद जाती और हँसते हुए खिड़कियों के पर्दों को समेटकर कहती—लैट द सन ऑलसो सी द डीड्स ऑव हिज सन ! (जरा सूरज

को भी तो देखने दो अपने बेटे की करतूत !)

चलते वक्त हवाई अड्डे पर उसने मुझसे कहा था—छीन-झपटकर मैंने ले ही लिया अपना उपहार एक बार और ! तुम बहुत अच्छे सान्ता क्लॉस हो। ऐसे ही रहना'''समझे ? और फिर पागलों की तरह वह मुझे चूमने लगी थी—हो सकता है मेरा मन फिर ललचा जाये ! मैं असल मे दिमाग से काम नहीं लेती न। लेकिन खैर'''मैं आऊँ या न आऊँ तुम ऐसे ही बने रहना। मेरे जैसे बहुत-से लोग हैं दुनिया मे। जब भी तुम्हें कोई मुझ-जैसा मिले, उसे निराश मत करना। अब जाओ तुम''', और वह चली गयी थी।

मैं वही खडा रहा था जब तक कि उसका जहाज उड नही गया। सुबह के फीके अँधेरे में वहाँ खडा मैं जोकुछ भी सोचता रहा था वह अब भी कई बार मुझे याद आता है।

यूँ भाग्य के लिए कुछ भी छोड़ने की न तो मेरी जिन्दगी मे कोई फुर्सत ही रही है और न ही उसकी कोई जरूरत या ख्याल कभी मेरे सामने आया। लेकिन कुछ अर्थों में मैं अपने-आपको एक बहुत भाग्यशाली व्यक्ति मानता हूँ। अब मैं तीस साल का होने आया। लगभग आधी जिन्दगी बीत चुकी है। वक्त का आधा पहिया घूम चुका है। मैं नही जानता कि आगे क्या है जीवन मे और न ही मुझे उसकी ऐसी कोई चिन्ता है। दुनिया की नजरो मे मेरे पास सबकुछ है बल्कि शायद थोडा ज्यादा ही। जब मैं खुद अपने-आपको देखता हूँ तो लगता है कि भौतिक स्तर पर जोकुछ भी है—कम या ज्यादा, वह किसी और से सम्बन्धित है, मुझसे नही। किसी ऐसे आदमी से सम्बन्धित है वह सब जो फरार होना चाहता था—कही से भागकर कही पहुँचना चाहता था। वह उसकी लड़ाई थी क्योंकि वह लड़ सकता था। शायद अब भी लड़ सकता है क्योंकि जिन्दगी ने सिवाय इसके उसे कुछ सिखाया ही नही। यह ठीक है कि हर व्यक्ति को बुनियादी सुख और सुविधाएँ दिलाने के लिए बहुत सही और बड़े वस्तुपरक कारण है दुनिया मे। बहुत-से ऋषियों और चिन्तकों का सरोकार है उसके पीछे, प्रकृति का एक अत्यन्त स्वस्थ और शुभ संकेत भी है। लेकिन इसको क्या कहिए कि दुनिया इतनी बड़ी है और विशाल कि ऋषि-मुनि और चिन्तक तो छोड़िए खुद सूरज भी एक नियत समय मे पूरी दुनिया तक नही पहुँच पाता। जब दुनिया का एक हिस्सा उसकी रोशनी और उसके प्रताप के सामने नतमस्तक होता है तो उसी समय मे उसका एक दूसरा, उतना ही बड़ा हिस्सा, अँधेरे की जालिम हुकूमत से पनाह माँग रहा होता है या सो रहा होता है—बेखबर। अँधेरा उनके लिए यदि अज्ञान भी है तो भी उसका एक पक्ष वरदान होता है – नींद या किसी भी तरह से छुप सकने की सुविधा या उसकी सम्भावना। बहरहाल यह तो भौतिक जीवन की बात है जिसकी पहली और अन्तिम शर्त सिर्फ जीना और लड़ना है। इन्सान के लिए भी—बावजूद उस दिमाग के जो उसे पेड़-पौधों और जानवरो से अलग करता है।

मैं बात कर रहा था अपने उस 'मैं' की जो लड़ना तो दूर, कुछ माँग भी नही

सकता किसी से। जो सिर्फ अकेला, एक सन्नाटे में बैठा रहता है—सान्ता क्लॉस के इन्तजार में या किसी भी ऐसे व्यक्ति की राह देखता जो उसे बिना किसी कारण के कोई उपहार देगा। एक ऐसा उपहार जो फिर उसे सर्वशक्तिमान कर देगा, अजेय और नश्वर! सच कहूँ तो मुझ-जैसे भाग्यशाली बहुत कम होंगे। इतने उपहार मिले हैं मुझे कि उनके रहते मुझे यह जीवन बहुत छोटा और अधूरा लगता है। रवि, कम्मो, अदिति, बिन्मा और यहाँ तक कि मेघना भी—इन सब की याद ऐसे पारस पत्थर हैं कि भौतिक जीवन तो छोड़िए, मुझे अपने आत्मिक और आध्यात्मिक जीवन में भी कोई कमी नहीं महसूस होती। मुझे नहीं मालूम कि आदि शंकराचार्य ने क्या कहा है अपने उपदेशों में। मुझे सिर्फ इतना-भर पता है और याद है कि जब आदि शंकराचार्य की माँ का देहान्त हो गया था तो उनके गाँव के लोगों में सिर्फ दो व्यक्ति ही ऐसे थे जो उनके शरीर की अन्तिम क्रिया के लिए सहयोग देने हेतु आगे आये थे। उनमें से एक आदि शंकराचार्य की माँ के सिरहाने खड़ा था और दूसरा पैरों की तरफ। उन दो व्यक्तियों के कारण आज दो अत्यन्त प्रतिष्ठित जाति समुदाय मौजूद हैं। यह एक अलग बात है कि आदि शंकराचार्य, जो बहुत छोटी उम्र में ही प्रकाण्ड विद्वान होकर अपने गाँव लौटे थे, उन्होंने अपनी जननी के शव का विधिवत् संस्कार नहीं किया। उन्होंने अपनी माँ के मृत शरीर को काट-काट कर अपने घर के आँगन में ही दफना दिया था। मुझे नहीं मालूम कि ऐसी स्थिति के रहते किसी व्यक्ति के लिए ज्ञान, चिन्तन, दर्शन और धर्म की क्या औकात हो सकती है। मुझे तो बस इतना पता है कि जब मेरे सामने कोई भी ऐसा व्यक्ति आता है जो मुझे, अम्माँ, बाबा, रवि, दादाजी, उस्ताद, मीना, मेघना, अदिति या बिस्मा की याद दिला देता है तो एकदम मुझे ख्याल आता है कि मेरे पास उसके लिए एक उपहार है। जाहिर है, ऐसे लोग बहुत नहीं मिलते। ज्यादातर तो लोग मिलते हैं हाथ में कोई झण्डा लिये, बगल में कोई मोटा-सा ग्रन्थ दबाये, शराब पीकर चीखते हुए, किसी चीज के लिए चन्दा माँगते हुए, किसी औरत को पीटते हुए, किसी अनब्याही लड़की का पेट गिरवाते हुए, राष्ट्रभाषा की फिक्र में फ्रेंच सीखते हुए, पुरानी भारतीय वर्ण-व्यवस्था के खिलाफ नारे लगाते हुए लेकिन अपने बीवी-बच्चों से उसकी दुहाई माँगते हुए, अंग्रेजी में रोते हुए कि उन्हें हिन्दी से प्यार है, सिवाय ब्राह्मणों के इस मुल्क में हर जाति और समुदाय को अल्पसंख्यक घोषित कर उन्हें 'भारतीयता' के अजायबघर में रखते हुए, हर वह चीज जो मन और देह पर एक घातक बीमारी की तरह मौजूद है न सिर्फ उसे छिपाते हुए बल्कि अखबारों में उसका महिमागान करते हुए, विदेशी भीख से अपने-आपको समृद्ध करते हुए और लाल रंग को लेकर अपने अज्ञान में संकटमोचन, पवनसुत, मारुति और वानरश्रेष्ठ रामभक्त हनुमान को भूलते हुए...

ऐसे लोग जब मिलते हैं तो मैं अपनी ही शर्म में चुप हो जाता हूँ। अमूमन मेरी कोशिश रहती है कि जितनी जल्दी हो सके मैं उनके सामने से हट जाऊँ। यदि यह सम्भव नहीं हो पाता तो मैं कोशिश करता हूँ बहुत ध्यान से उनकी बातें सुनने

की। बड़ी जल्दी अक्सर, सुधीर मेहता के शब्दों में—"उनकी धोती खुल जाती है" और फिर मुझे लगता है कि इन बेशर्म, बेईमान और झूठे लोगों से लड़ना भी मेरा उतना ही आवश्यक धर्म है जितना कि कुछ लोगों को वे उपहार देना। मेघना ऐसी बातों को लेकर मुझसे कहती है कि मैं टैक्टलैस (युक्तिहीन) हूँ और व्यवहार-हीन भी। उसे अभी तक मेरा एकाएक गुस्से से उबल पड़ना समझ में नहीं आता। कई बार इससे उसे तकलीफ पहुँचती है। मेरे कारण उसे कई बार शर्मिन्दा होना पड़ा है—यह बात भी उसने मुझे बतायी है। लेकिन मेरे लिए उसे यह समझाना असम्भव है। उन दोगले लोगों को देखते ही मेरे भीतर एक आग-सी जलने लगती है—मुझसे एक आहुति-सी माँगती हुई। और यह भी सच है कि अक्सर उस आग में मैं खुद अपने-आपको ही होम करता रहता हूँ।

बिल्मा के जाने के बाद आसमान निखर-सा गया था। बारिश के बाद उसके धुले हुए चमकीले नीलेपन में जब मैंने अपने सामने फैली जिन्दगी को देखा तो मुझे लगा, एक दूसरा मौसम शुरू हो गया है। बाबा ने एक दिन मुझे बताया कि उन्होंने अन्ततः गांव वापिस जाकर रहने का फैसला कर लिया है।

—शहर में जिस काम के लिए आया था वह तो अब पूरा हो ही गया, उन्होंने धीरे-से मेरे सिर पर हाथ रखकर कहा था—तुम अब हर तरह से समर्थ हो। रही शादी तो जब तुम्हारा मन हो तब करना। तुम्हारी अम्माँ जरूर दुखी रहती है उसे लेकर लेकिन हम लोगों की खुशी है तो तुम्हारी ही खुशी से।

अम्माँ ने चलते वक्त मुझसे वादा करवा लिया था—बेटा जब ब्याह करे तो मुझे बता जरूर देना। तुझे जैसी शादी करनी हो कर लियो लेकिन बहू जब घर आये तो उसे यह नहीं लगना चाहिए कि घर में कोई है ही नहीं उसका लाड़-प्यार करनेवाला। और तू···आता-जाता रहियो गाँव में हम लोगों के पास। तू छोटा होता तो मैं तो तुझे अपने संग ले जाती।

अम्माँ-बाबा को रेलगाड़ी में बैठाकर मैं घर वापिस आ गया था। एक कमरे का वह घर जिसमें जिन्दगी के पहले अट्ठाइस साल बीते थे। वह कमरा अब बिल्कुल खाली था। कुछ देर बाद उसमें ताला डालकर चाबी मुझे मकानदार को दे देनी थी। मैं चुपचाप कमरे के बीचोंबीच खड़ा चारों तरफ ध्यान से देखता रहा था कि कहीं कुछ छूट तो नहीं गया। हजारों चीजें उस कमरे की दीवारों, कोनों और छत पर टँगी थीं जिन्हें मैं उतार ही नहीं सकता था। आखिरकार मैं उस छत के जीनेवाली उस ऊपरी सीढ़ी पर आकर बैठ गया। और तब मुझे लगा कि मेरी वह जिद फरार होने की, दरअसल एक बचकानी-सी जिद थी। मैं कभी फरार नहीं हो पाऊँगा यहाँ से। मैं कहीं भी चला जाऊँ ऐसे क्षण मेरा पीछा नहीं छोड़ेंगे जब मैं कभी-कभी सबकुछ छोड़-छाड़कर, चुपचाप किसी कोने में, किसी जीने की ऊपरी सीढ़ी पर या किन्हीं और सीढ़ियों पर चुपचाप बैठा रहूँगा—सबसे अलग-थलग। न अम्माँ मुझे नीचे बुलायेंगी, न कम्मो नीचे से जीने में झाँककर पूछेगी—ताश खेलेगा गुड्डू? न रवि मेरे पास बैठा मुँह से सीटी बजाते हुए किसी गाने की धुन

निकाल रहा होगा, न मैं अदिति के बारे में अपनी डायरी में कुछ लिखने के बारे में सोचूँगा, न मौहल्ले के किसी झगडे की आवाज मेरे कानो तक पहुँचेगी और न ही अपने इर्द-गिर्द के सन्नाटे को तोडने के लिए मैं किसी उधेड़-बुन मे छटपटाता होऊँगा···

केंचुली-सी बदल ली थी जिन्दगी ने उस नये मौसम के आते ही। कुछ महीनों बाद जब मेघना वापिस आयी तो वह भी एक नयी-सी लडकी लगी मुझे। यह देखकर मुझे एक हल्का-सा अफसोस हुआ था कि वह, जो मेरी पिछली जिन्दगी मे भी मौजूद रही थी, स्कूल और कॉलिज के दिनो से लेकर उस सारे दौरान मेरे आस-पास और साथ रही थी जब मैं जिन्दगी से जूझता और लडता रहा था, वह भी कई अर्थों मे मेरे लिये अब एक अपरिचित थी। यूँ उसे, उसके व्यक्तित्त्व के विकास और निखार और किसी फूल की तरह पूरी तरह खिली हुई उसकी सुन्दरता को देखकर मुझे बहुत खुशी हुई थी। स्वभाव मे एक विशेष प्रकार का खुलापन हमेशा उसमे एक ऐसी खासियत रही थी जिसने मुझे आकर्षित किया था और वह अब किसी शीशे की तरह चमकने लगा था—पारदर्शी होकर। और अब उसे मुझसे कोई शिकायत भी नही थी—न नौकरी को लेकर, न भौतिक सुख-सुविधाओं को लेकर।

कई महीने और गुजर गये थे। उस बीच हम दोनों अक्सर साथ रहते। अब न चाँद गवाह था हमारी बातों का और न सूरज और न ही शायद किसी गवाह की जरूरत बची थी अब। वह वक्त और मौसम बीत चुका था जिसमे कसमें खायी जाती हैं, वादे किये जाते है, तस्वीरों को करीने से किसी एलबम मे लगाया जाता है और उनके नीचे बहुत हिफाजत से इबारतें और तारीखें लिखी जाती हैं ताकि सनद रहे। अब तो एक साफ-सुथरा विश्वास था मेरे और मेघना के बीच उस पुल की तरह जो सालो से बनता रहा था—धीरे-धीरे और अब बनकर तैयार हो गया था। बे रोक-टोक और बिना किसी खतरे के हम उसके जरिये अब एक-दूसरे तक पहुँच सकते थे।

—अब तुम मुझसे ब्याह कर लो। एक दोपहर उसने कहा था। छुट्टी का दिन था और हम दोनो हुमायूँ के मकबरे के सामने लॉन मे बैठे हुए थे।

—बिना ब्याह किये ही अगर कोई लड़की साथ सोती हो तो ऐसा कौन बेवकूफ होगा जो···, मैंने उसे छेडते हुए अंग्रेजी मे कहा था।

—अच्छा जी! उसने मुस्कराते हुए मेरी तरफ देखा और फिर लम्बे-लम्बे नाखूनोंवाली अपनी उँगलियों के पंजो को मेरी तरफ तानते हुए बनावटी गुस्से से बोली—यू डर्टी मैन···शर्म नही आती तुमको!

—वही मैं भी सोच रहा था···, मैंने उसकी उँगलियों को अपने पंजों मे फँसाकर उसे अपनी गोद मे खींच लिया—शर्म नही आती अपने ब्याह की बात खुद करते हुए।

हँसती हुई वह मुझसे चिपट गयी और फिर मेरे कान मे धीरे-से फुसफुसाकर

उसने कहा—जब बालम अनाडी होता है तो ऐसा ही करना पडता है। सुनी नही तुमने वह ठुमरी ?

—बताऊँ फिर कि ठुमरी क्या होती है और ठुमका किसे कहते हैं ? मैंने उसे जोर से अपनी बाँहो मे कसते हुए कहा।

—हाय नही, टूट जायेंगी हड्डियाँ सारी···, वह दबी आवाज मे चिल्लायी और फिर जल्दी-से बोली—हटो, देखो वो माली देख रहा है···

जैसे ही मैंने उसे छोडकर मुडकर देखा तो वह खडी हो चुकी थी और खिल-खिला रही थी—बड़े आये ठुमके और ठुमरीवाले गैट लॉस्ट यू रफियन (भागो यहाँ से, बदमाश कही के !)

एक महीने बाद हम दोनो ने शादी कर ली थी। अम्माँ और बाबा कुछ और करीबी रिश्तेदारो के साथ गाँव से आ गये थे। आर्यसमाजी ढग से शादी हुई थी। अम्माँ ने अपने सारे अफसोस के बावजूद बहुत लाड-प्यार से सारी घरेलू रस्मे अपनी बहू के साथ पूरी की थी। मेघना ने भी पूरी कोशिश की थी उन्हे खुश करने की और उसमे इस हद तक सफल भी रही थी कि अम्माँ फिर उसे लेकर पुराने घरवाले मोहल्ले तक गयी थी —सब पडोसियो को अपनी सुन्दर, इतनी पढी-लिखी, विलायत पास और सुघड बहू दिखाने। लगभग दो हफ्ते तक अम्माँ और बाबा हम दोनो के पास उस फ्लैट मे रहे थे। उस बीच अम्माँ उसे खाने-पीने को लेकर मेरी सब पसन्द-नापसन्द बताती रही थी और मेरे हिसाब से उसे खाना बनाना सिखाती रही थी। रात को जब मेघना मेरे पास आकर लेटती तो हँसते-हँसते पागल हो जाती—अम्माँ को तो लगता है कि मैं बिलकुल भूखा मार दूँगी उनके गुड्डू को·· सच्ची, माँ का अगर बस चले तो कभी शादी ही नही करने दे अपने बेटे को···और जबकि सबसे ज्यादा फिक्र उन्हे ही रहती है शादी की।

मुस्कराते हुए फिर वह पलँग पर बैठकर अपने जेवर वगैरा उतारती जिन्हे हर सुबह वह अम्माँ को खुश करने के लिए पहन लेती थी। इयर रिंग्स या नैकलेस खोलते हुए वह मेरी तरफ देखकर शरारत से मुस्कराती—मालूम है अम्माँ ने आज नया लैसन (पाठ) क्या पढाया ?

—क्या ?

—सोते वक्त भी बहुओं को अपने जेवर नही उतारने चाहिए क्योकि, उसने किसी स्कूल टीचर की तरह मुझे समझाते हुए बताया—उससे एक तो अम्माँ का लाड़ला अपनी दुल्हन को ज्यादा परेशान नही करता और दूसरे क्या जाने कब कैसी अनहोनी हो जाये—कम-से-कम जेवर तो पास रहेगा। और उसके बाद वह मेरे ऊपर आकर लेट जाती और मेरे दोनो कानो को पकडकर प्यार से ऐंठते हुए कहती—समझे कुछ तुम बुद्धू दास ?

—तो फिर उतार क्यो दिये तुमने ? मैंने मुस्कराते हुए पूछा।

—इसलिए कि मेरा दूल्हा मुझे ज्यादा परेशान नही करता···, और हँसते हुए वह मुझे चूमने लगी।

अम्माँ और बाबा बहुत खुश होकर गाँव लौटे थे। उनके जाने के बाद कुछ हफ्ते हम दोनो मेघना के पिता के साथ रहे थे। वह समय ज्यादातर पार्टीज और रिसैप्शन्स मे ही बीता था। उसी बीच मेघना ने अपनी पसन्द का एक दूसरा मकान मुझसे किराये पर लेने के लिए कहा और एक महीने बाद हम दोनो उसमे रहने लगे। समुद्र के किनारे जैसे कोई घर बनवा ले और उसमे रहे। उसी समुद्र के किनारे जिसकी लहरो के मचलने, उनके आवेश और किनारे से टकराकर, अपने आप मे भीतर दूर तक लौट जानेवाली हताशा को जिसने कभी बहुत पास से देखा हो। उसी समुद्र के किनारे जिसमे रवि डूब गया था। उसी समुद्र के किनारे जिसके पार अदिति चली गयी थी। उसी समुद्र के किनारे जिसके दूसरी तरफ बिल्मा रहती है 'और उसी समुद्र के किनारे जिसमें हर रोज कितनी ही नावें, कितने ही जहाज, हवा के रुख और लहरो से लडते एक कही न पहुँचनेवाले सफर पर, निकलते है।

अब हम दोनो की शादी को दो साल हो चुके है। मेघना बहुत खुश है। मैं भी खुश हूँ और उससे कही ज्यादा व्यस्त। मेरी कम्पनी हम सबकी खुशियों का बहुत खयाल रखती है। जान-पहिचान के बहुत-से लोगो का एक बडा दायरा है जैसे म्यूजिकल चेयर या मैरी गो राउण्ड का खेल। सब उसमे शामिल रहते हैं लेकिन फिक्र सबको अपनी ही खुशी की रहती है। मेघना के कारण सबकुछ सुव्यवस्थित रहता है— सारा घर, सब लोगो के सम्बन्ध, एक-दूसरे के प्रति सद्भाव और जिम्मेदारियाँ, हर कही आना-जाना और छुट्टी के दिनो का भी बहुत सही और सार्थक उपयोग।

कल शाम की ही बात है शायद। मैं ऑफिस से लौटकर बिस्तर पर लेटा कुछ पढ रहा था। मेघना बडीवाली आलमारी मे कुछ ढूँढ रही थी और उसी दौरान उसने अपनी गाती हुई-सी आवाज मे मुझसे कहा था—'गुड्डू बाबा'''तुम अपना ये भानुमती का पिटारा कब ठीक-ठाक करोगे। पता नहीं क्या-क्या अटरम-शटरम भरा हुआ है इसमें'' ये सब-की-सब फोटोग्राफ्स खराब हो जायेंगी ऐसे पड़े-पड़े!

—हाँआँआँ' ', मैंने बिना उसकी तरफ देखे धीरे-से कहा था—कल करूँगा इसे''

—आज वही सब लेकर बैठा हूँ मैं'''

—छुट्टी का दिन है। मेघना सुबह नाश्ता करके ही घर से निकल गयी थी। उसके क्लब मे आज 'फेट' है। मेरे पास करने को कुछ भी नही है आज। बहुत दिनों से सोच रहा था कि अपने उस बैग मे रक्खी सब चीजो को निकाल कर ठीक-ठाक करूँ। बहुत-सी तस्वीरें है जिन्हे मैंने अपने सामने फैला रक्खा है। और भी कई चीजें हैं बैग मे जिन्हे निकाल कर मैं अपने आस-पास रखता जाता हूँ—तेन्दुए की खाल का वह मफलर। वह किताब 'कनुप्रिया' जिसमे एक कविता की तह मे सूखे हुए फूलों का वह गुच्छा है। कुछ हेयर पिन्स। एक चिट्ठी। एक बड़ा-सा

लिफाफा जिसमें विल्मा की चिट्ठियाँ है। बहुत सारी और तस्वीरों का एक और फोल्डर। मेरी डायरी और वह फाउण्टेनपैन। रवि की पुराने कपड़े में लिपटी सब चीजें। मेघना की चिट्ठियाँ। उस अखबार की कटिंग जिसमे टैनिस चैम्पियनशिप जीतने के बाद मेरी तस्वीर छपी थी। कई राखियाँ जो मुझे कम्मो ने बाँधी थी और कुछ और छोटी-छोटी चीजें···

सोच मैं जरूर बहुत दिनों से रहा था कि इन सब चीजों को छाँटकर उन्हें हिफाजत से, साफ-सुथरे, सिलसिलेवार ढंग से कहीं रखूँगा। लेकिन अब मुझे समझ में नहीं आ रहा कि मैं इन सब चीजों को अब और कहाँ रख सकता हूँ। सारा घर तो इतना सुव्यवस्थित है कि जरूरत की सब चीजें अपनी निश्चित जगहों पर रक्खी हैं। जिन्दगी का सिलसिला इतना व्यस्त है कि फिर मुझे हो सकता है सालों वक्त ही न मिले उन्हें इस तरह फैलाने का। बार-बार मैं···सब चीजों को छूकर, उठाकर, पहचानकर और पढ़कर देखता हूँ जिससे कि यह तय कर सकूँ कि यदि कोई बेकार की चीज है तो उसे फेंक दूँ। जिन्दगी में आगे कुछ काम आये ऐसी कोई चीज मुझे इनमें नहीं दिखती लेकिन बेकार भी कुछ नहीं है। न हो घर या जिन्दगी में इनके लिए कोई साफ-सुथरी, सुन्दर जगह, इस बैग में तो ये रह ही सकती है। मैं नहीं, कोई और फेंकेगा इन्हें बेकार समझकर।

सब-की-सब चीजें मैं उसी तरह से सँभालकर उस बैग में रख देता हूँ और उसे बन्द करके अल्मारी में उसी जगह रखकर मैं कमरे से बाहर, लॉन तक चला आता हूँ।

माली बहुत अच्छा है। लॉन में सबकुछ कायदे से लगा और खिला है। घास का गलीचा लगता है मानो किसी ने अभी बिछाया है। मैं गेट खोलकर बाहर आता हूँ। सड़क पर दोपहर की वीरानी है···छुट्टी के दिन की खामोशी। मैं आसपास चारों तरफ के मकानों और कोठियों को देखता हूँ। सब लोग आराम कर रहे हैं। यह एक सम्पन्न लोगों का मोहल्ला है जिन्हें छुट्टी के दिन न सही आराम तो बहुत से और जरूरी काम होते हैं। दोस्तों के साथ बियर पीना, ब्रिज या रमी खेलना, पिकनिक मनाना या दुकान या ऑफिस के खातों को घर लाकर, टैक्स चुराने के लिए उनसे माथा फोड़ना। छुट्टी के ही दिन शहर में धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक सभाएँ होती हैं—भाषण, बहस और विचार-विमर्श। मेलों-ठेलों के लिए भी एक यही दिन होता है। सैर-सपाटा, पिक्चर-तमाशा और क्या कुछ नहीं होता छुट्टी के दिन के पास···लेकिन मैं बरसों बाद इस तरह अचानक आज भूला-सा खड़ा हूँ अपने घर के सामने कि कुछ भी नहीं सूझ रहा।

दूर से घण्टी बजने की महीन-सी आवाज आती है। मेरी धड़कनें तेज हो चली हैं। कुछ देर बाद सड़क के दूसरे कोने पर एक आकृति उभरती है पहियोंवाली एक छोटी-सी पेटी धकेलते हुए। मैं उसके इन्तजार में तब तक खड़ा रहता हूँ जब तक कि वह मेरे सामने आकर अजीब-सी नजरों और मुस्कान से मेरी तरफ देखता है।

—बुढ़िया के बाल बेचते हो ? मै पूछता हूँ ।

—हाँ साब !

—सामने बनाकर दोगे ?

वह हँसने लगता है—क्यों नही साब ? कितने बनाऊँ, बताइए ?

—एक मिनिट ठहर जाओ, मै जल्दी से कहता हूँ, मुड़कर भागते हुए—मैं पैसे ले आऊँ जरा···

०●०